॥ दयानन्द महाविद्यालय संस्कृत ग्रन्थमाला, सं० ७ ॥

* ओ३म् *

वाल्मीकीय-रामायणम्

अयोध्या-काण्डम्

(पश्चिमोत्तरशाखीयम्)

THE RAMAYANA

OF

VALMIKI

(NORTH-WESTERN RECENSION)

CRITICALLY EDITED FOR THE FIRST TIME FROM ORIGINAL MSS.

BY

PANDIT RAM LABHAYA M. A.

SOMETIME RESEARCH SCHOLAR AND PROFESSOR IN SANSKRIT, UNIVERSITY OF THE PANJAB, LAHORE.

AYODHYA KANDA· FASC. I.

PUBLISHED BY THE RESEARCH DEPARTMENT D. A. V. COLLEGE, LAHORE.

Printed by Lalji Dass, Manager Hindi Press, Lahore.

APRIL 1923.

First Edition 1000 Copies. | वैशाख १९८० | Price 1—8—0

1. MANUSCRIPT MATERIAL.

All the MSS., collated for the present edition, are written, on country paper, in Devanāgarī script.

1. कें—about 100 years old, almost correct, writes त्त for त very often.
2. ल—about 100 years old, almost correct, agrees with कें.
3. म—about 100 years old, incorrect at many places, agrees with कें.
4. पं—dated Vikrama samvat 1808, incorrect at many places, sometime agrees with कें.
5. अ—dated Vikrama samvat 1875, writes च for व, very often: obtained from Alvara State.
6. कु—dated Vik. samvat 1885, writes च for व, and स for श, very often; transcribed in kurukṣetra.
7. गु—dated Vik. sam. 1512, writes ग्र for ग often, and names बालकाण्ड as बालचरित and includes it in the Ayodhyā kāṇda; loan from Bh. Or. R. I. Poona. No. 123/1884–87.
8. चं—dated Vikrama samvat 1924, copied, by my maternal grand-father, from an old MS.
9. दी—dated Vikrama samvat 1869, obtained from Dirghapur (Bharatpur State).
10. रा—about 200 years old, obtained from near about Rāma Mandira (Nasik).
11. पू[1]—about 150 years old, loan from Bh. Or. Research Institute, Poona. No. 181, Vish. col.
12. पू[2]—about 200 years old loan from Bh. Or. Research Institute, Poona. No. 34/1883–84.

2. COLLATION.

MS. No. 1. is the basic one, collated from the beginning to the end of the Kāṇda.

MSS. No, 2 and 3. collated from the 16th sarga on-wards.

MS. No. 4. left out where found too divergent.

MSS. No. 5 and 6 collated from the 5th sarga on-wards, since the 1st four sargas are not to be found therein.

MSS. No. 7–12. collated for the 1st four sargas with a view to determine their affinity to the main Recension, and to enable scholars to judge their relative value for the future work on Rāmāyaṇa. These MSS. are too divergent on-wards.

3. SOURCES OF MSS.

MS. No. 1 and 6. were a loan from L. Rama Kṛṣṇa Pleader Kaithal, but later on purchased for the Library after his death.

MS. No. 2. loan from Mahanta Hari Dass, through Pt. Bhagat Rama B.A. Librarian Medical College, Lahore.

MSS. No. 3–5,9,10 belong to the D.A.V. College Research Library.

4. CLASSIFICATION OF MSS.

1. कै, ल, म—represent the main group.
2. अ, कु—represent the sub-group and, at times, exhibit a tendency to coincide with the Bengal version.
3. पं—stands midway between कै, ल, म group on one-side and अ, कु group on the other.
4. गु—represents a strange Sub-Recension and preserves divergent readings.
5. दी पूं, चं, रा, पूं—represent another Sub-Recension.

5. DIACRITICAL SIGNS & ABBREVIATIONS

* indicates doubtful authenticity, when prefixed to

hemistiches, but when appended to readings, it indicates obscurity or anomaly.

? indicates uncertainty.

( ) indicates emendation, except in the case of uncommon portions of the readings, that, for the sake of brevity, have been enclosed within such brackets along with their respective MSS., in the crictical notes.

[ ] when placed round readings, indicates restoration; but when placed round hemistiches, verses, and passages, it indicates insertion.

A signifies addition on-wards.

O+नास्ति +(त्यक्तमस्ति or only त्यक्तम्)=omission.

6. METHOD OF DEGREE FIGURES.

The degree figures invariably refer to those to which they have been appended, but when they repeat, they refer to the intervening unmarked portion as well, whenever there is any.

7. CRITICAL PRINCIPLES FOLLOWED IN THE CONSTITUTION OF THE TEXT.

The Eclectic Method has been avoided as far as possible. Emendations and Restorations bave been proposed in rare cases only.

8. PROSPECTUS.

A detailed introduction will be given after the publication of the last fasciculus of this Kāṇda.

It is intended to add various important Indices and Appendices at the end of every Kāṇda.

9. EPILOGUE.

Despite my strenuous efferts, the printing errors have persisted. These have been corrected and referred to in the errata.

Research Library,
D. A. V. College, Lahore.

Rāma Labhāyā

१. हस्तलेख सामग्री ।

समस्त हस्तलेख, जो प्रस्तुत संस्करण के लिये मिलाये गये, देशी कागज पर देवनागरी में लिखे हुए हैं।

१. कै—लगभग १०० वर्ष पुराना, प्रायः शुद्ध, 'त' को बहुधा 'त्त' लिखता है, कैथल से प्राप्त।

२. ल—लगभग १०० वर्ष पुराना, प्रायः शुद्ध, 'कै' से मिलता है। लाहौर से प्राप्त।

३. म—लगभग १०० वर्ष पुराना, बहुधा अशुद्ध, 'कै' से मिलता है। मच्छीहट्टा लाहौर से प्राप्त।

४. पं—वि० सं० १८०८ का, बहुधा अशुद्ध, कई स्थलों में कै से मिलता है। पञ्चवटी से प्राप्त।

५. अ–वि० सं० १८७५ का, 'ब' को बहुधा 'व' लिखता है। अलवर से प्राप्त।

६. कु—वि० सं० १८८१ का, 'ब' को 'व' और 'श' को बहुधा 'स' लिखता है। कुरुक्षेत्र से प्राप्त।

७. गु—वि० सं० १५१२ का, प्रायः 'ग' को 'ग्र' लिखता है। बालकाण्ड को बालचरित लिख के अयोध्याकाण्डान्तर्गत देता है। भण्डारकर प्राच्य अनुसन्धान समिति पूना से मांग। हस्तले० गुजराती है। संख्या १२३/१८८४-८७।

८. चं—वि० सं० १९२४ का, मेरे नाना की एक पुरातन हस्तलेख से लिखी प्रति। अपने मातुल पं० गोविन्दराम वकील 'चनियोट' से प्राप्त।

९. दी—वि० सं० १८६९ का, दीर्घपुर (भरतपुर) से प्राप्त।

१०. रा—लगभग २०० वर्ष पुराना, राममन्दिर, पंचवटी, नासिक के समीप से प्राप्त।

११. पूं—लगभग १५० वर्ष पुराना, भण्डारकर० प्रा० स० पूना से मांग। संख्या १/१ [illegible] संग्रह।

१२. पूं—लगभग २०० वर्ष पुराना, भ० प्रा० स० पूना से मांग । संख्या ३४/ १८८३-८४ ।

२. हस्तलेखों के प्राप्तिस्थान ।

हस्तले० संख्या १, ६ ला० रामकृष्ण प्लीडर कैथल से मांगे गये थे। उन की मृत्यु के पश्चात् दयानन्द महा० के अनुसन्धान पुस्तकालय के लिये मोल लिये गये ।

हस्तले० सं० २ श्री पण्डित भक्तराम बी० ए० पुस्तकाध्यक्ष, मैडीकल कालेज लाहौर द्वारा महन्त हरिदास से मांगा गया । हम महन्त जी, वा पण्डित जी के बड़े कृतज्ञ हैं ।

हस्तले० सं० ३-५, ९, १० दयानन्द कालेज अनुसन्धान पुस्तकालय के हैं ।

शेष के सम्बन्ध में पहले बता दिया गया है ।

३. हस्तलेखों का विभागकरण ।

१. कै, ल, म—मूल शाखा का आदर्शविभाग दिखाते हैं ।

२. अ, कु—गौणविभाग है । इसका झुकाव अनेक स्थानों पर वङ्गशाखा की ओर है ।

३. पं—कै, ल, म तथा अ, कु के मध्य में ठहरता है । कभी एक ओर और कभी दूसरी ओर झुकता है ।

४. गु—विलक्षण गौणविभाग दिखाता है । इसके पाठ बड़े भिन्न है ।

५. दी, पूं, चं, रा, पूं—एक और गौणविभाग दिखाते हैं । सम्भव है इनकी एक नयी मूलशाखा ही हो ।

४. हस्तलेखों के पाठों का मिलान ।

हस्तले० संख्या १ हमारा आदर्श है । काण्डारम्भ से अन्त तक मिलाया गया है ।

हस्तले० सं० २, ३ पीछे मिलने के कारण सोलहवें सर्ग से मिलाये गये।

हस्तले० सं० ४ अत्यन्त विभिन्न स्थानों में नहीं मिलाया गया।

हस्तले० सं० ५, ६ पांचवें सर्ग से सर्ग १६। १६॥ तक मिलाये गये। इन में पहले चार सर्ग नहीं हैं।

हस्तले० सं० ७-१२ पहले चार सर्गों में उनका मूलशाखा से सम्बन्ध जानने के लिये मिलाये गये। इस का और भी प्रयोजन था, अर्थात् रामायण पर काम करने वाले भावी विद्वानों को उन के तुलनात्मक मूल्य के जानने में सुविधा हो। ये हस्तले० आगे बहुत विभिन्न हैं।

५. चिन्ह और संक्षेप।

* श्लोकार्द्धों के पहले सन्देह का द्योतक है। पदों के साथ पाठ का संशय बताता है।

? अनिश्चय प्रकटाता है।

( ) सम्भावित संशोधन बताता है। पर जब टिप्पण में पाठभेदों के मध्य में हस्तलेखों के सङ्केत के साथ आया है, तो उसे २ हस्तलेख का पहले पाठ से असामान्य भाग बताता है।

[ ] जब पदों के साथ है, तो त्रुटि को पूरित करता है। पर जब श्लोकार्द्धों, एक वा अनेक श्लोकों के साथ है, तो प्रक्षेप बताता है।

A आगे को श्लोकों का प्रक्षेप बताता है।

O +नास्ति+ (त्यक्तमस्ति 'अथवा' त्यक्तम्)=पाठ का छूट जाना।

६. बटे वाले अंकों का प्रयोग।

बटे वाले अङ्क सर्वदा उन्हीं पदों को बताते हैं, जिन के साथ कि वे लगाये गये हैं। पर जब एक ही अङ्क दोबारा आता है, तो उन विना अङ्कित मध्यस्थ पदों को भी साथ ही बताता है, जहां कहीं कि वे आजावें।

७. ग्रन्थ—सम्पादन का प्रकार ।

जहां तक सम्भव था, विभिन्न गणों के हस्तलेखों के पाठों को चुन २ कर एकत्र मूलपाठ में देने से संकोच किया गया है । आदर्श हस्तलेखों का पाठ ही मूल में है । सम्भावित, संशोधन वा पूर्त्तियां कहीं २ ही प्रस्तावित की गयी हैं ।

८. ग्रन्थ में और क्या होगा ?

इस काण्ड के अन्तिम भाग के साथ एक सुविस्तृत भूमिका होगी । कई अत्यन्तावश्यक परिशिष्ट और सूचियां देने का भी विचार किया गया है ।

६. क्षमा याचना ।

अत्यन्त यत्न करने पर भी कुछ अशुद्धियां रह गई हैं । यह अशुद्धियां शुद्धिपत्र में ठीक की गयी हैं ।

अनुसन्धान पुस्तकालय } रामलभाया
दयानन्द महाविद्यालय, लाहौर । }



शुद्धिपत्रम् ।

पृष्ठ पङ्क्ति	अशुद्धम्	शुद्धम्
१४—३	पूजयामास्तुस्तदा	पूजयामासतुस्तदा
२१—२	श्रत्वा	श्रुत्वा
२२—१	रञ्जिताः३	रञ्जिताः३८
२५—८	०गच्छतं१	०गच्छता१४
३१—२	तेषामाज्जलि०	तेषामञ्जलि०
३८—१८	श्वो भाविन्यभिषेचने	श्वोभाविन्यभिषेचने
३९—१८	” ”	”
४२—११	विवेशां त०	विवेशान्त०
४४n—२	संकुल	संकुलं
४५n—३	सितास्रं	सितास्र

४६n–५	क	कै
४७n–१	नंदन	०नंदन
४७n–१	०वद्धनः	०वर्द्धनः
४८—४	सा[2]—ददर्शाथ[2]	सा[2]ददर्शाथ[2]
४९—१७	साऽसम्यपारे	साऽसम्यपारे
५१n–३	तनेदं	तेनेदं
५६—६	कथ	कथं
५६—३	येनं	येन
६२—१२	दिष्ट्या	दिष्ट्या
६४—३	शुक्रवासिनी	शुक्रवासिनी[17]
७०—१५	]	][48]
७१n–५	अभिशाप्य	अभिशाप्य
७२—२०	रामगुणैरियम्	रामगुणैरयम्
७२n–२	नहाविषा	महाविषा
७५—१	गर्हयिष्यन्ति	गर्हिष्यन्ति
८१n–१	शोडशे	षोडशे
८४—६	श्वेतपुष्पाणि	श्वेतपुष्पाणि
८४—१५	प्रतीहारो	प्रतीहारो
८५—२०	द्दृयते	दृश्यते
८६—१६	रामसाह्वय	राममाह्वय
८८—१५	०योपमा	०योपमाः
९०—६	०धारिभिः	०धारिभिः[8]
९०—१५	महार्णेन	महाऽर्हेण
९५—१	०म	Oम
९६—७	रामो-महारथः	रामो महारथः
९६n–१	हेमलांज	हेमलाजं

* ओ३म् *

वाल्मीकीय-रामायणम् ।

* अयोध्या-काण्डम् *

[प्रथमः सर्गः]

कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा दशरथः सुतम् ।
भरतं केकयीपुत्रं[1] समाहूयेदमब्रवीत्[2] ॥ १ ॥
अयं केकयराजस्य[3] पुत्रो वसति पुत्रक ।
त्वां[4] नेतुमागतो वीर युधाजिन्मातुलस्तव[5] ॥ २ ॥
तस्मान्मातामहं द्रष्टुमितोऽनेन सह त्वया ।
गन्तव्यं पुत्र पश्य त्वं पुरं मातामहस्य तत् ॥ ३ ॥[6]
श्रुत्वा[7] दशरथस्यैतद्भरतः केकयीसुतः[8] ।
गमनेऽर्थं[9] मतिं चक्रे शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥ ४ ॥
श्रुत्वा दूतं तु[10] संप्राप्तं कैकेयेभ्यो[11] नृपात्मजम् ।
भरतं चाप्यनुज्ञातं[12] राज्ञा[13] राजीवलोचनम् ॥ ५ ॥

---

१ गु, दी, पं—कैकेयी० । पूं, चं, रा—कैकयी० । २ चं, गु, पूं, पूं, दी, रा—इदं वचनमब्र० । पं—अब्रवीद्रघुनंदनः ३ चं, गु, पूं, रा—कैकय० । पूं, दी, पं—कैकेय० । ४ रा—दानानुजगतो । ५ रा—०लस्तदा । ६ चं, गु, पूं, पूं, दी, रा—नास्ति । ७ रा—दाशरथं वाक्यं भरतः । ८ पूं—कैकयात्मजः । ९ दी—गमनाय । १० चं, गु, पूं, रा—तु दूतं ११ कै—केकयस्य । पूं, कैकयेभ्यो । १२ चं, गु, पूं, पूं, दी, रा—चाभ्यनुज्ञातं । १३ पूं, पूं, रा—राजा ।

प्रहृष्टा तत्र कैकेयी मुदा परमया युता ।
चिन्तयामास गमनं भरतस्य महात्मनः ॥ ६ ॥
गमने[14] च[14] मतिं चक्रे तदा तस्य शुभानना[15] ।
गृहे[16] मातामहकुले सन्न्यस्तं मन्यते[16] हि सा ॥ ७ ॥
न हि कश्चिद्विशेषो[17] मे[17] तस्मिन्वापीह[18] वा[19] गृहे ।
स त्वभ्यनुज्ञाय नृपः सुतं सुरसुतोपमम्[20] ॥ [20] ८ ॥
समानयच्च[21] कैकेयीं[22] तदा राजगृहं प्रति ।[23]
आपृच्छ्य[24] पितरं[25] सोऽथ[26] रामं चाक्लिष्टकारिणम् ॥ ९ ॥
मातृश्चैव[27] महाबाहुः शत्रुघ्नसहितो ययौ[28] ।
अमात्यैर्बहुभिर्गुप्तो[29] रथैश्च शुभवाजिभिः[29] ॥ १० ॥
पादातेन[30] च मुख्येन वृतः शतसहस्रः[31] ।
स पित्रा समुपाघ्राय[32] परिष्वक्तश्च बाहुना ॥ ११ ॥

---

१४ पं—गमनेथ । १५ चं, कै—शुभात्मनः । १६ गु—०ऽसुन्यस्तं । दी—०सून्यस्तं । पूं—०सत्यसंमन्मते । पं—०मातामहे सम्यक् सन्यस्ते । रा—गृहं मातामहकुलं समानं मन्यते । १७ पूं—०शेषस्तु । १८ कै—तस्मिंश्चापेह । पं—तस्मिनास्तीह । १९ रा—वै । २० दी—नास्ति । २१ चं—सन्मानयंश्च । गु—समागतश्च । रा—संमानयंश्च । पूं—समानयंश्च । पूं—जगाम सह । २२ गु—कैकेय्या । पूं—कैकय्या । पूं—कैकेयी । २३ पं—स राजा प्रेषयामास तदा शतगृ[हं] प्रति । २४ दी—आपृष्ट्वा । २५ कै—नृपतिं । पं—कुशलं । २६ गु, पूं, दी, पं—धीमान् । २७ पूं—मातॄंश्चैव । २८ पूं, वसि (?) । २९ पूं—आमत्यै० । पं—अमन् मातुलगृहं शीघ्रगैश्चैव वाजिभिः । ३० गु—पदातिना । ३१ दी—सहस्रशैः । ३२ दी—समुपघ्रातः । गु, पूं, समुपाघ्रातः । चं, पूं, रा—समनुज्ञातः ।

भरतः सिंहविक्रान्तः शत्रुघ्नश्च महामतिः ।[33]
तं तदा प्रस्थितं[34] वीरं भरतं वदतां वरः[35] ॥ १२ ॥
राजा दशरथो वाक्यमुवाच जनसंसदि ।[36]
प्रस्थितस्त्वं नरवर मातामह[37]गृहं शुभम्[37] ॥ १३ ॥
संदेशं शृणु मे वत्स तं[38] च कुर्याः समाहितः[38] ।
शत्रुघ्नसहितो गच्छ मातामहकुलं विभो[39] ॥ १४ ॥
स ते सहायो भविता स[40] त्वां[40] नित्यमनुव्रतः ।
तवापि च प्रियतरः प्राणेभ्योऽपि परंतप ॥[41] १५ ॥
आत्मवत्स त्वया भ्राता द्रष्टव्यो रक्ष्य एव च ।[41]
गुणपाशशतैर्बद्धस्त्वया हृदि परंतप ॥[41] १६ ॥
न जहाति च[42] शुश्रूषां[42] कदाचिदपि[43] तेऽनघ[43] ।[41]
संदेक्ष्यामि[44] च[45] भूयस्त्वं संदेशं शृणु मे हितम्[45] ॥ १७ ॥

---

३३ गु, पूं[1]—श्लोकान्तं दण्डद्वयचिह्नेन प्रदर्शितम् । ३४ पूं[1], दी—प्रणितं । पं—प्रयतं । ३५ गु, चं, पूं[2], दी, रा—वरं । ३६ रा—उवाच राजा राजर्षिसस्नेहं भरतं प्रति । ३७ चं, पूं, दी—०कुलं० । रा—०कुलं प्रति । पं—०गृहे शुभे । ३८ गु, पूं—तच्च० । पं—तं कुर्याः सुसमाहितः । गु, दी, रा—०कुर्यात्० । ३९ पं—विशो । ४० गु—वस्त्वां । ४१ केवल कै पं पाठः । ४२ पं—त्वया पुत्र । ४३ पं—सुश्रूष्योहमिव त्वया । ४४ पूं—संद्रक्ष्यामि । ४५ गु—च तं भूयः संदेशं तव यं हितं । पं—च ते भूयः संदेशं बलबद्धितं । पूं[2], दी—तु (दी—च) तं भूयः संदेशं तव यद्धितं । पूं[1]—च त्वां भूयः संदेश तव सि—ं । चं—त्वां भूयः संदेशस्तव सिध्यतां । रा—च तत्रापि संदेशं तव सिध्यतां ।

तव[४६] चैव[४६] महाभाग[४७] शत्रुघ्नस्य च मानद[४८] ।
नित्यश[४९] त्वया कार्या शुश्रूषा मातुलस्य वै[५०] ॥ १८ ॥
आर्यकस्य[५१] च ते[५२] नित्यं[५२] काले[५३] कालेऽभिवादनम्[५४] ।
व्रतचर्या[५५] च ते[५५] पुत्र कर्त्तव्या नियतात्मना[५६] ॥ १९ ॥
ब्राह्मणैः सह धर्मात्मन् वासैः[५७] सद्भिरुदाहृतैः[५७] ।
काले काले यथोक्तं[५८] च ब्राह्मणानभिवादय[५८] ॥ २० ॥
ब्राह्मणा हि श्रियो मूलं पुरुषस्य शुभार्थिनः ।
सहायार्थं च कर्तव्याः[५९] प्रणम्य नियतात्मना ॥ २१ ॥
सर्वविद्यान्तगा धन्या ब्राह्मणा[६०] मङ्गलावहाः[६०] ।
देवाः पुत्रभवार्थं वै प्रजानां सुरसत्तमैः ॥ २२ ॥
प्रेषिता मानुषं[६१] लोकं[६२] भूमिदेवा इति श्रुतिः[६३] ।

---

४६ गु—तवैव च । ४७ गु, पूं, दी, पं—महाप्राज्ञ । चं, पूं, रा-महाबाहो । ४८ चं—सौख्यदः । पूं—मानदा । ४९ पूं—नित्यं तस्य । पूं—नित्यं शस्य । ५० रा—तु । ५१ कै—आरभ्यकस्य । पं–अर्थकस्य । रा—आर्यकर्म । ५२ कै—कर्तव्यं । ५३ गु, चं, पूं, दी, रा—कार्यं । ५४ गु, पूं—०वादिनं । ५५ गु, पूं-व्रतचर्याश्चते । दी—व्रतचर्यास्तुते । पं—ब्रह्मचर्यावते । रा—व्रतचर्या त्वया । ५६ चं, पूं, दी, रा—वै यतात्मना । गु—वै जितात्मना । ५७ गु—वदेथाः समुदाहृतः । पं—वदेथाः समुदाहरन् । पूं-वेदे याः समुदाहृताः । दी-वेदे याः समुदाहृताः । ५८ कै—ब्राह्मणांश्च यथोक्तमभिवादयः । गु, पूं—यथोक्ते—०वादये । दी, रा—०वादये । रा—यथोक्तं तु० । ५९ पूं, दी, पं—कर्तव्या । ६० चं—मंगला ब्राह्मणाः सदा । गु, दी, पं, रा—मंगल्या ब्राह्मणाः सदा । पूं—मांगल्या ब्राह्मणाः सदा । ६१ चं—मानुषे । ६२ कै, चं—लोके । ६३ कै—श्रुताः । पूं—स्मृतिः ।

तेभ्यः सर्वाणि शास्त्राणि वेदांश्च[६४] वदतां वरं[६५] ॥ २३ ॥
अस्त्रं[६६] शस्त्रं महास्त्रं[६६] च विधिवत्[६७] पुत्र धारय[६८] ।
अश्वपृष्ठे रथे चैव व्यायामं[६९] कुरु नित्यशः[७०] ॥ २४ ॥
गन्धर्वविद्यासु[७१] तथा[७२] पारगो भव पुत्रक ।
अन्येष्वपि च शिल्पेषु यत्नः कार्यः सुत[७३] त्वया ॥ २५ ॥
क्षणमप्यासितुं[७४] पुत्र[७५] वृथा[७५] नार्हसि सर्वथा[७६] ।
कुशलप्रेषणं[७७] पुत्र[७८] दूतैः कार्यं सदैव मे[७८] ॥ २६ ॥
श्रुत्वा[७९] कुशलिनं त्वाऽहं[८०] संदेक्ष्यामि[८१] सबान्धवः ।
एवमुक्त्वा तु[८२] नृपतिर्भरतं वाष्पगद्गदम्[८३] ॥ २७ ॥
व्याजहार महातेजा गम्यतां मा विचारय ।
सोऽभिवाद्य जितक्रोधो राजानं शिरसा तदा ॥ २९ ॥
मातरं च महाभागः[८४] शत्रुघ्नसहितस्तदा[८५] ।
स[८६] ययौ[८६] नगरं[८७] धीमान् बलेन परिवारितः ॥ २९ ॥

---

६४ गु, पूं—दत्तानि । दी—दैवतं । पं—ज्ञेयं च । ६५ गु, पूं—वरः । ६६ पं—अश्वं शास्त्रं महार्थं । ६७ रा—विविधं । ६८ गु, पूं-पालय । दी—पारय । ६९ रा—आयामं । ७० चं, पूं, रा—नित्यदा । ७१ कै—गांधर्वं० । ७२ चं, पं, रा—तदा । ७३ चं, गु, पूं, दी, रा—परस्० ७४ । पं-०मध्यासितुं । ७५ गु—स्थातुं पुत्र । ७६ गु—नान्यथा । कै, दी, रा—सर्वदा । ७७ पूं—कुशलं० । ७८ चं—चापि दूतैः कुर्याः सदैव मे । गु, पूं—दूतैः कुर्याश्चैव सदैव मे । दी, रा—चापि दूतैः कार्यं सदैव हि (रा—मे) । ७९ दी—श्रुतं । ८० चं, दी—हि त्वा । गु, पूं, रा—हि त्वां । ८१ चं, पूं, दी, रा—नंदिष्यामि । ८२ गु, चं, पूं, दी, रा—स । ८३ रा—वाक्यग० । ८४ गु, पूं, दी—महाभागां । ८५ कै—०स्तथा । ८६ गु—प्रययौ । ८७ पूं, दी—नगरीं ।

तथाऽनुगम्यमानश्च[८८] जनैः[८९] पुरनिवासिभिः ।
रामेण च महाभागो[९०] लक्ष्मणेन च वीर्यवान् ॥ ३० ॥
पुरस्कृतो ययौ धीमान् प्रीतिस्निग्धौ[९१] हि तस्य तौ[९२] ।
अभिवाद्य रामं भरतः परिष्वज्य च लक्ष्मणम् ॥ ३१ ॥
न्यवर्त्तयत[९३] धर्म्मात्मा तदा सर्वान्[९४] सुहृज्जनान्[९४] ।
सुहृद्भिः कैश्चिदेवेह सह विद्वद्भिरात्मवान् ॥[९५] ३२ ॥
अनुगम्यमानो विधिवत्प्रयातैः[९६] कृतमङ्गलैः[९६] ।
निवर्त्य तं[९७] जनं[९७] सर्वं प्रययौ शीघ्रवाहनः ॥ ३३ ॥
पुरं[९८] यातो महातेजा यमध्यास्ते स धर्म्मवित् ।
कथायोगेन सुहृदो[९९] मनोज्ञैः[९९] महाभुजः[१००] ॥ ३४ ॥
दिवसैः कैश्चिदेवाथ स[१०१] श्रान्तबलवाहनैः[१०१] ।
सरितः[१०२] पर्वतांश्चैव व्यतिक्रम्य महाभुजः[१०३] ॥ ३५ ॥
उपस्थितो वै नगरं[१०४] तदा राजगृहं[१०५] विभुः ।
स[१०६] दूतं[१०७] प्रेषयामास राज्ञो वृद्धस्य धीमतः ॥ ३६ ॥

---

८८ पूं-०मानैश्च । पं-तदन्नु० । ८९ चं, गु, पूं, दी, पं, रा-सर्वैः । ९० रा-महाबाहो । ९१ पूं-०स्निग्धस्य । पं-०स्निग्धा । ९२ पं-ते । ९३ गु-निवर्त्तयत । ९४ गु, चं, पूं, दी, रा-सर्वं सुहृज्जनं । ९५ रा-नास्ति । ९६ कै-प्रयातकृत० । रा-०मंगतः । ९७ चं, रा-सजनं । पूं-सज्जनं । गु, दी-स्वजनं । ९८ गु, चं, रा-पुरं मातामहजितं यदध्या० । रा-०जितं यमध्या० । पूं-पुरं मातामहजितां यामध्या० । दी-०मातामहयुतं यदध्या० । पं-०तेजामध्ये तेषां । ९९ रा-सुहृदामनुजने । १०० चं, रा-सहानुगः । दी-सदानुगः । १०१ गु-स मित्रबल० । पूं-अश्रांतबल० । दी-सभ्रांतबल० । १०२ चं-स नदी- । पूं, दी, पं-स नदीः । १०३ चं, गु, पूं, दी, रा-सहानुजः । १०४ गु-महा- । १०५ पं, रा-राजागृहं । १०६ गु-संगतं ।

आर्यकस्य महातेजा भरतः प्रियदर्शनः ।
श्रुत्वा दूतस्य वचनं स[107] राजा सह[107] मन्त्रिभिः ॥ ३७ ॥
प्रवेशयामास तदा भरतं नगरोत्तमम् ।
पुष्पैर्गन्धैश्च धूपैश्च सर्वतः समलङ्कृतम् ॥ ३८ ॥
राजमार्गस्तदाकीर्णो जलेन च समुक्षितः ।
समुच्छ्रितपताकं[108] च तूर्योत्कृष्टनिनादितम्[109] ॥[110] ३९ ॥
वेश्याभिर्वारमुख्याभिर्वाद्यानुगतशोभितम्[111] ।
पुरतो नृत्यमानाभिर्भरतस्य महात्मनः ॥ ४० ॥
नरमुख्यैश्च[112] बहुभिः सूतमागधवंदिभिः[113] ।
स्तूयमानो यथान्यायं भरतः प्रविवेश ह ॥ ४१ ॥
प्रविश्य च [114]गृहं रम्यमभिवाद्य[114] च मातुलम् ।
वृद्धं मातामहं चैव तथैव नृपयोषितः[115] ॥ ४२ ॥
स वै मातामहगृहे सर्वकामैः सुपूजितः[116] ।
उवास स सुखी धीमान् कश्चित्[117] कालं नृपात्मजः ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे भरतगमनं
नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

---

१०७ गु—सह राजा सह । पूं—स च राजार्थं । १०८ पं—उपस्थितपताकाश्च । १०९ पूं—भेर्योत्कृष्टविनोदितम् । ११० गु—“समुच्छ्रित०” इत्यारभ्य श्लोकार्द्धस्य पाठोऽष्टत्रिंशच्छ्लोकानन्तरं दृश्यते, अग्रे च “राजमार्ग०” इत्यस्यार्द्धस्य । १११ गु—०भिर्लोस्यानुगतशोभितः । ११२ पं—०मुख्यैः स । ११३ गु—स्तुतो मागध० । ११४ कै, चं, रा—गृहे रम्ये अ० । ११५ कै—वृद्धयोषितः । ११६ चं, पूं, रा—सुसत्कृतः । पं—स पूजितः । गु—पुरस्कृतः । दी—सुसंस्कृतः । ११७ गु—किंचित् ॥

[द्वितीयः सर्गः]

कदाचिद्भरतः श्रीमान् वृद्धं मातामहं नृपम् ।
अभिवाद्य महात्मानमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
आचार्याननुगच्छेयं भवतोऽनुमते[1] प्रभो ।
लेख्यसंस्थानशब्दज्ञान्नीतिशास्त्रार्थपारगान्[2] ॥ २ ॥
[विविधासु[3] च[3] विद्यासु सुनिष्ठान्[4] ब्राह्मणानपि ।][5]
हस्त्यश्वरथयानेषु तथैव परिनिष्ठितान्[6] ॥ ३ ॥
गन्धर्वविद्याकुशलान्नानाशिल्पविदस्तथा ।[7]
नरान्विनीतान् वृद्धान् वै[8] वेत्तुमिच्छामि[9] तत्त्वतः ॥ ४ ॥
ब्राह्मणान्वेदविदुषो वृद्धान्[10] परमपूजितान् ।
व्यादिष्टान् पुरुषांस्तत्र[11] सर्वविद्याविशारदान्[11] ॥ ५ ॥

---

१ चं—भवतां प्रीतये। रा—भवतानुमते । २ पूं, पं—०शास्त्रस्यपा०। दी—०शास्त्रानुपा०। रा—०शब्देच ज्योतिः शास्त्रस्यपा० । ३ पूं—विविधायुध- । ४ चं—निष्णातान्०। दी—शिल्पजातिषु चापरान्। पं—शिल्पिजातिषु चापरान् । ५ कै—नास्ति । पं—केनचिदन्येन उत्तरपार्श्वे लिखितम् । 'राजविद्यान्वितान्वृद्धास्ते (न्वे) तुमीछामि तत्वतः ।' इत्यप्यग्रे लिखितं वर्त्तते। ६ चं, गु, पूं, रा—विनीतान् हास्तिशिक्षासु हयपृष्ठे तथैव च। दी—नास्ति। ७ चं, गु, पूं, रा—गांधर्वीषु (गु—गांधर्वासु) च विद्यासु शिल्पजातिषु चापरान् (रा—पारगान्)। कै—गांधर्व० । दी—नास्ति । ८ गु—राजविद्यान्वितान् शुद्धान्। पूं—राजविद्यान्वितान् वृद्धान् । दी—०वृद्धांश्च०। ९ पूं—वक्तुमि०। १० गु—प्राज्ञान्। ११ चं, गु, पूं, दी, रा—भवतेछामि शिक्षार्थं मम नित्यशः (दी—नित्यतः)।

*उपसेवितुमिच्छामि श्रेयोऽर्थी दृढमात्मनः ।
*भवतोऽनुमते राजन्प्रदेष्टुं तान्ममार्हसि ॥ ६ ॥[१२]
श्रुत्वैवं नृपतिर्वाक्यं कैकेयो भरतस्य सः ।[१३]
व्यादिदेश प्रहृष्टात्मा तस्याचार्यान्विपश्चितः ॥[१३] ७ ॥
*तानुपास्य प्रयत्नेन[१४] भरतः कैकयीसुतः ।[१६]
*वेदवेदांगशास्त्राणां पठने[१५] तत्परोऽभवत् ॥[१६] ८ ॥[१७]
सर्वविद्यासु[१८] कुशलान्[१८] परं हर्षमवाप ह ।
प्रदाय शिष्यमात्मानं तेभ्यः स रघुनन्दनः ॥[२५] ९ ॥
आचार्येभ्यस्ततो[१९] विद्यां[२०] धर्मेणाधिजगाम[२०] ह ।[२१]
*जग्राह वेदवेदांगशास्त्राणि गुणवृद्धये ॥[२१] १० ॥
सो[२२]ऽनुपूर्वेण तान्सर्वान्[२२] परिजग्राह सुव्रतः ।
सह भ्रात्रा[२३] महातेजाः शत्रुघ्नेन यशस्विना ॥ ११ ॥[२५]
एवमाचार्यहस्तेषु वर्तमानो[२४] नरोत्तमः[२४] ।

---

१२ चं, गु, पूं, दी, रा—नास्ति । १३ चं, गु, पूं, दी, रा—
श्रुत्वा तु भरतस्यैतद्वचः परमहृष्टवान् ।
आज्ञापयत्तदा राजा यदुक्तं भरतेन वै ॥
१४ पं—च यत्नेन । १५ पं—ग्रहणे । १६ चं, गु, पूं, दी, रा—नास्ति । १७ चं, गु, पूं, दी, रा—श्रुत्वा तु भरतो राज्ञा व्यादिष्टान् पुरुषांस्तदा । इत्यधिकमग्रे । १८ पं—तान् सर्वविद्याकुश० । कै—०कुशलः । १९ गु, पूं, दी रा—०स्तत्र विद्यां । चं—०स्तदा विद्या । २० दी—०भिजगाम् । २१ चं, गु, पूं, दी, रा—नास्ति । २२ कै—आनुपूर्व्येण ताः सर्वाः । २३ पं—भ्रात्रा । २४ पूं—वर्त्तन्स नरसत्तम । दी—ह्यवर्त्तत्स रघूत्तमः । पं—वर्त्तते रघुनन्दन ।

रममाणो नरव्याघ्रः परं हर्षमवाप ह ॥ १२ ॥[25]
शुश्रूषते[26] यथान्याय्यमाचार्यं[27] नियतेन्द्रियः ।
अर्थमानप्रदानाभ्यां यथाकालमतन्द्रितः ॥ १३ ॥
ज्ञानाभ्यासे[28] प्रवृत्तस्य विज्ञानेऽभिरतस्य च[29] ।
एवं कालो व्यतिक्रामत्[30] सुमहान् भरतस्य च[31] ॥ १४ ॥
यदा ज्ञानेषु निष्ठां[32] वै प्राप्तवान् रघुनन्दनः ।
ततोऽस्य बुद्धिः सञ्जाता धर्मं श्रोतुं सनातनम् ॥ १५ ॥
ब्राह्मणेभ्योऽथ वृद्धेभ्यो[33] भिक्षुकेभ्यश्च[34] धार्मिकः ।
ये चान्ये च[35] महाभागा धर्म्मेषु कुशला[36] द्विजाः ॥ १६ ॥
तान् सर्वान् स महातेजाः सेवते[37] धर्मकारणात् ।[38]
अन्तरात्मनि धर्म्मेभ्यः[39] सततं[40] पर्यवर्त्तत ॥ १७ ॥
कथायां धर्मयुक्तायां[41] रमते रघुनन्दनः ।

---

२५ गु—पुस्तके श्लोकत्रयं नास्ति। "परं हर्षमवाप ह" इति श्लोकार्द्धं दृष्टि-प्रमादादग्रेऽवलोक्य मध्यस्थश्लोकत्रयं सम्भवतः परित्यक्तम् । २६ चं, दी, रा—शुश्रूषति । २७ गु—यथायोग्यं आचार्यान्। दी—०माचार्यान्। २८ रा—ज्ञानाभ्यास० । २९ कै—विज्ञानादिरतस्य च । पं—विज्ञाना-भिरतस्य च । गु—विज्ञानं विरतस्य च । ३० कै—व्यतिक्रांतः । पूं—विचक्रमत । रा—०व्यतिक्रामत्। ३१ पूं—तु । रा—ह । ३२ गु—ज्ञाने सुनिष्ठां । पूं—०निष्ठा । ३३ गु—यतिभ्यश्च । पूं—०थ विप्रेभ्यो । ३४ गु—०भ्योऽथ दी, रा—०भ्योथ । ३५ चं, गु, पूं, रा—ऽपि । ३६ दी—कुलजा। पूं—कुशल० । ३७ गु—ये च धर्म्मपरायणाः । ३८ गु—तपोभि-निरता नित्यं सेवते धर्म्मकारणात् । १२ इत्यधिकम्। ३९ चं, गु, पूं, दी, रा—धर्म्मोक्त्य। ४० पूं—स ततं पर्यवस्यते ॥१५॥ ४१ गु—धर्म्मवृत्तायां।

तपोऽहिंसारता नित्यं ये च धर्मपरायणाः ॥ १८ ॥
तान् सर्वान् स महातेजा उपास्ते निभृतः शुचिः ।
शास्त्राणि च महाप्राज्ञो नित्यशो गुणवन्त्यपि ॥ १९ ॥
वेदविद्यासु चान्यासु कुशलः सर्वशास्त्रवित् ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यते धर्म्मसेवनात् ॥ २० ॥
तस्य बुद्धिः समभवत् पितुः सम्प्रेक्षणं प्रति ।
संदिदेश तदा दूतं ब्राह्मणं शुभलक्षणम् ॥ २१ ॥
अयोध्यां गच्छ भद्रं ते दूत शीघ्रं नृपोत्तमम् ।
पितरं कुशलं ब्रूहि मातॄश्च भ्रातरौ तथा ॥ २२ ॥
पृष्ट्वा च कुशलं तेभ्यो वाच्यो दशरथः प्रभुः ।
मातामहगृहे तात वर्त्तते त्वदनुग्रहात् ॥ २३ ॥
यथाऽऽज्ञप्तं कृतं तात महत्तव शुभं प्रियम् ।
स तु तेनाभ्यनुज्ञातो भरतेन यशस्विना ॥ २४ ॥
दूतः परमसंहृष्टः प्रयातो येन सा पुरी ।
अयोध्यां नगरीं रम्यां प्रविवेश महातपाः ॥ २५ ॥

---

४२ कै—तपांसि सेवते । पं—ऽहिंसासावत्तो । ४३ कै—धर्मे० । ४४ कै—निभृतो भृशम् । पं—निभृतो भुवि । गु—च भृशं शुचिः । दी—निर्वृत्तः० । रा—निर्वृतः० । ४५ गु—चैव सहसा । दी—०महाभागो । ४६ गु—तेजस्वी । ४७ गु—शास्वतानि ते । पू—गुणयत्यपि । दी, रा—गुणवानपि । ४८ गु, दी, रा—संप्रेषणं । ४९ पू—तथाहं तं । ५० पू—शंसितव्रतं । ५१ कै—नरोत्तमम् । ५२ पू—भ्रातरं । ५३ गु, पू—वर्त्तता । चं—वर्त्तेहं । ५४ पू—सर्वं । ५५ पू—मया तव । ५६ चं, कै—०कृतं । रा—कृतं शुभं । ५७ पं—आशु । ५८ पू—महात्मना । ५९ कै—प्रययौ । ६० पू—यत्र । ६१ गु—मनुना नि-

यां[६२] स[६२] राजीवताम्राक्षो राजा दशरथोऽवसत्[६३] ।
प्राप्तवानर्थं[६४] तां दूतो[६४] भरतस्यानुशासनात् ॥ २६ ॥
न्यवेदयंत[६५] तद्राज्ञे[६६] मातृभ्योऽथ द्विजस्तथा[६७] ।
कृतकृत्यो हि[६८] राजेन्द्र भरतः सत्यविक्रमः ॥ २७ ॥
धनुर्वेदे च वेदे च नीतिशास्त्रे[६९] च[६९] पारगः ।
अर्थशास्त्रे[७०] च[७०] कुशलो व्यायामे[७१] च तथैव हि[७२] ।
हस्तिशिक्षासु निष्णातो[७३] रथशिक्षासु[७४] निष्ठितः[७४] ॥ २८ ॥
आलेख्ये चैव लक्ष्ये[७५] च लंघने प्लवने तथा ।
ज्योतिर्गतिषु निष्णातस्तव वाक्येन नोदितः[७६] ॥ २९ ॥[७७]
एवंविधानि कर्माणि कृत्वा[७८] च[७८] सुबहून्यपि ।
कृतार्थो भरतो राजंस्त्वत्सकाशमुपैष्यति[७९] ॥ ३० ॥

र्म्मितां पुरा । ६२ गु—या संजीवना प्राज्ञो । पूं—यां च० । ६३ गु—ऽन्वगात् । पूं, दी, पं—न्वशात् । ६४ गु—प्राप्तवानवतां हृष्टो । पं—तान्विप्रो । ६५ गु—निवेदयत । ६६ गु, पूं, दी—तद्राज्ञो । चं—न्यवेदयत्तत्तद्राज्ञे । ६७ गु, दी, रा, पं—०तदा । पूं—०ततः । ६८ चं, गु, दी—थ । पूं—ह । ६९ चं. रा—०शास्त्रेषु । ७० चं, रा—०शास्त्रेषु । ७१ रा—०यामेषु । ७२ चं, गु, दी—च । ७३ चं—कुशलो । रा—निपुणो । कै—निष्णांत । ७४ चं, रा—०शिक्षा विशारदः । पूं—०शिक्षा विपश्चितः । दी—तव वाक्येन नोदितः । ७५ पं—लक्षे । गु, पूं, रा—लेख्ये । चं—लेखे । ७६ चं, पूं, पं—चोदितः । ७७ दी—नास्ति । स्पष्टोऽयं लेखकप्रमादः । ७८ चं, गु, पूं, दी, रा—कृतानि । पं—कृत च । ७९ चं, गु, पूं, दी, रा—०मुपैष्यति । पै—०मपेक्षते ।

श्रुत्वा राजा प्रहृष्टात्मा दूतस्य वचनं तदा ।

कौशल्याद्याश्च ता देव्यस्तथोभौ रामलक्ष्मणौ ॥ ३१ ॥

प्रतिसंश्रुत्य नृपतिस्तं दूतं भरतस्य तु ।

अभवन्मुदितः श्रीमांस्तदा दशरथो नृपः ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे भरतदूतागमनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

८० गु—प्रहृष्टाभूत् । ८१ गु—श्रुतं । ८२ चं, दी—देव्यस्ता तथो० । गु, पूं—देव्यश्च तथो० । पं-देव्यो वै तथो० । ८३ चं, रा—वचो (रा—वाचो) दूतस्य वै तदा । गु, दी—०भरतस्य वै । पूं—०भरतस्य च । ८४ गु—०तथा । ८५ गु—०ब्रवीत् ।

[तृतीयः सर्गः]

गतेऽथ भरते रामो लक्ष्मणश्च महामतिः[1] ।
पितरं देवसङ्काशं पूजयामास्तुस्तदा ॥ १ ॥
पितुराज्ञां रघुश्रेष्ठौ[2] कृत्वा परमहर्षितौ ।
पौरकार्याणि सहितौ चक्रतुः कृत्स्नशस्तदा ॥ २ ॥
मातॄणां सर्वकार्याणि कृत्वा च रघुसत्तमौ[3] ।
गुरोश्च[4] गुरुकार्याणि काले काले त्ववेक्षताम्[5] ॥ ३ ॥
[राजा दशरथः प्रीतो[6] वैदिका[7] ब्राह्मणास्तथा] ।[8]
रामस्य शीलवृत्ताभ्यां सर्वे[9] च विषये जनाः ॥ ४ ॥
तुष्टुवुः[10] सहिताः सर्वे देवकल्पस्य धीमतः ।
अथ राजा दशरथः[11] सस्मार प्रेषितौ सुतौ ॥ ५ ॥
उभौ भरतशत्रुघ्नौ किञ्चिच्छोको[12] बभूव ह[13] ।
सव एव तु तस्येष्टाश्चत्वारः पुरुषर्षभाः[14] ॥ ६ ॥
एकस्मादभिनिर्वृत्ताः[15] शरीरादिव बाहवः ।
तेषामिष्टतमो लोके रामो रतिकरः पितुः[16] ॥ ७ ॥

---

१ चं. रा—महाबलः । गु—महीपतिः । २ दी—नरश्रेष्ठौ । ३ पूं—रघुनंदनौ । ४ कै—गुरूणां । ५ चं—न्य(न्व)वैक्षतां । कै—त्ववैक्षतां । गु—त्ववैक्षत । पूं—त्ववैक्ष्यतां । दी, रा—न्ववेक्षतां । ६ गु—तस्य । ७ गु—ब्राह्मणा नैगमांस्तथा । पूं—ब्राह्मणा नैगमास्तदा । दी, रा—ब्राह्मणा नैगमास्तथा । ८ चं—नास्ति । ९ गु, पूं—तथैव । १० गु—तुतुषुः । रा—ननन्दुः । ११ चं, गु, पूं, दी, रा—महातेजाः । १२ दी—०छोके । १३ चं, दी, रा—सः । १४ पं—पुत्राश्चचत्वारः पुरुषर्षभ । १५ पूं—०पिनिर्वृत्ताः । कै—०द्विवृत्ता विष्णो । पं—०द्विवृता विष्णो । १६ गु, दी—प्रभुः

स्वयंभूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तमः[17] ।[18]
स हि नित्यं प्रशान्तात्मा[19] मन्दं[20] युक्तं च भाषते ॥[18] ८ ॥
नित्यं श्रेष्ठगुणैर्युक्तः[21] प्रज्ञावान् पार्थिवात्मजः ।[18]
बहिश्चर इव प्राणो बभूव गुणतः पितुः[22] ॥ ९ ॥
शीलवृद्धान्[23] वयोवृद्धान्[23] ज्ञानवृद्धांश्च[24] सज्जनान् ।
कथयामास[25] तान्नित्यमस्त्रयोग्यान् [26] कथान्तरे[26] ॥ १० ॥
कल्याणाभिजनः साधुरदीनः सत्यवागृजुः[27] ।
वृद्धैरपि विनीतश्च समर्थो धर्मनैपुणे ॥ ११ ॥
धर्मशास्त्रार्थतत्वज्ञः[28] स्मृतिमान्[29] धर्मकोविदः ।[30]
स्मितपूर्वाभिभाषी च कृत्येषु[31] व्यवसायवान् ॥[32] १२ ॥[33]

---

१७ गु, पूं, पं—गुणवत्तरः । दी—गुणसत्तमः । १८ रा—नास्ति । १९ दी—प्रसन्नात्मा । २० दी—धर्मयुक्तं । पूं—मंदं मुक्तं । पं—मृदुयुक्तं । २१ गु—श्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः । दी—श्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तैः । २२ गु—तस्य भूषणं । ९ । २३ चं, पूं, दी—शीलविद्यावयोवृद्धान् । २४ गु—ज्ञातिवृ० । २५ दी—सेवयामास । २६ गु—अस्त्रविद्यासु चांतरे । पूं—अस्त्रयोग्यांस्तु चांतरे । दी—अस्त्रज्ञानं तु चांतरे । रा—०योग्यान् मुनेर्गुणान् । २७ गु—०वानृजुः । पूं—०वागृजुः । रा—वाग्जनाः । २८ गु, पूं, दी, रा—धर्मकामार्थ० । कै—धर्मकार्यार्थ० । पं—धर्म्मकर्मार्थ० । २९ गु—स्मृतिवान् । ३० चं, गु, पूं, दी, रा—लौकिके समुदाचारे सविकल्पो[1] विशारदः । इत्यधिकम् । ३१ चं—सत्यवाग । ३२ गु—नास्ति । ३३ चं, गु, पूं, दी, रा—
अदीर्घसूत्रो दक्षश्च क्रियासु प्रतिपत्तिमान् ।[2] सुखोपसर्गी[3] सुहृदामर्थग्राही[4] प्रियंवदः ॥[5]
निभृतः[6] संभृताचारो[7] गुप्तमन्त्रः[8] सहायवान् । इत्यधिकमग्रे ।

---

१ पूं—०कल्पवि० । दी, रा—०कल्पेवि० । २ चं—प्रतिमानवान् । ३ पूं—सुखोपसर्पः । दी—सुखोपगम्यः । ४ पूं—सहृदः मर्थग्राही । दी—सुमहदर्थग्राही । ५ गु—नास्ति । ६ पूं—निभृतेः । ७ पूं—संवृताकारो । दी—संसृताचारो । ८ गु—गुप्तमंत्र० ॥

सानुक्रोशः कृतज्ञश्च त्यागी संयमकालवित्[34] ।
दृढभक्तिः स्थिरप्रज्ञो गुणग्राह्यनसूयकः[35] ॥ १३ ॥
निस्तन्द्रीरप्रमत्तश्च[36] निर्दोषः[37] परदोषवित् ।
परिग्रहानुग्रहयोर्यथान्यायमवेक्षिता[38] ॥ १४ ॥
कथञ्चिदुपकारेण कृतेनैकेन कस्यचित् ।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया[39] ॥ १५ ॥
अर्थकर्माण्युपायज्ञो[40] धर्मेणावेक्षते[41] सदा ।
श्रैष्ठ्यं[42] चार्थप्रदानेन प्राप्तो[43] व्यायामिकेषु[44] च ॥ १६ ॥[45]
अर्थधर्मावसक्तश्च सुखतत्त्वे च नालसः ।[46]
वैहारिकाणां[47] कार्याणां विज्ञातार्थो यथार्थवित्[48] ॥ १७ ॥
आरोढा[49] च विनेता च योक्ता[50] वारणवाजिनाम्[51] ।

---

३४ पूं—समयकाल० । ३५ चं, दी, पं—गुणग्राही न दूषकः । गु—०ह्यनुसूयकः । ३६ गु—निस्तंद्रो चाप्रमत्तश्च । ३७ गु, पूं, दी—स्वदोष० । ३८ चं, पूं—परिग्रहावग्रहयो० । पूं—०च वेदिता ॥ १६ ॥ दी—०मवेक्षते । गु—परिग्रह स्वसैन्यं हि शत्रुसैन्यमवग्रहः ॥ १४ ॥ ३९ गु—शतमथल्पवित्तया । ४० गु, पं—आर्यकर्मण्युपा० । पूं, रा—अर्थकर्मण्युपा० । दी—आयुःकर्मण्युपा० । ४१ गु—०वक्ष्यते । पूं, पं—०वेक्ष्यते । दी—०वेक्षिता । ४२ कै—श्रेष्ठः । पं—श्रेष्टः । ४३ कै—प्राप्तौ । ४४ दी—व्यायामकेषु । ४५ गु—नास्ति । ४६ गु—अर्थधर्म्मावसंक्लेश्य मुखतंद्रो न चालयं । १६ । चं. रा—अर्थधर्मावसंक्लेश्य (रा—०श्यः) सुखतत्त्वेन नालसः (रा—नालमः) । पूं—अर्थधर्मावसंक्लिश्य मुखतंत्रो न चालसः । पं—०तत्वो न चामवन् । दी—अर्थकामावसंक्लेश्य सुखतंत्रो न चालसः । ४७ गु—वैहारिणां च । ४८ चं, रा—विज्ञानार्थौ तथार्थवित् । ४९ चं, रा—आरोह्य । ५० चं. गु. पूं. दी. रा—युक्तो । ५१ पूं—वै गजवाजिनां । रा—वानरवा० ।

धनुर्वेदविदां शास्त्रैर्लोकानामतिसम्मतः ॥ १८ ॥
अभियाता प्रहर्ता च सेनानयविशारदः[५३] ।
अप्रधृष्यश्च संग्रामे सर्वैरपि[५४] सुरासुरैः ॥ १९ ॥
अनसूयुर्जितक्रोधो[५५] न द्रष्टा[५६] न च मत्सरी ।
न चावमन्ता भृत्यानां न च भृत्यवशानुगः ॥ २० ॥
सत्यवादी महोत्साहो वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ।
मितवागपि कार्येषु वक्ता वाचस्पतेः समः ॥ २१ ॥
लोकप्रियत्वे चन्द्रस्य वसुधायाः क्षमागुणैः[५७] ।
बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यो वीर्ये च स्याच्छचीपतेः[५८] ॥ २२ ॥
लोके[५९] संख्यायमानानां[५९] प्राज्ञः[६०] सर्वधनुष्मताम्[६१] ।
वीर्यवान्न च वीर्येण महता तेन विस्मितः ॥ २३ ॥
स तैः सर्वैः प्रजाकान्तैः[६२] प्रीतिसञ्जननैः पितुः ।
गुणैर्विरुरुचे रामो दीप्तैः[६३] सूर्य इवांशुभिः ॥ २४ ॥
तमेवं वृत्तसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम् ।
लोकपालोपमं नाथमकामयत[६४] मेदिनी ॥ २५ ॥

---

५२ चं, गु शास्त्रे लोकेतिरथ सम्मतः । पूं—शास्त्रे लोकाभिरथ संगतः । चं, दी, रा—शास्त्रे (रा—श्रेष्ठो) लोकेऽतिरथ सम्मतः । ५३ गु—सेवानय० । पूं—सेवानापिवि० । ५४ चं, गु, पूं, दी, रा—क्रुद्धैरपि । ५५ पूं—अनुसूयुः । गु—अनुसूयो । ५६ चं, गु, पूं, दी, रा, पं—दुष्टो । ५७ गु—क्षमो० । पूं, पं—क्षमागुणे । ५८ कै—चैव शचीपतेः । गु—०पतिः । ५९ कै, पं—०संख्यायमाणां च । पूं, दी—लोकसंख्या० । रा—०संख्योममात्मानं । ६० गु—प्राग्रयः । चं, रा—प्राप्तः । पूं—प्रायः । ६१ गु—०धनुभृतां । ६२ पं—प्रजाकामैः । ६३ गु, पूं, दी, रा, पं—दीप्तः । ६४ गु—रामं अकामयत ।

अनुरक्ताः[६५] प्रजास्तं[६५] हि सानुक्रोशं[६६] प्रजाहितम्[६६] ।
[६७]तं प्रेक्ष्य[६७] सुमहोत्साहं[६८] शक्तं च परिपालने ॥ २६ ॥
वृद्धैः[६९] [७०]श्रुतगुणोपेतैराप्तधर्म्मार्थतत्परैः ।
सोऽतिबाल्यात्प्रभृत्येव[७१] नृपतिः समयोजयत् ॥ २७ ॥
स्वभावेन विशुद्धेन[७२] सर्वशास्त्रागमेन च ।
[७३]अभवत्सर्वभूतानामधिको गुणवत्तया[७४] ॥ २८ ॥
तमेवं बहुभिर्युक्तं गुणैरनुपमं[७५] सुतम्[७५] ।
प्रेक्ष्य[७६] राजा दशरथश्चिन्तयामास तं प्रति ॥[७७] २९ ॥
तस्य बुद्धिरियं जाता वृद्धस्य[७८] चिरजीविनः ।[७७]
यौवराज्येऽभिषिञ्चामि सुतं राममिति[७९] स्थिरा[७९] ॥ ३० ॥
[८०]सा तस्य परमा प्रीतिर्हृदये पर्यवर्त्तत[८१] ।
कदा [८२]रामं [८२]सुतं द्रक्ष्याम्यभिषिक्तमिति[८३] [८३]प्रभोः ॥ ३१ ॥

---

६५ गु—अनुरक्तं प्रजानां । ६६ पूं—०क्रोशप्रजाहिते । ६७ कै—स्वोद्य । गु—संप्रेक्ष्य । ६८ गु-सुमनोग्राहं । ६९ चं, रा-वुद्धि । पं-वृद्धिः । ७० चं, पूं, दी, रा—श्रुत० । ७१ चं, पूं, दी, रा—स हि बा० । गु—तं हि बा० । पं—स तं बा० । ७२ गु—विबुद्धे(द्धे?)न० । पं—अतिशुद्धेन । ७३ चं, रा—सोऽभवत् । ७४ पं—०वृत्तया । रा—०वत्तथा । ७५ चं—०रनुपमैः सुतं । पं—०रनुपमै सुत । गु—०रनुपमैर्युतं । पूं—०रनवद्यैः सुतं । दी—रनवमैः सुतं । रा—०रनुपजीविनः । ७६ गु—प्रेक्ष्य । ७७ रा—नास्ति । ७८ कै—वृद्धस्याचिर० । ७९ चं-०मति स्थिरं । रा—०मिति स्थिता । गु—०स्थिरं । ८० गु—या । ८१ गु—परिवर्त्तते । ८२ चं, रा—राममहं । ८३ गु—द्रक्ष्ये ह्यभिषिक्तमिति प्रभुः । पूं—द्रक्ष्यमभिषिक्तमिति प्रभुः । दी, पं—रा—०प्रभुः ।

वृद्धिकामो हि[84] राष्ट्रस्य[85] सर्वभूतानुकम्पकः[86] ।
मत्तः प्रियतरो[87] लोके पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ ३२ ॥
यमशक्रसमो[88] वीर्ये बृहस्पतिसमो मतौ ।
महीधरसमो धृत्यां[89] गाम्भीर्ये सागरोपमः ॥ ३३ ॥
महीमहमिमां[90] कृत्स्नामधितिष्ठन्तमात्मजम्[91] ।
अनेन वयसा दृष्ट्वा जीवन्स्वर्गमवाप्नुयाम्[92] ॥[93] ३४ ॥
[कुलक्रमागतं राज्यं क्रम[94] एवं[95] नियुज्य हि[95] ।][96]
तं[97] समीक्ष्य महाराजः[97] समुपेतं सुतं[98] गुणैः[98] ।
सह[99] निश्चित्य[100] सचिवैर्यौवराज्यममन्त्रयत्[1] ॥ ३५ ॥
दिव्यं चैवान्तरिक्षं च भौमं चोत्पातजं[2] भयम् ।
आचचक्षे स[3] मेधावी शरीरे[4] चात्मनो[4] जराम् ॥ ३६ ॥[5]

---

८४ पूं—ह । ८५ पं—राज्यस्य । ८६ चं—०कंपनः । ८७ कै, दी—प्रियतमो । रा—प्रियकरो । ८८ कै—०क्रोपमो । ८९ गु—धीर्ये । पूं, पूं, दी—धृत्या । पं—वृत्या । रा—भृत्या । ९० गु—महीमिमामहं । ९१ गु—०मधिष्ठित तमात्मजं । पूं—०मभिषिक्तं तमा० । दी, पं—०मभितिष्ठं० । रा—०मभिषिक्तं तथा० । ९२ पूं—०मवाप्तवान् । ९३ चं, पूं, रा—नास्ति । ९४ चं, पूं, रा—कुल । ९५ पं—मेव हि युंक्ष्महि । ९६ कै—नास्ति । ९७ गु—समीक्ष्य स तदा राजा । रा—०महाराजा । ९८ गु—गुणैः सुतं । दी—समुपेतै गुणैः । ९९ चं, गु, पूं, पूं, दी, रा—स हि । १०० चं, पूं, रा—संमंत्र्य । १ पूं—०यञ्च राज्यम् । २ गु—चोत्पातकं । पूं—चौत्पातिकं । ३ गु, दी—अथ । पूं, पूं, रा—ह । ४ चं, गु, पूं, रा, पं—शरीरेणात्मनो । ५ गु, पूं, पूं, दी, रा—

एवं चिंतयतस्तस्य रामं प्रति महात्मनः ।
तत्तस्य भावं भावज्ञा विज्ञाय ज्ञानकोविदाः । ३७
गुरवो मंत्रिणश्चैव परां प्रीतिमपागमत् । इत्यधिकमग्रे ।

---

१ पूं, दी—०मवाप्नुवन् । पूं, रा—प्रीतिं गता हि ते ।

ततस्ते मन्त्रयामासुर्यौवराज्यमभीप्सवः ।
*तस्य धर्मार्थविदुषो भावमाज्ञाय सर्वशः ॥[६] ३७ ॥
*ब्राह्मणा मन्त्रिमुख्याश्च सर्वे वचनमब्रुवन् ।[६]
पूर्णचन्द्राननस्यास्य[७] सदृशस्यात्मनो[८] गुणैः ॥ ३८ ॥
लोकप्रियत्वं[९] रामस्य बुध्यते[१०] वै[११] महात्मनः ।[१२]
*आत्मनश्च प्रजानां च श्रेयसा च प्रियेण च ॥[१२] ३९ ॥
*काले[१३] कांक्षति संयोगं तेन त्वरति भूमिपः ।[१२]
अर्हत्येष[१४] हि[१५] धर्मात्मा यौवराज्यं महाबलः ॥ ४० ॥
समर्थः[१६] सर्वकार्येषु[१६] शक्रतुल्यपराक्रमः ।[१८]
एवं सम्मन्त्र्य महिता ऊचुर्दशरथं नृपम् ॥ ४१ ॥
राजेन[१९] धर्मेण धर्मज्ञ[१९] पृथिवी तेऽनुपालिता ।
गतश्च सुमहान् कालो वृद्धश्चासि[२१] नरेश्वर ॥ ४२ ॥

६ चं. गु. पूं. पू. दी. ग.—नास्ति। ७ पूं—पूर्णचंद्रनिभस्यास्य। ८ पूं—सदृशस्य नंदिनो। ९. गु—लोकप्रियस्य। पू, पूं, दी—लोकेप्रि०। १० गु, पूं—बुध्यते यं। पू—बुध्याय तं। दी—बुध्वा ते च। ११ पं—लोकप्रियत्वे गतिमान भूमिपालं सुखावहं। १२ पं—नास्ति। १३ कै—लोके। दी—कालः। १४ कै. पं—अर्हत्येव। १५ गु—सुधर्म्मात्मा। १६ चं—सर्वकार्येषु कुशलः। १७ पू—०क्रमे। १८ चं—पालने विष्णुतुल्यो हि साक्षाद्विष्णुरिवेश्वरः। इत्यधिकं "०पराक्रमः" इत्यनन्तरम्। १९ कै—राजं०। चं, पू—राजधर्मेण०। चं—०धर्मेण भूप। पं—०धर्मज्ञ धर्मेण। २० कै—तनुपालिता। गु—चानुपा०। २१ चं, पूं—वृद्धस्याद्य। पूं—वृद्धस्याद्य (द्य ?) दी. ग. पं—वृद्धोस्यद्य। गु, पू. पं—नरेश्वरः।

स रामं युवराजानमभिषिञ्चस्व राघवं[22] ।
तेषां तु[23] वचनं श्रुत्वा मनोज्ञं हृदयस्थितम्[24] ॥ ४३ ॥
अनिच्छन्निव[25] जिज्ञासुस्तान्[26] जनान्[26] प्रत्युवाच सः[27] ।
कथं[28] नु[28] मयि धर्मेण पृथिवीमनुशासति ॥ ४४ ॥
भवन्तः कर्त्तुमिच्छन्ति[29] युवराजं ममात्मजम् ।
ते तमूचुर्महात्मानं[30] वृद्धं दशरथं नृपम् ॥ ४५ ॥
बहवः कृतकल्याणा[31] गुणा[31] पुत्रस्य सन्ति ते ।[32]
पुत्रस्ते देवसदृशः स्वाध्यायाचारसंयुतः ॥[32] ४६ ॥
प्रियकृत् प्रियवादी च प्रजानां पितृमातृवत् ।[32]
बहुश्रुतानां वृद्धानां ब्राह्मणानामुपासिता ॥ ४७ ॥
*दुर्वृत्तानां नियन्ता च विनीतप्रतिपूजकः ।[33]
न ज्ञातिषु न मित्रेषु[34] न च जानपदेष्वपि ॥ ४८ ॥
जनोऽस्त्यगुणवादी यो रामस्य भुवि भूपते[35] ।[36]
सवृद्धबालाः पौरास्ते तथा जानपदा जनाः ॥[36] ४९ ॥
गुणानुरक्ता राजेन्द्र राममिच्छन्ति भूपतिम्[37] ।

---

२२ चं, गु, पूं, दी, रा—राघवं । २३ गु—तद् । २४ गु—हृदयेप्सितं । २५ चं—अनिच्छन्निव । गु-०छन्नपि । पूं-अविछिन्निव । २६ रा—तं जनं । २७ चं, पूं, रा—ह । २८ पूं, दी, रा, पं—कथं तु । गु—अजस्त्र (०स्रं?) २९ पूं, पूं, रा—कृतमि० । गु—कृतमिछंतु । ३० ०र्वयो वृद्धा । ३१ चं, पूं, रा—कृतकल्याणगुणाः । ३२ दी—नास्ति । ३३ गु—नियंता दुर्विनीतानां च विनीतः प्रति० ।चं, पूं, पूं, दी, रा—नास्ति । ३४ पं—वृद्धेषु । ३५ दी—भूमिप । ३६ गु—नास्ति । ३७ चं, गु, पूं, पूं, दी, रा—भूमिपं ।

गुणकीर्त्या नरपते प्रजा रामेण रञ्जिताः[३८] ॥ ५० ॥
एतच्छ्रुत्वा[३९] स नृपति[४०] र्द्विजानां मन्त्रिणामपि ।
हर्षं परममागच्छत्तेषां भावज्ञतां प्रति ॥[४१] ५१ ॥
सह सम्भिन्त्य[४२] सचिवैर्यौवराज्यमचिन्तयत्[४३] ।
सर्वान्नगरवास्तव्यान्[४४] पृथग्जानपदानपि[४५] ॥ ५२ ॥
आनाययामास[४६] तदा पृथिव्यां[४७] पृथिवीपतिः ।
ततः प्रजाः[४८] समागम्य[४९] ब्रह्मक्षत्रमुखास्तथा ॥ ५३ ॥
अनुज्ञाताः[५०] प्रविविशु र्नृपतेर्भवनं[५१] महत् ।
आसीनं चापि राजानमैक्ष्वाकुं[५२] राष्ट्रवर्द्धनम्[५३] ॥ ५४ ॥
प्राच्योदीच्यप्रतीच्याश्च[५४] दाक्षिणात्याश्च भूमिपाः ।

---

३८ पूं—रक्षिताः । ३९ चं—एतच्छ्रुत्वा वचो राजा । रा—एतत् श्रुत्वा वचो राजा । गु—इति श्रुत्वा तदा राजा । पूं—एतच्छ्रुत्वा तु राजा वै । दी—तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां । ४० पूं—जिज्ञास्नां । पूं—प्रजानां । अत्र 'प्रजा' इति बहिर्लिखितं हस्तेनान्येण विभिन्नमस्यास्त्र । ४१ चं, पूं—हर्षंतत्त्वमुपागच्छन् (पूं—त) तेषां भावानुगं प्रति । रा—हर्षंतत्त्वमुपागच्छ तेषां भावानुगं प्रति । गु—परं हर्षमुपागच्छन्० । पूं, दी—हर्षं परममुपागच्छत्० । पं—हर्षं० भावज्ञतां प्रति । ४२ कै, चं, गु, पूं—संचिन्त्य । ४३ चं, पूं, पूं, दी, रा—०ममंत्रयत् । ४४ गु, पूं, दी, पं—नानानगर० । ४५ चं, पूं, रा—ऋषीन् जानपदानपि । ४६ चं, पूं—आवाहयामास । पूं, पं—आनापयामास । दी—आनयामास स । ४७ चं, पूं, रा पृथिव्याः । ४८ गु—प्रजास्तदागत्य । दी—प्रजाः समायाता । ४९ पूं, पूं, दी, रा, पं—०स्तदा । ५० पं—अनुज्ञायाथ विविशु । ५१ गु—०भुवनं । ५२ कै—०मैक्ष्वाकं । चं, पं—०मिक्ष्वाकु० । पूं मिक्ष्वाकुं । ५३ पं—राज्य । ५४ गु, पूं—०दीच्या । पूं—प्राच्यादीच्याः । चं, दी, रा, पं—प्राच्योदीच्याः ।

म्लेच्छाश्चान्ये[५५] सुबहवः[५६] पार्वतीयाश्च सङ्गताः ॥ ५५ ॥
[उपासाश्चक्रिरे प्रीता महेन्द्रमिव देवताः ।
तेषां मध्ये महाराजो देवानामिव[५७] वासवः ॥ ५६ ॥
विद्योतमानं[५८] प्रभया ददर्श[५९] सुतमात्मनः ।
गन्धर्वराजप्रतिमं लोके विश्रुतपौरुषम् ॥ ५७ ॥
दीर्घबाहुं महासत्त्वमत्यन्तप्रियदर्शनम् ।
शैलप्रतिमदन्तीनां[६०] ग्रहीतारं[६१] विषाणिनाम् ॥ ५८ ॥
लोके विख्यातवीर्याणां श्रेष्ठं सर्वधनुष्मताम् ।
सुवर्षेणेव[६२] पर्जन्यं ह्लादयन्तं[६३] प्रजागुणैः ॥[६४] ५९ ॥
प्रद्योतयन्तं[६५] लोकांश्च[६५] सहस्रांशुमिवांशुभिः ।][६६]
तद्राजवेश्म मनुजैर्यथावत्प्रतिपूरितम्[६७] ।
ददर्श भीमनिर्ह्रादं वार्योघैरिव[६८] सागरः[६९] ॥ ६० ॥
तं[७०] जनौघं[७०] बहुविधं राजभिः समलङ्कृतम् ।
ददर्श द्युतिमान्[७१] राजा प्रजापतिरिवापरः[७२] ॥ ६१ ॥

---

५५ रा—म्लेछा त्वन्ये । ५६ चं, गु, पूं, पूं, दी, रा—च बहवः । ५७ रा—०मपि । ५८ कै—०मानः । पं—०मान । ५९ रा—ददृशुः । ६० चं, पूं, रा—शैलक्षापितद० । पं—शैलभूपतिरत्नानां । ६१ रा—प्रतीहारं । ६२ पं—सुवर्षेणेन । ६३ पं—ह्लादयन्तामिव प्रजाः । ६४ चं, पूं, रा—ह्लादनं सर्वमित्राणां शत्रूणां शोकवर्द्धनं । ६५ चं, पूं, रा, पं—गुणैः प्रद्योतयंतस्तं (चं—०यंतं तु) (रा, पं—०यंतं तं) । ६६ पूं, दी—नास्ति । ६७ पूं—०प्रीति० । पं—०प्रतिपूजितं । ६८ गु—वार्योघोरिव । पूं, दी—वार्योघैरिव । रा—वर्षौघैरिव । ६९ चं, पूं, दी, रा, पं—सागरं । पूं—सागरी । ७० पूं—ते जनौघैर् । ७१ कै—प्रीतिमान् । ७२ पं—प्रजाप्रीतिदिवामरान् ।

अथ राज्ञां वितीर्णेषु आसनेषु समन्ततः ।
राजानमेवाभिमुखा निषेदुर्नियताः प्रजाः ॥ ६२ ॥
तेषां मध्ये महातेजा देवानामिव वासवः ।
शशुभे सर्वसिद्धार्थः सर्वाभरणभूषितः ॥ ६३ ॥
ते तु तं सुमहात्मानं पूर्णचन्द्रसमद्युतिम् ।
उपासाञ्चक्रिरे वीराः कुवेरमिव नैर्ऋताः ॥ ६४ ॥
सं लब्धमानैर्विनयात्समागतैः पुरालयैर्जानपदैश्च मानवैः ।
उपोपविष्टैश्च नृपर्नृपो बभौ सहस्रचक्षुर्भगवानिवामरैः ॥ ६५॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे प्रकृतिसमागमो-
नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

७३ गु—राज्ञां विकीर्णेषु । पुं—राज्ञा विकीर्णेषु । दी—राजवितीर्णेषु । चं—०विस्तीर्णेषु । ७४ चं—ह्यासनेषु । पं स्वासनेषु । ७५ पं—०मुखं । ७६ चं. गु. पुं. पुं. दी. रा—जनाः । ७७ पुं—सिद्धार्थे । ७८ दी—सर्वाभूतिविभूषितः । ७९ कै—०समप्रभम् । पं—पूर्व्वचंद्र समप्रभं । दी—राजभिः समलंकृतं । ८० रा—कुवीरमिव नैनृताः । ८१ पुं—अलक्ष्मानैर्वि० । ८२ गु—सुगलयैर्० । ८३ रा—समागतैः । ८४, पुं—नास्ति । ८५ चं. रा—सुलोय० । १८६ पं—०वान् यथामरैः ॥

[चतुर्थः सर्गः]

ततः परिषदः सर्वा[1] आमन्त्र्य वसुधाधिपः ।
हितमुद्धर्षणं[2] चैवमुवाचाप्रतिमं[3] वचः ॥ १ ॥

दुन्दुभिस्वनकल्पेन[4] गम्भीरेणानुनादिना[5] ।
स्वरेण[6] भवनं[7] राजा जीमूत[8] इव नादयन् ॥ २ ॥

इदमिक्ष्वाकुभिः पूर्वैर्नरेन्द्रैः[9] परिपालितम्[10] ।
श्रेयसा योक्तुमिच्छामि सुखार्थमखिलं जगत्[11] ॥ ३ ॥

मयाप्याचरितं[12] पूर्वैः[13] पन्थानमनुगच्छता[14] ।
प्रजा विनीताश्चोत्सेधे[15] यथावदुपशिक्षिताः[16] ॥ ४ ॥

इदं शरीरं कृत्स्नस्य सुखस्य विषये[17] चिरम् ।
पाण्डुरस्यातपत्रस्य छायायां धारितं मया ॥ ५ ॥

---

१ गु—सर्वांश्चामन्त्र्य । २ चं—हृदयोद्ध० । पं—स्फीतमु० । ३ चं, गु, पू, पू, दी, रा—चेदमु० । ४ गु, पू—दुंदुभिः० । चं, रा—०स्वर० । पू—०भिनिस्वज्ञकल्पेन । ५ चं, पू—०नुनादितं (चं—०ते) । दी—०नुवादिना । पं—गांधर्वेणानु० । ६ चं, गु, पू, पू, दी, रा—स्वनेन । ७ गु, दी—भुवनं । चं, पू, रा—भगवान् । ८ पं—जीमूतेनेव नादितां । ९ चं, पू—सर्वैर्न० । रा-सर्वैर्न० । पं-पूर्वै न० । १० पू—०पालिनी । चं, पं—प्रतिपा० । ११ चं, पू, रा—जनं । १२ कै—सद्भिराचरितं । पं—मृयाह्याचरितं । चं, पू, रा-अयोध्याचरितं । १३ दी-पूर्वं । १४ चं-यथैनमनु० । पू—०गच्छत । १५ कै—०श्चोत्सोधं । चं—विनातिखे० । गु, पू, पू, दी, रा-विनीतखेदेन । १६ पू, दी—यथाशक्त्यभिरक्षिताः । पू-यथाशक्त्याभि० रक्षितं । चं, गु, रा—यथा शक्त्याभिरक्षिताः । १७ पू—विषयं ।

प्रायो[18] वर्षसहस्राणि बहून्यायुश्च पालितम् ।
जीर्णस्यास्य शरीरस्य विश्राममभिरोचये ॥ ६ ॥
राजपुङ्गवगुप्तां[19] हि दुर्धरामजितेन्द्रियैः[20] ।
परिश्रान्तश्च[21] लोकेऽस्मिन् गुर्वीं[22] धर्मधुरं[23] वहन् ॥[24] ७ ॥
सोऽहं विश्राममिच्छामि कृत्वा सर्वप्रजाहितम् ।
भवद्भिरपि तत्सर्वमनुमन्तव्यमद्य[25] मे[26] ॥ ८ ॥
अनुयातो[27] हि मे सर्वगुणैर्ज्येष्ठो[28] ममात्मजः ।
पुरन्दरसमो वीर्ये रामः परपुरञ्जयः[29] ॥ ९ ॥
तं चन्द्रमसि पुष्येण युक्ते धर्म्मभृतां वरम् ।
यौवराज्ये ऽभिषेक्तास्मि[30] प्रातः[31] क्षत्रियपुङ्गवम् ॥ १० ॥
अनुरूपो हि राज्यस्य[32] लक्ष्मीवान् लक्ष्मणाग्रजः[33] ।
त्रैलोक्यमपि नाथेन येन स्यान्नाथवत्तरम् ॥ ११ ॥

---

१८ चं. गु. पूं. पूं. दी. रा प्राप्य । १९. चं गु. पूं पूं. दी. रा–पुंगवजुष्टां । २० चं. गु. पूं. पूं. दी. रा दुर्वहाम० । दी –०मकृतात्मभिः । २१ चं–परिक्रांतां । पूं परिक्रान्तश्च । रा–परिक्रांताः । पूं–परिश्रांतस्य । २२ पू. पूं. पं –गुर्वीं । २३ चं. पूं–०धुरंमहन् । पूं० धुरावहं । २४ चं–धारयामि जना लोके दृढो भूत्वा महोक्षवत् । इदानीं तां समुन्नीय मंत्रिणो विप्रक्षत्रियाः । इत्याधिकं 'वहन्' इति पश्चात् । २५ चं. गु रा–सर्व० । २६ चं, पूं–०मनुवर्त्तव्यमद्य वै । रा–०मनुवर्तव्यम० । दी–०मद्य ते । २७ पूं, पं–अनुजातो । चं, गु, पूं, दी, रा–अनुजातो । २८ दी–०जुष्टो० । पं –सर्वगुणज्येष्ठो महामनाः । २९ गु–पुरपुर० । ३० पूं, दी–भिषिक्ता० । ३१ पं–प्रीतः ०पुंगवाः । ३२ पं–राष्ट्रस्य । पूं–राज्या वै । चं. गु, पूं, दी, रा–राजा वै । ३३ चं, पूं, रा–लक्ष्म(रा–क्ष्म)णान्वितः ।

संयोज्य रामं राज्येन श्रेयसाऽहं महीमिमाम्[34] ।
संश्रित्य[35] रामस्य भुजौ[36] विहर्ताऽस्मि गतज्वरः ॥ १२ ॥
इति ब्रुवाणं मुदिता अभ्यनन्दन्[37] नृपं प्रजाः[38] ।
वृष्टिमन्तं महानादं[39] पर्जन्यमिव बर्हिणः[40] ॥ १३ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवकल्पस्य[41] धीमतः ।
प्रियं चैवानुरूपं च वक्तुं[42] समुपचक्रमुः ॥ १४ ॥
दिव्यैर्गुणैर्दक्षसमो रामः शक्रसमो बले ।
इक्ष्वाकुभ्यो हि सर्वेभ्यो व्यतिरिक्तो[43] विशांपते ॥ १५ ॥
रामस्य पुरुषो लोके सत्त्वधर्मयशोबलैः[44] ।
समो[45] न विद्यते कश्चिद्विशिष्टः कुत एव तु ॥ १६ ॥
धर्मात्मा सत्यवादी च शीलवाननसूयकः[46] ।
दान्तः सत्त्वहितैः[47] प्राज्ञः कृतज्ञो विजितेन्द्रियः ॥ १७ ॥
मृदुश्च स्थिरबुद्धिश्च[48] नित्यं दीनानुकम्पकः[49] ।

---

३४ कै, चं, पूं, रा—महीपतिम् । ३५ गु, दी—संसृत्य । ३६ पूं—भुजे । ३७ गु–सर्वेऽनंदन्नृपं । पूं[1]–सर्वे नंदन्नृपा । पूं[2]–सर्व्वे चैतं नृपं । दी—सर्वे नंदन्नृपं । रा–सर्वे वैतं नृपं । ३८ गु, पूं[1], पूं[2], दी, रा–नराः । ३९ चं, गु, पूं, दी, रा–वृष्टिमंतमिवांभोदं गर्जंतमिव । पूं[2]–वृष्टिवंतमिवावृदं गर्जंतमिव । पं—०गर्जन्तामिव । ४० पूं—बर्हणः । ४१ चं—शर्वकल्पस्य । पूं[2]—सर्व्वकल्पस्य । रा—सर्वकल्पस्य । ४२ पूं[2]—प्रवतस्मुपचक्रमुः । दी–०चक्रमे । ४३ पूं[2]—व्यातिरेको । रा—वातिरिक्तो । ४४ चं, रा—सत्यधर्मयशोगुणैः । पूं[2]—सत्यधर्म्मपरोगुणः । ४५ पूं[1]—समानो । ४६ रा—धर्मवाश्चनसूयी च सत्यवान् बलवांस्तथा । ४७ गु, पूं[1], दी, पं—सांत्वयिता शक्तः । ४८ चं, गु, पूं[1], पूं[2], दी, रा–स्थिरवृत्तिश्च । ४९ चं–०कंपनः ।

प्रियवादी जितक्रोधो दीर्घदर्शी महामतिः[५०] ॥ १८ ॥
बहुश्रुतानां वृद्धानां[५१] ब्राह्मणानामुपासिता ।
तेन तस्यातुलाकीर्त्ति[५२] र्यशस्तेजश्च वर्द्धते ॥ १९ ॥
समर्थश्च[५३] धनुर्वेदे हय[५४]पृष्ठे गजे रथे ।
लब्धास्त्रः[५५] शब्दवेधी च दूरपाती दृढायुधः ॥ २० ॥
देवासुरमनुष्याणां संयुगेष्वपराजितः ।
दिव्यमानवसंस्थेषु[५६] सर्वास्त्रेषु विशारदः ॥ २१ ॥
यं चोपयाति सङ्ग्रामे ग्रामान्ते नगरेऽपि वा[५७] ।
गत्वा सौमित्रिणा सार्द्धं तं[५८] जित्वा विनिवर्त्तते[५८] ॥ २२ ॥
सदाग्रे नगराद्गच्छन्[५९] कुञ्जरेण रथेन वा[६०] ।
राजमार्गेऽपि[६१] नो दृष्ट्वा कुशलं परिपृच्छति ॥ २३ ॥
पुत्रेष्वग्निषु दारेषु प्रेष्यशिष्यगणेषु च ।
निखिलेनानुपूर्व्येण[६२] पिता पुत्रानिवौरसान् ॥ २४ ॥

---

५० गु, महाद्युतिः । ५१ पूं—वृत्तानां । ५२ पूं—वश्यातु० । ५३ गु पूं, पूं, दी, रा, पं—समाप्तश्च । ५४ दी अश्व० । ५५ गु, पूं, दी—लब्धस्त्रः । पूं—लब्ध्वास्त्रः । पं—लब्धस्त्र० । ५६ गु, पूं, पूं, दी, रा, पं—०मानुष० । चं—०मानुषसंस्थेषु । ५७ पूं, पं—च । ५८ चं, पूं—विजित्योपनिवर्त्तते रा—तं जित्वोपनिवर्त्तते । गु, दी—तं जित्वोपनिवर्त्तते । पूं—जित्वोपरि निवर्त्तते । ५९ गु, पूं, दी, पं—निर्भयं गच्छन् । रा—तन्नरे गच्छन् । ६० चं, पूं, दी—च । ६१ चं, पूं, रा—राजमार्गेण । ६२ गु, पूं, दी, रा, पं—०नुपूर्वेण । पूं—०नुपूर्व्ये न ।

शुश्रूषन्ति[63] वः[64] शिष्याः कच्चित्कर्मसु[65] दंशिताः[66] ।
इति नः[67] पुरुषव्याघ्रः[68] सदा रामोऽभिभाषते[69] ॥ २५ ॥
व्यसनेषु च सर्वेषां[70] भृशं भवति दुःखितः ।
दृष्ट्वा नोऽभ्युदयं[71] किञ्चित्पितेव परितुष्यति ॥ २६ ॥
वत्सः[72] श्रेयसि जातस्ते दिष्ट्याऽसौ तव राघवः[73] ।
दिष्ट्या रामो गुणैर्युक्तो मारीच इव कश्यपः ॥[74] २७ ॥
बलमारोग्यमायुश्च रामस्य विदितात्मनः[75] ।
आशास्ते हि जनः सर्वो[76] राष्ट्रेषु नगरेषु च ॥[77] २८ ॥[78]
आभ्यन्तराश्च बाह्याश्च[79] पौरजानपदा जनाः ।[77]
स्त्रियो वृद्धास्तरुण्यश्च सायं प्रातः[80] समाहिताः[81] ॥ २९ ॥
सर्वे[82] देवान्नमस्यन्ति रामस्यार्थे महात्मनः ।
तेषामाशंसितं[83] चैव त्वत्प्रसादाच्च युज्यताम् ॥ ३० ॥

---

६३ गु, पूं—शुश्रूषंते । ६४ गु—च वः । ६५ गु पूं रा, पं—कश्चित्क० । दी—कच्चित्क० । ६६ गु—दंशिता । पूं, दी—दंशिताः । रा—दंस्मिताः । चं, पूं, पं—दर्शिताः । ६७ पूं—तान् । ६८ गु, दी—०व्याघ्र । ६९ दी—०ऽपिभा० । ७० पं—सर्वेषु । ७१ चं, गु, पूं, पूं, दी, रा—श्रुत्वा चाभ्युदयं । ७२ पूं, दी—वत्स । ७३ पूं, पूं, रा, पं—राघव । ७४ पूं—नास्ति । ७५ दी—पौरा जानपदा जनाः । ७६ चं, गु, पूं, रा, पं—आशासते जनाः सर्वे । ७७ दी—नास्ति । ७८ गु—आभ्यांतराश्च । पूं—आभ्यंतरश्च । रा—अभ्यंतरश्च । पं, अभ्यंतराश्च । ७९ पूं, पूं, रा, पं—बाह्यश्च । ८० रा—प्रायः । ८१ गु, दी—समाहितः । ८२ सर्वै देवा नम० । पूं—सर्व्वान्देवान्नम० । रा—सर्वान् देवान्नम० । ८३ गु, पूं, दी—०मायाचितं । चं—तेषामपचितं । पूं, रा—तेषामयाचितं । पं—०मसाक्षितं ।

वीरमिन्दीवरश्यामं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।
पश्येम यौवराज्य[८४]स्थं रामं राजीवलोचनम् ॥ ३१ ॥
तं देवदेवोपममात्मवन्तं सर्वस्य लोकस्य हिते निविष्टम् ।
अतीव[८५] तं[८५] क्षिप्रमुदार[८६]सत्त्वं पुरेऽभिषेक्तुं वरदार्हसि त्वम् ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याका[८७]ण्डे प्रकृतिवाक्यं
नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

८४ पं—पौरराजानं । ८५ पूं—आर्ता वयं । गु, दी—अतीव नः । पूं—अतीव ते । ८६ गु—क्षत्रमुदार० । ८७ गु—अयोध्या पर्वणि ॥

[पञ्चम सर्गः]

तेषामञ्जलिमालास्तां[1] प्रतिगृह्य समन्ततः ।
हृष्टो दशरथो राजा प्रोवाचेदं वचस्तदा ॥ १ ॥
धन्यो ऽस्म्यनुगृहीतो ऽस्मि भवद्भिः प्रियवादिभिः ।
यन्मे ज्येष्ठं प्रियं पुत्रं युवराजमिहेच्छथ ॥ २ ॥
इति राजा ऽनुभाष्यैतानिदं[2] वचनमब्रवीत् ।
वसिष्ठं वामदेवं च तेषामेवोपशृण्वताम् ॥ ३ ॥
चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः ।
यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्प्यताम् ॥[3] ४ ॥
आभिषेचनिकं[4] द्रव्यं यत्किंचिद्[5] ज्ञापयन्तु[6] माम् ।
यन्मया चोपहर्त्तव्यं[7] रामराज्याऽभिपत्तये ॥ ५ ॥
तौ तथेति प्रतिज्ञाय नृपतेर्वचनात्तदा[8] ।
लेखयाञ्चक्रतुर्द्रव्यं भूपस्यैवोपशृण्वतः[9] ॥ ६ ॥
कृतमित्येवं[10] चाब्रूतामभिगम्य[10] नराधिपम् ।
सुप्रीतमनसौ प्रीतं हर्षयन्तौ पुनर्नृपम्[11] ॥ ७ ॥
ततः सुमन्त्रमाहूय राजा दशरथो ऽब्रवीत् ।
रामः कृतात्मा भवता शीघ्रमानीयतामिति ॥ ८ ॥

---

१ पं—तेषां प्रांजलिमानस्ताः । २ अ, कु—०तानेवं भूयो ऽब्रीद्वचः । ३ अ, कु—रामाय यौवराज्यं मे दातुमत्रैव रोचते । ४ कै—सर्वं । ५ अ, कु—भवंतो । ६ कै—भावयंतु । ७ पं—०पकर्त्तव्यं । ८ अ, कु—०वचन तदा । ९ अ, कु—भूयश्चैनं ननंदतु । १० पं—०मित्येवमं ब्रूतामधिगम्य । ११ कै—तु तौ नृपम् । पं—पुरं नृपं ।

स तथेति प्रतिज्ञाय सुमन्त्रो राजशासनात् ।
रामं तत्रानिनायाशु[१२] रथेन रथिनां वरः[१३] ॥ ९ ॥
अथ तत्र समानीतास्तदा[१४] दशरथं नृपम् ।
प्राच्योदीच्यप्रतीच्याश्च[१५] दाक्षिणात्याश्च भूमिपाः ॥ १० ॥
म्लेच्छाश्च यवनाश्चैव शकाः[१६] शैलान्तवासिनः ।
उपासाञ्चक्रिरे सर्वे तं[१७] देवा इव वासवम्[१८] ॥ ११ ॥
तेषां मध्ये स राजर्षिर्मरुतामिव वासवः ।
प्रासादस्थो रथगतं ददर्शायान्तमात्मजम् ॥ १२ ॥
गन्धर्वराजप्रतिमं लोके विश्रुतपौरुषम् ।
दीर्घबाहुं महासत्त्वं मत्तमातङ्गगामिनम् ॥ १३ ॥
चन्द्रकान्ताननं[१९] राममतीवप्रियदर्शनम्[२०] ।
रूपौदार्यगुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारिणम् ॥ १४ ॥
घर्माभितप्ताः पर्जन्यं ह्लादयन्तमिव प्रजाः ।
नातृप्यन्त[२१] तमायान्तं वीक्षमाणो[२२] नराधिपः ॥ १५ ॥
अवतार्य सुमन्त्रश्च राघवं स्यन्दनोत्तमात् ।
पितुः समीपं गच्छन्तं प्राञ्जलिः[२३] पृष्ठतोऽन्वगात्[२४] ॥ १६ ॥

---

१२ अ, कु—तत्रानयां चक्रे । १३ अ, कु—वरं । १४ अ, कु—समानीतै तदा । १५ पं—०दीच्याश्चप्र० । "श्च" इति लोपव्यञ्जकचिह्नेन अङ्कितः । १६ पं—शकः । १७ अ, कु, पं—ते । १८ पं—वासवं । १९ पं—चंद्रकांत्याननं । २० पं—दृष्टचिता० । २१ अ, कु—नातृप्यत । २२ पं—०यांतमीक्ष० । २३ पं—प्रांजलिं । २४ कै—०न्वयात् ।

स तं कैलासशृङ्गाभं[25] प्रासादं नरपुङ्गवः ।
आरुरोह नृपं द्रष्टुं सह सूतेन[26] राघवः ॥ १७ ॥
स प्राञ्जलिरभिप्रेत्य प्रणतः पितुरन्तिकम्[27] ।
नाम संश्रावयन् रामो ववन्दे चरणौ पितुः ॥ १८ ॥
तं दृष्ट्वा प्रणतं पार्श्वे कृताञ्जलिपुटं नृपः ।
गृहीत्वाऽञ्जलिमाकृष्य[28] सस्वजे प्रियमात्मजम्[29] ॥ १९ ॥
तस्मै चाभ्युच्छ्रितं श्रीमान्[30] मणिकाञ्चनभूषितम्[31] ।
दिदेश राजा रुचिरं रामायानुपमासनम् ॥ २० ॥
तदासनवरं प्राप्य दीपयामास[32] राघवः ।
स्वयेव प्रभया मेरुमुदये विमलो रविः ॥ २१ ॥
तेन विभ्राजता तत्र सा सभाऽपि[33] व्यराजत ।
विमलग्रहनक्षत्रा[34] शारदी द्यौरिवेन्दुना[35] ॥ २२ ॥
तं स पश्यन्नरपतिस्तुतोष प्रियमात्मजम् ।
अलङ्कृतमिवात्मानमादर्शतलमास्थितम् ॥ २३ ॥
स तं सस्मितमाभाष्य पुत्रं पुत्रवतां वरः ।
उवाचेदं वचो राजा देवेन्द्रमिव कश्यपः[36] ॥ २४ ॥

२५ अ—कैलाश० । २६ कै—सहितस्तेन । २७ अ, कु—पितुरंतिके । २८ अ, कु—गृहीता० । २९ कै—स्वयमात्मजम् । ३० अ, कु—चाभ्युचितं श्रीमन् । कै—चाभ्युत्थितं० । ३१ अ, कु, पं—०भूषणम् । ३२ अ, कु—व्यदीपयत । पं—सोदीपयत । ३३ अ, कु—समाति । ३४ कै—विशालग्रह० । ३५ कै—द्यौरिवोडुना । ३६ पं—भूमिपः ।

ज्येष्ठायामसि मे पत्न्यां[३७] सदृश्यां सदृशः सुतः ।
उत्पन्नः[३८] सद्गुणैः पूज्यो[३८] मम रामात्मजः प्रियः ॥ २५ ॥
त्वया यतः प्रजाश्चेमाः स्वगुणैरनुरञ्जिताः ।
तस्मात्त्वं पुष्ययोगेन यौवराज्यमवाप्नुहि ॥ २६ ॥
कामं[३९] च त्वं[४०] प्रकृत्यैव विनीतो गुणवानसि[४१] ।
गुणवत्त्वात्[४२] पितृस्नेहात् पुत्र वक्ष्यामि ते हितम् ॥ २७ ॥
भूयो विनयमास्थाय भव नित्यं जितेन्द्रियः ।
कामक्रोधसमुत्थानि त्यज[४३] त्वं[४३] व्यसनानि च ॥ २८ ॥
परोक्षया ऽपि[४४] संबुद्ध्या[४४] राम प्रत्यक्षया तथा ।
परमां प्रकृतिं दृष्ट्वा परिपाल्याः[४५] प्रजास्त्वया[४६] ॥ २९ ॥
निर्ममो[४७] निरहङ्कारो भूत्वा राम गुणान्वितः ।
ततः पालय पुत्रेमाः प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ ३० ॥
योधानमात्यान् हस्त्यश्वान्[४८] कोपं चावेक्ष्य यत्नवान् ।
तथा मित्राणि मध्यस्थानमित्रांश्चानुरञ्जय[४९] ॥ ३१ ॥
तुष्टानुरक्तप्रकृतयः पालयति मेदिनीम् ।
तस्य नन्दन्ति मित्राणि लब्ध्वाऽमृतमिवामराः ॥ ३२ ॥

३७ कै—यत्त्वं । ३८ अ, कु—उत्पन्नस्त्वं गुणज्येष्ठो । ३९ कै, पं—कार्यं । ४० कै, पं—ते । ४१ कै—गुणवानपि । ४२ कु—गुणाकरो । अ—गुणवत्त्वे । ४३ पं—त्यजस्व । अ, कु—त्यजेश्च । ४४ अ, कु—निशं बुद्ध्या । ४५ कै—प्रतिपाल्याः । ४६ अ, कु—त्वया प्रजाः । ४७ कु—ततस्त्वं । अ—तत्परो । ४८ अ, कु—हस्त्यश्वं । ४९ कै—मध्यस्थान्मित्राण्यप्युपरंजय । पं—मध्यस्था मित्रं चैवानुरंजयन् ।

तस्मात्पुत्र त्वमात्मानं नियम्यैवं[50] समाचर

इति राज्ञा वचः श्रुत्वा नराः प्रियनिवेदिनः ।
त्वरिताः शीघ्रमभ्येत्य कौशल्यायै न्यवेदयन् ॥ ३३ ॥

सा हिरण्यं च गाश्चैव[51] रत्नानि विविधानि च ।
व्यादिदेश प्रियाख्येभ्यः कौशल्या प्रमदोत्तमा ॥ ३४ ॥

अथाभिवाद्य राजानं रथमारुह्य राघवः ।
ययौ स्वं द्युतिमान्वेश्म जनौघैः पथि पूजितः ॥ ३५ ॥

ते चापि पौरा नृपतेर्वचस्तच्छ्रुत्वा ततोलाभमनन्तमापुः ।
नरेन्द्रमामन्त्र्य गृहाणि[54] गत्वा देवान् समानर्चुरतीवहृष्टाः॥३६

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे रामाभिषेकव्यवसायो नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

५० अ, कु—निशम्यैवं । ५१ अ, कु, पं—गां चैव । ५२ कै—तदा तेभ्यः । पं—प्रयातेभ्यः । ५३ कु—०मिवेष्टमापुः । अ—०मिवेष्टिमाप्य । ५४ कै—गृहांश्च ॥

[षष्ठः सर्गः]

गतेष्वथ नृपो भूयः पौरेषु सह मन्त्रिभिः ।
मन्त्रयित्वा ततश्चक्रे निश्चयज्ञः स निश्चयम् ॥ १ ॥
श्व एव पुष्यो भविता[1] सुतो मे श्वो ऽभिषिच्यताम् ।
रामो राजीवताम्राक्षो यौवराज्य इति प्रभुः ॥ २ ॥A
अथान्तर्गृहमाविश्य राजा दशरथस्तदा ।
सूतमाज्ञापयामास रामं॰ पुनरिहानय॰ ॥ ३ ॥
प्रतिगृह्य॰ स॰ तद्वाक्यं सूतः पुनरुपाययौ[2] ।
रामस्य भवनं शीघ्रं राममानयितुं पुनः ॥ ४ ॥
तेन चावेदितं तस्य रामस्यागमनं[3] पुनः ।
द्रष्टुमिच्छति राजा त्वां शीघ्रमागन्तुमर्हसि ॥ ॰५ ॥
श्रुत्वा प्रमाणमत्र त्वं गमनायेति राघवं ।
इति सूतवचः श्रुत्वा रामो ऽपि त्वरयाऽन्वितः ॥ ६ ॥
प्रययौ राजभवनं पुनर्द्रष्टुं नरर्षभम् ।
स श्रुत्वा समनुप्राप्तं रामं दशरथो नृपः ॥ ७ ॥
तूर्णं प्रवेशयामास विवक्षुः प्रियमुत्तमम् ।
प्रविशन्नेव च श्रीमान् राघवो भवनं पितुः ॥ ८ ॥
ददर्श पितरं दूरात् प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ।
प्रणमन्तं समुत्थाप्य तं परिष्वज्य भूमिपः ॥ ९ ॥

---

१ पं—भवति । A पं—राममवेदयत्सर्वं प्रणगाद्धर्षितेन न । ॰पं—नास्ति । (त्यक्तं भाति ।) २ पं—पुनरथाययौ । ३ कै—रामस्य गमनं । ॰पं—नास्ति । (त्यक्तम् ।) ४ कै—राघवः । ५ पं—चाशु । ६ पं—स । ७ कु—प्रणमानं । अ—प्रणामान ।

आदिश्य चास्मै[8] रुचिरमासनं पुनरब्रवीत् ।
राम वृद्धो ऽस्मि दीर्घायुर्भुक्त्वा[9] भोगान् यथेप्सितम् ॥ १० ॥
अन्नवद्भिः[10] क्रतुशतैस्तथेष्टं भूरिदक्षिणैः ।
प्राप्तमिष्टम्[11]पत्यं मे मयाऽप्य[12]नुपमं भुवि ॥ ११ ॥
दत्तमिष्टमधीतं च मया पुरुषसत्तम ।
अनुभूतानि च[13] तथा[13] वीर राज्यसुखानि च ॥ १२ ॥
देवर्षिपितृविप्राणामनृणो[14] ऽस्मि तथाऽऽत्मनः ।
न किञ्चिन्मम कर्तव्यं तवान्यत्राभिषेचनात् ॥ १३ ॥
अतस्त्वां यदहं ब्रयां तन्मे त्वं कर्तुमर्हसि ।
अथ[15] प्रकृतयः सर्वास्त्वामिच्छन्ति नराधिपम् ॥ १४ ॥
अतस्त्वां यौवराज्ये ऽहमभिषेक्ष्यामि पुत्रक[16] ।
रात्र्यन्ते च तथा[17] राम स्वप्नान् पश्यामि दारुणान् ॥ १५ ॥
सनिर्घाता महोल्काश्च पतन्ति[18] खरनिःस्वनाः[18] ।
उपसृष्टं च मे राम नक्षत्रं[19] दारुणैर्ग्रहैः ॥[20] १६ ॥
आवेदयन्ति दैवज्ञाः सूर्याङ्गारकराहुभिः ।[20]
प्रायशो हि[21] निमित्तानामीदृशानां समुद्भवे ॥ १७ ॥

---

८ कै—तस्मै । ९ अ, कु—भुंक्ता भोगा यथेप्सिताः । पं—मुक्ता भोगान्यथेप्सितान् । १० अ, कु—मंत्रवद्भिः । ११ अ, कु—जातमि० । १२ अ, कु—त्वमप्य० । १३ अ, कु—चेष्टानि । १४ अ, कु—०पितृभूतानाम० । १५ अ, कु—अद्य । १६ पं—पुत्रकं । १७ पं—तदा । १८ अ—पतिताश्च महाश्वनाः । कु–पतिताश्च........ । पं-पतंति हि महास्वनाः । १९ अ—नक्षत्रैर् । २० कु—नास्ति । त्रुटितं भाति । २१ पं—स्व ।

राजा वा मृत्युमाप्नोति राज्यं वा नव ऋच्छति[22] ।
तद्यावदेव चित्तं[23] मे न विमुह्यति राघव ॥ १८ ॥
तावदेवाभिषिच्यस्व चला हि प्राणिनां गतिः ।
अद्य चन्द्रोऽभ्युपगतः[24] पुष्यात्पूर्वं पुनर्वसुम् ॥ १९ ॥
श्वः पुष्ययोगं नियतं वक्ष्यन्ते दैवचिन्तकाः ।
तत्र त्वमभिषिच्यस्व मनस्त्वरयतीव माम् ॥ २० ॥
श्वस्त्वाऽहमभिषेक्ष्यामि[25] यौवराज्ये परन्तप ।
तस्मात्त्वयाऽद्य व्रतिना निशेयं नियतात्मना ॥ २१ ॥
सह वध्वोपवस्तव्या दर्भास्तरणशायिना[26] ।
सुहृदस्त्वाऽप्रमत्ताश्च[27] रक्षन्त्वद्य प्रयत्नतः ॥ २२ ॥
भवन्ति बहुविघ्नानि कार्याण्येवंविधानि हि[28] ।
निष्कासितश्च[29] भरतो यावदेव पुरादितः ॥ २३ ॥
तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम ।
कामं खलु सतां वृत्ते भ्राता ते भरतः स्थितः ॥ २४ ॥
ज्येष्ठानुवर्त्ती धर्मात्मा सानुक्रोशो जितेन्द्रियः ।
किन्तु चित्तं मनुष्याणां जानाम्येवं यथा चलम्[30] ॥ २५ ॥
सतां च धर्मकृत्यानि कृतशोभानि राघव ।
इत्युक्त्वा सो[31] ऽभ्यनुज्ञातः[32] श्वो भाविन्यभिषेचने ॥ २६ ॥

---

२२ अ, कु—राष्ट्रं वा रदमृच्छति । पं—०ऋक्षति । २३ अ, कु—चेतो । २४ अ, कु—ह्युप० । २५ अ, कु—०त्वामभिनिवेक्ष्यामि । २६ अ, कु—दर्भसंस्तरशा० । २७ अ, कु—सुहृदश्चाप्रमत्तास्त्वां । पं—सुहृदस्त्वां—प्रपद्यस्व । २८ अ, कु, पं—तु । २९ अ, कु—निर्वासितश्च । ३० अ, कु—जानामि चलनात्मकं । पं—जानाम्येवं० । ३१ अ, कु—इत्युक्तासो (कु—सो) । ३२ कै—०भ्यनु० ।

व्रजेति राज्ञा[32] काकुत्स्थो जगाम स्वंनिवेशनम्[33] ।
प्रविश्य चात्मनो वेश्म राज्ञाऽऽदिष्टे ऽभिषेचने ॥ २७ ॥
तस्मिन् क्षणे ऽभिनिर्गम्य[34] मातुरन्तःपुरं ययौ ।
प्रणत[35]स्तत्र तामेव[35] मातरं क्षौमवाससम् ॥ २८ ॥
ददर्श याचमानां तां देवतावेश्मनि श्रियम् ।
प्रागेव चागता तत्र सुमित्रा लक्ष्मणस्तथा ॥ २९ ॥
सीता चैवापि[36] तच्छ्रुत्वा[36] प्रियं रामाभिषेचनम् ।
तस्मिन् काले हि कौशल्या तस्थावामीलितेक्षणा ॥ ३० ॥
सुमित्रयोपास्यमाना सीतया लक्ष्मणेन च ।
श्रुत्वा पुष्येण पुत्रस्य यौवराज्याभिषेचनम् ॥ ३१ ॥
प्राणायामेन पुरुषं ध्यायन्ती सा जनार्दनम् ।
तथा स नियतामेवमभिगम्याभिवाद्य च ॥ ३२ ॥
उवाच मातरं रामो हर्षयिष्यन्निदं वचः ।
अम्ब[37] पित्रा नियुक्तो ऽस्मि प्रजापालनकर्मणि ॥ ३३ ॥
भविता श्वो ऽभिषेको मे यथा वै शासनं पितुः ।
सीतया चोपवस्तव्या रजनीयं मया सह ॥ ३४ ॥
एवमृत्विगुपाध्यायैः सह मामुक्तवान् नृपः ।
यानि चात्यन्तयोग्यानि श्वो भाविन्यभिषेचने ॥ ३५ ॥

---

३३ अ, कु, पं—रामः पितरमभिवाद्याभ्ययाद्गृहं । ३४ अ—विनिर्गत्य । कु—विनिर्गत्य । पं—विनिर्गम्य । ३५ अ, कु—तत्र तां प्रयतामेव । पं—तत्र तां प्रणतामेव । ३६ अ, कु, पं—चानायिता (पं—चानापिता) श्रुत्वा । ३७ अ, कु—अद्य ।

तानि मे मङ्गलान्यद्य सीतायाश्चापि[38] कारय ।
एतच्छ्रुत्वा तु कौशल्या चिरकालाभिकांक्षितम् ॥ ३६ ॥
हर्षवाष्पाकुलं वाक्यमिदं राममभाषत ।
वत्स राम चिरं जीव हतास्ते परिपंथिनः ॥ ३७ ॥
ज्ञातीन्[39] मे त्वं श्रिया युक्तः सुमित्रायाश्चनंदय[40] ।
कल्याणे[41] त्वं च नक्षत्रे मयि जातो ऽसि पुत्रक ॥ ३८ ॥
येन त्वया दशरथो गुणैराराधितः पिता ।
अमोघा चात्र[42] मे[43] भक्तिः पुरुषे पुष्करेक्षणे ॥ ३९ ॥
सेयमिक्ष्वाकुराजर्षिश्रीस्त्वामद्याश्रयिष्यति[44] ।
इत्येवमुक्तो मात्रेदं रामो लक्ष्मणमब्रवीत्[45] ॥ ४० ॥
प्रांजलिं प्रह्वमासीनमभिवीक्ष्य स्मितान्वितः ।
लक्ष्मणेमां मया सार्द्धं प्रशाधि त्वं वसुन्धराम् ॥ ४१ ॥
द्वितीयो मे ऽन्तरात्मा त्वं त्वामियं श्रीरुपस्थिता ।
सौमित्रे भुंक्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च ॥ ४२ ॥
जीवितं चापि[46] राज्यं च त्वदर्थमभिकामये[47] ।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामो मातरावभिवाद्य च ।
अभ्यनुज्ञाय[48] सीतां च जगाम स्वं निवेशनम् ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकांडे रामराज्योपनिमंत्रणं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

---

३८ अ, कु, पं —वैदेह्याश्चापि(कु—भि) । ३९ अ, कु —ज्ञातीनां । ४० अ, कु—नंदन । ४१ अ, कु—कल्याणवति । पं—०त्वं तु । ४२ अ, कु—वत । ४३ पं—या । ४४ अ, कु —०राजर्षेः० । ४५ अ, कु—भ्रातरम० । ४६ अ, कु —चैव । ४७ पं—०भिकांक्षये । ४८ अ, कु—०ज्ञाप्य ।

[सप्तमः सर्गः]

स चिन्तयानो[1] नृपतिःश्वोभाविन्यभिषेचने ।
पुरोहितं समाहूय वसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥१॥
गच्छोपवासं काकुत्स्थं कारयाद्य तपोधन ।
श्रीयशोराज्यलाभाय बध्वा सह यतव्रतम् ॥२॥
तथेति च स राजानमुक्त्वा वेदविदां वरः ।
स्वयं वसिष्ठो भगवान् ययौ रामनिवेशनम् ॥३॥
उपवासयितुं रामं मंत्रविन्मंत्रपारगः ।
ब्राह्मं रथवरं युक्तमास्थाय स[2] धृतव्रतः[2] ॥४॥
स रामभवनं प्राप्य पांडुराभ्रचयोपमम् ।
तिस्रः कक्षा[3] रथेनैव विवेश मुनिपुंगवः[4] ॥ ५ ॥
तमागतमृषिं रामस्त्वरमाणः ससंभ्रमः ।
मानयिष्यन्स मानार्हं निश्चक्राम निवेशनात् ॥ ६ ॥
अभ्येत्य त्वरमाणश्च रथाभ्याशं मनीषिणः ।
ततो ऽवतारयामास परिगृह्य रथात्स्वयम् ॥ ७ ॥ A1
स चैनं प्रश्रितं दृष्ट्वा ससंभाष्य[5] प्रशस्य[6] च ।[7]

---

1 कै—चिंतमानो । 2 कै—मधृतव्रतः 'च' इत्युपरिलिखितं सकार-स्थाने केनचित्, अन्यया लेखिन्या । अ, कु—सुधृत० । 3 कै—कक्ष्या । 4 अ, कु, पं—०सत्तमः ।

A1 कै—तं रथादवरोहंतं विद्वानभ्यागतं गुरुम्
आलोकाद्धारयामास प्रत्युद्गच्छन् स राघवः
प्रह्वो वचनमाकांक्षस्तस्मै रामः कृतांजलिः
कामादभिमुखस्तस्थौ संभाष्याभिप्रशस्य च

5 पं—स संभाष्य । 6 पं—प्रशस्य । 7 कै—स तु प्रविश्य भवनं रामस्य मुनिपुंगवः ।

प्रियार्हं हर्षयन् राममित्युवाच पुरोहितः ॥ ८ ॥
प्रसन्नस्ते पिता राम यौवराज्यमवाप्स्यसि ।
उपवासं भवानद्य करोतु सह सीतया ॥ ९ ॥
प्रातस्त्वामभिषेक्ता हि यौवराज्ये नराधिपः ।
पिता दशरथः प्रीत्या ययातिं नहुषो यथा ॥ १० ॥
इत्युक्त्वा स तदा राममुपवासं यतव्रतम् ।
मंत्रवत्कारयामास वैदेह्या सहितं मुनिः ॥ ११ ॥
ततो यथावद्रामेण स राज्ञो गुरुरर्चितः ।[12]
अभ्यनुज्ञाय[10] काकुत्स्थं ययौ राजनिवेशनम् ॥ १२ ॥
सुहृद्भिस्तत्र रामोऽपि सहासीनः[11] प्रियंवदैः ।
सभाजितो विवेशाथ तानुनुज्ञाय[12] सर्वशः ॥ १३ ॥
हृष्टनारीनरयुतं रामवेश्म तदा बभौ ।
यथा मत्तद्विजगणं प्रफुल्लनलिनं सरः ॥ १४ ॥
स राजभवनं गच्छन् मुनिः कैलाससन्निभम् ।
सर्वतो ददृशे मार्गं वसिष्ठो जनसंकुलम् ॥ १५ ॥
वन्दिवृन्दैरयोध्यायां[14] राजमार्गाः समन्ततः ।

---

[9] अ. कु—मंत्रविन्० । [9] कु—राजा । अ—राज- ।

[12] पं—स्वामिन पुण्यार्थ्येषु देवतावसथेषु च ॥
प्रसादं राघवो राज्ञः शिरसा प्रतिगृह्य च ।
स्पर्शयामास गुरवे सहस्राणि गवां दश ॥

[10] अ. कु—०ज्ञाप्य । [11] अ. कु—सहासीनैः । [12] अ. कु—०ज्ञाप्य ।
[13] अ. कु—स राजभवनात्प्रियान्मुनिः कैलाससन्निभात् । [14] अ. कु—वृंदवृं० । पं. वंदिवृं० ।

बभूवुरतिसंबाधा[15] जनैर्जातकुतूहलैः ॥O-१६ ॥
तदा[16] हि[17] मृद्यमानस्य[17] हर्षोद्धूतोर्मिभिर्जनैः ।
बभूव राजमार्गस्य सागरस्येव निस्वनः ॥ १७ ॥
सिक्तसंमृष्टरथ्या हि सा राजपथमालिनी[18] ।
आसीदयोध्या नगरी समुच्छ्रितगृहध्वजा[19] ॥ १८ ॥
तदा ह्ययोध्यानिलयः स्त्रीबालसहितो[20] जनः[21] । A3
रामाभिषेकमाकांक्षन्नाकांक्षन्नुदयं[22] रवेः ॥ १९ ॥
प्रजालंकारभूतं च[23] जनस्यानन्दवर्द्धनम् ।
उत्सुको ऽभूज्जनो द्रष्टुं तमयोध्यामहोत्सवम् ॥ २० ॥
एवं तं[24] जनसंबाधं राजमार्गं पुरोहितः ।
व्यूहन्निव जनौघं तं[25] तदा राजकुलं ययौ ॥ २१ ॥
सिताभ्रशिखरप्रख्यं प्रासादमधिरुह्य[26] सः ।
समियाय नरेन्द्रेण शक्रेणेव बृहस्पतिः ॥ २२ ॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य हित्वा राजासनं नृपः ।
पप्रच्छ स च तस्मै तत्कृतमित्यभ्यवेदयत् ॥ २३ ॥
तेनैव च तदा तुल्याः सहासीनाः सभासदः ।
आसनेभ्यः समुत्तस्थुः पूजयन्तः पुरोहितम् ॥ २४ ॥

---

15 पं —०संबद्धा । 16 पं—तथा । 17 कु—भिसृज्यमानस्य । Oअ—
०वकम् । 18 कें—०शालिनी । 19 अ, कु—बहुध्वजा । 20 अ, कु—
सस्त्रीबालजनो । पं–सस्त्रीबालयुवा । 21 कु–नतः । A3 पं–न सुष्वाप
तदा रात्रौ प्रहर्षोत्सुकमानसः । 22 पं–०माकांक्षन्नुदयं च तथा । 23 अ,
कु—हि । 24 अ, कु—तु । पं—स । 25 पं—तु । 26 अ, कु—
०माभिरुह्य ।

गुरुणा सो ऽभ्यनुज्ञातो मनुजौघं विसृज्य तम् ।
विवेशान्तःपुरं राजा सिंहो गिरिगुहामिव ॥ २५ ॥

तदत्युदग्रप्रमदाजनाकुलं[27] महेन्द्रवेश्मप्रतिमं निवेशनम् ।
सुशोभनं चारु[28] विवेश पार्थिवः शशीव नागगणमण्डितं[29] नभः ।२६

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकांडे रामोत्सवो[30]
नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

27 अ. कु तदत्युदग्रं प्रमदा० । पं—तदामुदग्रं प्रमदा० । 28 अ, कु—मशोभयंश्चारु । पं —सुशोभयंश्चारु । 29 अ, कु, पं—०गणसंकुल
30 अ. कु—रामाभिषेकोपवासविधानसर्गः । पं—रामाभिषेको प्रवास विधानं नाम सर्गः ।

[अष्टमः सर्गः]

गते पुरोहिते रामः स्नातः प्रयतमानसः ।
सह पत्न्या विवेशाथ लक्ष्म्या नारायणो यथा ॥ १ ॥
प्रगृह्य शिरसा पात्रं[1] हविषो विधिवत्तदा ।
महते दैवतायाज्यं जुहाव ज्वलिते ऽनले ॥ २ ॥
शेषं च हविषस्तस्य प्राश्याशास्यात्मनो[2] हितम्[2] ।
ध्यायन्नारायणं देवं स्वास्तीर्णे[3] कुशसंस्तरे ॥ ३ ॥
वाग्यतः सह वैदेह्या भूत्वा नियतमैथुनः[4] ।
श्रीमत्यायतने विष्णोः शिश्ये नरवरात्मजः ॥ ४ ॥
एकयामावशिष्टायां रात्र्यां[5] च प्रतिबुद्ध्य सः[5] ।
अलंकारविधिं कृत्स्नं कारयामास वेश्मनः ॥ ५ ॥
ततः शृण्वन् शुभा वाचः सूतमागधवन्दिनाम् ।
पूर्वां सन्ध्यामुपासीनो जजाप यतमानसः ॥ ६ ॥
तुष्टाव[6] प्रणतश्चैव[7] प्रणम्य मधुसूदनम् ।
विमलक्षौमसंवीतो वाचयामास च द्विजान् ॥ ७ ॥
तेषां पुण्याहघोषो ऽथ गंभीरमधुरस्तदा ।
अयोध्यां पूरयामास तूर्यघोषविमिश्रितः ॥ ८ ॥
कृतोपवासं च० तदा० वैदेह्या० सह० राघवम्० ।
अयोध्यानिलयः श्रुत्वा सर्वः प्रमुमुदे जनः ॥०९ ॥
ततः पौरजनः सर्वः श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ।०
प्रभातां रजनीं दृष्ट्वा चक्रे शोभां परां पुनः ॥० १० ॥

1 अ, कु—पात्रीं । 2 पं—प्राश्याचम्यत्सनाहितः । 3 पं-०स्तीर्णे । 4 कै-०मानसः । 5 कै-रात्रौ च प्रतिबुद्ध्य ह । 6 कै-ततः स । 7 अ-प्रयत० । कु-सतत० । 0पं-"च तदा" इत्यारभ्य "सिताभ्रं" इत्यन्तं त्यक्तम ।

सिताभ्र°-शिखराग्रेषु[8] देवतायतनेषु च ।
चतुष्पथेषु रथ्यासु चैत्येष्वट्टालकेषु[9] च ॥ ११ ॥
नानापण्यसमृद्धेषु वणिजामापणेषु च ।
कुटुंबिनां समृद्धानां श्रीमत्सु भवनेषु च ॥ १२ ॥
सभासु च[9] सुरम्यासु सभ्यानामालयेषु च[10] ।
ध्वजाः समुच्छ्रिताश्चित्राः पताकाश्चाभवंस्तदा[11] ॥ १३ ॥
नटनर्तकसंघानां गायकानां[12] च गायताम् ।
मनःकर्णसुखा वाचः श्रूयन्ते स्म समन्ततः ॥ १४ ॥
रामाभिषेकसंयुक्ताः कथाश्चक्रुर्मिथो जनाः ।
रामाभिषेके संप्राप्ते चत्वरेषु गृहेषु च ॥ १५ ॥
बालाश्चापि क्रीडमाना गृहद्वारेषु सर्वशः[13] ।
रामाभिषेकसंयुक्ताश्चक्रिरे[14] ते मिथः कथाः ॥ १६ ॥
कृतपुष्पोपहारश्च धूपगन्धाधिवासितः[15] ।
राजमार्गः कृतः श्रीमान् पौरै रामाभिषेचने ॥ १७ ॥
प्रकाशगमनार्थं च निशागमनशंकया ।
दीपवृक्षांस्तथा चक्रुरनुरथ्यासु सर्वशः[16] ॥ १८ ॥
अलंकारं पुरस्यैवं कृत्वा तत्पुरवासिनः ।
आकांक्षन्तो[17] हि[18] रामस्य यौवराज्याभिषेचनम् ॥ १९ ॥
समेत्य संघशः[18] सर्वे चत्वरेषु[19] सभासु च ।
कथयन्तो मिथस्तत्र प्रशशंसुर्नराधिपम्[20] ॥ २० ॥

---

8 अ, कु-०प्राग्रेषु । 9 अ, कु-निवेशनः । 10 अ, कु-चैत्र सर्वासु वृक्षेष्वालक्षितेषु च । पं—च समस्तासु वृक्षेपर्वनेषु च । 11 अ कु—०स्तथा । 12 अ, कु, पं गायनानां । 13 अ-सर्वतः । 14 अ, कु, पं-रामाभिष्टव० । 15 अ—०थाधिवा० । 16 अ, कु-सर्वतः । 17 अ, कु-आकांक्षमाणा । 18 सहसा । 19 क-चत्वर्येषु । 20 अ, कु—प्राशंसंस्तं नराधिपम् ।

अहो महानयं राजा इक्ष्वाकुकुलनन्दनः[21] ।
ज्ञात्वा[22] यो[22] वृद्धमात्मानं रामं राज्ये ऽभिषिंचति[23] ॥ २१ ॥
सर्वे ह्यनुगृहीताः स्मो[24] यन्नो रामो महीपतिः ।
चिराय भविता गोप्ता दृष्टतत्त्वपरावरः ॥ २२ ॥
अनुद्धतमना विद्वान् धर्मात्मा भ्रातृवत्सलः ।
यथा भ्रातृष्वपि[25] स्निग्धस्तथास्मास्वपि[26] राघवः ॥२३॥
चिरं जीवतु धर्मात्मा राजा दशरथो ऽनघः[27] ।
यत्प्रसादादभिषिक्तं द्रक्ष्यामो राघवं वयम् ॥ २४ ॥
मिथः कथयतामेवं पौराणां शुश्रुवे[28] तदा ।
दिग्भ्यो ऽपि श्रुतवृत्तान्तः प्राप्तो जानपदो जनः ॥ २५ ॥
स तु दिग्भ्यः पुरं[29] प्राप्तो द्रष्टुं[30] रामाभिषेचनम्[30] ।
सर्वं[31] च[31] पूरयामास पुरं[32] जानपदो जनः ॥ २६ ॥
जनौघैस्तैर्विसर्पद्भिः शुश्रुवे तत्र निःस्वनः[33] ।
पर्वसूदीर्णवेगस्य सागरस्येव गर्जतः[34] ॥ २७ ॥
ततस्तदिन्द्रक्षयसन्निभं पुरं दिदृक्षुभिर्जानपदैरुपागतैः ।
समन्ततः सस्वनमाकुलं बभावनेकयादोभिरिवार्णवं[35] पयः॥२८॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे पुरालंकरणं[36]
नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

---

21 अ, कु—०वर्द्धनः । पं—नंदन । 22 अ—ज्ञात्वासौ । 23 अ, कु—भिषेक्ष्यति । 24 पं—स्म । 25 पं—च भ्रातृषु । 26 पं—० स्मासु च । 27 अ, कु—नृपः । 28 पं—शुशुभे । 29 अ, कु, पं—पुरीं । 30 अ कु, पं—द्रष्टुकामोभिषेचनं । 31 अ, कु, पं—रामस्य । 32 अ, कु, पं—पुरीं । 33 अ, कु, पं—निस्वनः । 34 अ, कु—निस्वनः 35 अ—०वार्णव—। कु—० वार्णवे । 36 अ, कु, पं—पुरशोभाविधानं ।

[नवमः सर्गः]

ज्ञातिदास्यथ कैकेय्याः सहोढा परिचारिका ।
प्रासादाग्रमथारूढा[1] तस्मिन् काले यदृच्छया ॥ १ ॥
सा[2]-ददर्शाथ[2] तत्रस्था श्रीमद्राजपथां[3] पुरीम् ।
समुच्छ्रितध्वजवतीं हृष्टपुष्टजनाकुलाम् ॥ २ ॥
तां च दृष्ट्वा पुरीं रम्यामलंकृतजनाकुलाम् ।
सुदुरम्थां समामाद्य धात्रीं कांचिदपृच्छत्[4] ॥ ३ ॥
कस्मात् पौरजनस्यायमतिहर्षो ऽद्य[5] शंस मे ।
चिकीर्षितं किं नृपतेः कार्यं पौरजनाप्रियम् ॥ ४ ॥
उत्तमेन च हर्षेण हर्षिताऽद्य विशेषतः ।
राममाता धनोत्सर्गं कुरुते केन हेतुना ॥ ५ ॥
इति पृष्टा तया धात्री कुब्जया भृशहर्षिता ।
आचचक्षे यथावृत्तं यौवराज्याभिषेचनम्[6] ॥ ६ ॥
श्वः[6] पुष्ययोगेन[6] किल[6] यौवराज्ये स्वमात्मजम् ।
अभिषेचयिता राजा[6] रामं गुणगणाकरम्[7] ॥ ७ ॥
तेनाथ[8] हर्षितः सर्वो जनो ऽयमभिषेचने[9] ।
पुरी चालंकृता पौरै राममाता च हर्षिता ॥ ८ ॥
इति श्रुत्वाऽप्रियं पापा कुब्जा क्षिप्रममर्षिता ।
तस्मात्प्रासादशिखरादवतीर्य त्वरान्विता ॥ ९ ॥

---

1 अ, कु, पं–०ग्रमुपारूढा । 2 अ, कु–ददर्श साथ । 3 पं–०जकथां । 4 अ, कु—०दभाषत । 5 कै—हि । 6 पं—नास्ति । त्यक्तं भाति । 6 अ, कु–रामं राजा । 7 अ, कु—सर्वगुणाकरम् । 8 अ, कु—तेनायं । 9 अ, कु–रामाभि० ।

संरक्तनयना कोपान् मन्थरा पापनिश्चया ।
शयानामेव कैकेयीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥
उत्तिष्ठ मूढे किं शेषे भयं घोरमुपागतम्[10] ।
समाभिप्लुतमात्मानं[11] दुर्भगे नावबुध्यसे ॥ ११ ॥
वृथा[12] सौभाग्यमानेन दुर्भगे त्वं विदह्यसे[13] ।
गिरिनद्या इव स्रोतस्तव सौभाग्यमस्थिरम् ॥ १२ ॥
तयैवमुक्ता कैकेयी संश्रुत्य[14] परुषं वचः ।
कुब्जायाः[15] पापदर्शिन्याः[15] प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥ १३ ॥
मन्थरे किं[16] नु क्रुद्धाऽसि[16] कच्चित्क्षेमं निवेदय ।
विषण्णवदनां[17] हि त्वां लक्षयामि सुदुःखिताम् ॥ १४ ॥
मन्थरा तद्वचः श्रुत्वा कैकेय्या[ः][18] पुनरब्रवीत् ।
संरंभामर्षताम्राक्षी वाक्यं वाक्यविशारदा ॥ १५ ॥
भूयो विषादयिष्यन्ती कैकेयीं पापनिश्चया ।
रामाद्विभेदयिष्यन्ती किल तस्याहितैषिणी ॥ १६ ॥
अक्षेमं सुमहद्देवि तवेदं समुपस्थितम् ।
रामं दशरथो राजा यौवराज्ये ऽभिषेक्ष्यति ॥ १७ ॥
साऽसम्यपारे[19] भृशं मग्ना दुःखशोकमहार्णवे ।
दह्यमानाऽनलेनेव[20] त्वद्धितार्थमुपागता ॥० १८ ॥

10 अ, कु, पं—ते घोरमागतम् । 11 कै—०भिप्लुष्टमा० । अ, कु—समुपप्लु० । 12 अ, कु–तथा । 13 कै–विमुह्यसि । 14 अ, कु–संरंभ–। 15 अ, कु—कुब्जया पापदर्शिन्या । 16 अ, कु—किमसि क्रुद्धा । पं—किमु० । 17 कै—विवर्ण० । पं—विषन्नव० । 18 अ, कु—कैकेयीं । कै, पं—कैकेय्या । 19 कु—साचापारे । 20 अ, कु—प्रतप्ताऽस्यनलेनेव ।

तव दुःखेन कैकेयी मम दुःखं[21] महद्[21] भवेत् ।
त्वद्वृद्ध्या मम वृद्धिश्च भवेदिति न संशयः ॥[22] १९ ॥()
[महीपतिकुले जाता महिषी पृथिवीपतेः ।
उग्रत्वं राजधर्माणां कथं देवि न बुध्यसे ॥ २० ॥
धर्मवादी शठो भर्ता श्लक्ष्णवक्ता च दारुणः ।
शुद्धभावे न जानीषे तेनैवमभिसंहिता ॥ २१ ॥
उपस्थितं प्रयुंक्ते ऽसौ त्वयि सर्वमनर्थकम् ।
अर्थेनैवाद्य ते भर्ता कौसल्यां योजयिष्यति ॥ २२ ॥
अवरुध्य हि शाठेन* भरतं तव बंधुषु ।
कल्ये स्थापयिता रामं राज्ये निहतकंटके ॥ २३ ॥
शत्रुः पतिप्रवादेन पुत्रेव हितकाम्यया ।
आशीविष इवांकेन भर्ता परिभृतस्त्वया ॥ २४ ॥
यथा हि कुर्यात्सर्पो वा शत्रुर्वाप्यनवेक्षितः ।
राज्ञा दशरथेनाद्य तथा ते सहसा कृतम् ॥ २५ ॥
पापेनानृतसत्त्वेन बाला राज्यसुखे स्थिता ।
रामं स्थापयिता राज्ये सानुबंधा हता ह्यसि ॥ २६ ॥][23]
संग्रामकालं कैकेयि क्षिप्रं कुर्वात्मनो हितम् ।[24]
त्रायस्व[25] सुतमात्मानं[25] मां[26] चैवामित्रकर्षणि[26] ॥ २७ ॥

---

21 अ, कु—दुःखतरं। 22 अ, कु—तव वृद्धौ हि मे (कु—मम) वृद्धिर्हि रिति मे निश्चिता मतिः। ()पं—नास्ति 23 अ, कु, पं—नास्ति। 24 अ, कु, पं—तत्प्राप्तकालं कैकेयि कर्तुमर्हसि मे वचः। 25 अ, कु, पं—त्रस पुत्रं तथात्मानं। 26 अ, कु—०कर्षिणे। पं—जात्वेवामित्रकोर्षणी।

तथा कुरु यथा रामं नाभिषिंचति ते पतिः ।
सकामां कुरु कौशल्यां मा सपत्नीमनिन्दिते ॥ २८ ॥
मन्थराया वचः श्रुत्वा कैकेयी परया[27] मुदा[27] ।
एकमाभरणं तस्याः[28] कुब्जायाः[28] प्रददौ शुभम् ॥ २९ ॥
दत्त्वा चाभरणं श्रीमत् प्रीतिदायं प्रहर्षिता ।
कैकेयी मन्थरामेतत् पुनर्वचनमब्रवीत्[29] ॥ ३० ॥
यदिदं मंथरे मह्यमाख्यातं मत्प्रियं हितम् ।
एतत्ते प्रियमाख्यातुं किं वा भूयः करोमि ते ॥ ३१ ॥[30]
[दत्त्वा चाभरणं तस्याः स्थापनीयकमुत्तमम् ।
कैकेयी मन्थरां दृष्ट्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥ ३२ ॥][31]
रामे वा भरते वाहं[32] विशेषं नोपलक्षये[32] ।
तस्माद्धन्यास्मि[33] यद्राजा रामं[33] राज्ये ऽभिषेक्ष्यति ॥ ३३ ॥
न मे प्रियं[34] किंचिदतः परं भवेद् यदद्य राजा सुतमेकमात्मजम्[35] ।
गुणाकरं राममुदारविक्रमं स यौवराज्ये[36] प्रतिपादयिष्यति ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे मन्थराप्रनिबोधनं[37]
नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

---

27 अ, कु, पं—हर्षिता ततः । 28 अ, कु, पं—मुक्त्वा कुब्जायै । 29 पं—मन्थरां वाक्यमिदं तत्राब्रवीत्पुनः । 30 अ, कु, पं—मन्थरे यत्त्वया मह्य प्रियमाख्यातमीप्सितं । तत्रेदं (पं—तनेदं) प्रीतिदायं ते (कु—प्रियमाख्यातु) प्रीत्या (पं—प्रीता) भूयो ददामि ते (पं—व) । 31 अ, कु, पं-नास्ति । 32 अ, कु, पं—वापि विशेषो नास्ति कश्चन । 33 अ, कु—तस्मात्प्रियं मे यद्रामं राजा । पं—तस्मात्प्रियतरं रामं राजा । 34 पं—ऽप्रियं । 35 कै—सुतमिष्टमात्मवान् । 36 अ, कु—यौवराज्यं । 37 अ, कु—मंन्थरापरिदेवनं सर्गः । पं—०परिबोधनो नाम सर्गः ।

[दशमः सर्गः]

इत्युक्ता तत्र कैकेय्या तत्परिक्षिप्य[1] भूषणम् ।
सामर्षं मन्थरा वाक्यमिदं भूयो ऽभ्यभाषत ॥ १ ॥
भयस्थाने किमबले हर्षिता त्वमपण्डिते ।
शोकसागरसंमग्नमात्मानं नावबुध्यसे ॥ २ ॥
आशीविषस्त्वां दशतु मूढे पण्डितमानिनि ।
दुर्भगे चाकृतप्रज्ञे[2] विपरीतार्थदर्शिनि ॥ ३ ॥
कौशल्यां सुभगां मन्ये यस्याः पुत्रो ऽभिषिच्यते ।
यौवराज्ये पैतृके ऽस्मिन् पुष्येण[3] कृतलक्षणः ॥ ४ ॥
प्राप्तां सुमहदैश्वर्यमृद्धामृद्धिविवर्जिता[4] ।
उपस्थास्यसि कौशल्यां दासीव त्वमपण्डिते ॥ ५ ॥
ऋद्धियुक्ता श्रियाजुष्टा[5] रामपत्नी भविष्यति ।
अहृष्टाश्च भविष्यन्ति स्नुषास्ते कृपणालये ॥[6] ६ ॥
तां तथा भृशमप्रीतां ब्रुवतीं वीक्ष्य[7] मन्थराम् ।
प्रीता रामगुणानेव कैकेयी प्रशशंस ह[8] ॥ ७ ॥
धर्मात्मा गुरुवर्ती च कृतज्ञः सत्यवाक् शुचिः ।
रामो राज्ञः सुतो ज्येष्ठो युवराजत्वमर्हति ॥ ८ ॥

1 अ, कु—तत्परित्यज्य । 2 कै-हकृतप्राज्ञ । पं-अकृतप्रज्ञे । 3 कै, पं—पुण्येन । 4 पं —०वर्जिते । 5 अ, कु—श्रियाविष्टा । 6 अ, कु—अश्रीमती त्वमवृद्धा (अ नृद्धा) स्वजनेन विवर्जिता । पं—०अश्रीत्वमयप्रवृद्धच स्वजनेन च वर्जिता । 7 अ, कु, पं-प्रेक्ष्य । 8 अ, कु पं-वै ।

भ्रातॄन् सर्वान् स दीर्घायुः पितृवत् पालयिष्यति ।
मातॄणां चैव सर्वासां प्रियाण्युपहरिष्यति[9] ॥०९ ॥
विशेषतः पूजयति[10] कौशल्यामप्यतीत्य[11] माम् ।
रामो राजीवताम्राक्षः सर्वत्र[12] समदर्शनः[12] ॥ १० ॥
अकल्याणं नास्ति रामे प्रद्वेषश्च महात्मनि ।
संतापं मा कृथास्तस्माच्छ्रुत्वा रामाभिषेचनम् ॥ ११ ॥
भरतश्चापि रामस्य ध्रुव वर्षशतात्परम् ।
पितृपैतामहं राज्यं क्रमप्राप्तमवाप्स्यति[13] ॥ १२ ॥
मा त्वमभ्युदये प्राप्ते ममानन्दे च मन्थरे ।
भविष्यति च कल्याणे[14] कथं[15] नु[15] परितप्यसे ॥ १३ ॥
इत्येद्वचनं श्रुत्वा मन्थरा भृशदुःखिता ।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य कैकेयीं पुनरब्रवीत् ॥ १४ ॥
अनर्थदर्शिन्यप्रज्ञे[16] नात्मानमवबुध्यसे ।
अगाधे दुःखपाताले मज्जन्ती[17] त्वमनन्तके ॥ १५ ॥
भविता राघवो राजा रामस्य च सुतस्ततः ।
तस्यान्यस्तस्य[18] चाप्यन्यो[18] वंश्यो[19] राजा[19] भविष्यति।१६।

---

9 कै—शुश्रूषां स करिष्यति । ०अ—नास्ति। त्यक्तं भाति। 10 कै—पूजयिता । 11 कै—कौशल्यामथवापि। 12 अ, कु, सर्वस्य प्रियदर्शनः। 13 अ, कु, क्रमात्प्राप्त०। 14 पं—कल्याणि। 15 कै—कस्मात्त्वं। पं—कथं त्वं। 16 कै, पं—शंसिनी मूढे। 17 अ, कु—मज्जतं। 18 पं-तस्याप्यन्यतमो वंश्यो। 19 कै-वंशे०। पं-महाराजो।

राज्यवंशात्तु[20] कैकेयी भरतः परिहास्यते[21] ।
न हि राज्ञां सुतः सर्वे राज्ये तिष्ठन्ति भामिनि[22] ॥ १७ ॥
बहूनामपि पुत्राणमेको राज्ये ऽभिषिच्यते ।
स्थाप्यमानेषु सर्वेषु सुमहाननयो भवेत् ॥ १८ ॥
तस्माज्ज्येष्ठेषु पुत्रेषु राज्यतन्त्राणि पार्थिवाः ।
आसज्जन्त्यनवद्याङ्गि गुणवत्स्वितरेषु वा[23] ॥ १९ ॥
ते[24] च ज्येष्ठाः स्वपुत्रेषु ज्येष्ठेष्वेव[24] न संशयः[25] ।
आसज्जन्त्यखिलं राज्यं न भ्रातृषु कथंचन ॥ २० ॥
अतो[26] ऽत्यन्तमपूजार्हस्तव[27] पुत्रो भविष्यति ।
अनाथवत्सुखाद्धीनो राजवंशाच्च शाश्वतात्[28] ॥ २१ ॥
सोऽहं[29] त्वदर्थं संप्राप्ता त्वं च मोहान्न[30] बुध्यसे[30] ।
सपत्निवृद्धौ[31] या मे त्वं[32] प्रदेयं[32] दातुमिच्छसि ॥ २२ ॥
ध्रुवं च भरतं रामः प्राप्य राज्यमकण्टकम् ।
देशान्तरं वासयिता[33] देहान्तरमथापि वा ॥ २३ ॥
बाल एव हि[34] मातुल्यं[34] भरतो नायितस्त्वया[35] ।
सन्निकर्षाच्चानुरागो देवि सर्वस्य जायते ॥ २४ ॥

---

20 अ. पं—राज० । 21 अ. पं—० हास्यति । 22 अ. कु—भाविनी । पं भाविनि । 23 पं कु—च । 24 अ. कु—राज्याभिषेकं कुर्वन्ति ते च ज्येष्ठे । पं—०ज्येष्ठेषु च । 25 पं—संशयम । 26 पं, कै—अहो । 27 कै—नित्यमपूजा० । 28 कै. पं—हास्यति । 29 अ, कु त्वदर्थे । 30 अ, कु मां नावबुध्यसे । 31 अ. कु—सपत्न० । पं सपत्न्यवृद्धौ । 32 कै—त्वमदेयं । पं—वं अदेयं । 33 अ वासयिता । 34 कै—महत्तुल्यैर् पं—मातुल्ये । 35 पं—आपित० ।

शत्रुघ्नो[36] भरते रक्तो[36] लक्ष्मणश्चापि राघवे[37] ।
अश्विनोरिव सौभ्रात्रमन्योर्लोकविश्रुतम् ॥ २५ ॥
तस्मान्न लक्ष्मणे किंचित्पापं रामः करिष्यति ।
रामस्तु भरते पापं कुर्यादिति न संशयः ॥ २६ ॥
मातामहगृहाद्देवि[38] तस्माद्यातु[39] ते सुतः ।
वनमाश्रयितुं शीघ्रमेतद्धस्य[40] क्षमं भवेत् ॥ २७ ॥
एतत्ते[41] ज्ञातिपक्षस्य श्रेयः स्यादिति मे मतिः ।
यदि वा भरतो राज्यं पित्र्यं[42] समवाप्स्यति[42] ॥ २८ ॥
स ते[43] सुखोचितो बालो रामस्य सहजो रिपुः ।
समृद्धार्थस्य हीनार्थः कथं जीवेत्तवात्मजः ॥ २९ ॥
अभिद्रुतमिवारण्ये सिंहेन गजयूथपम् ।
उच्छिद्यमानं[44] रामेण भरतं त्रातुमर्हसि ॥ ३० ॥
दर्पाद्धि नित्यनिकृता[45] त्वया सौभाग्यमत्तया ।
राममाता सपत्नी ते कथं वैरं न यातयेत् ॥ ३१ ॥
कृते हि रामे ऽद्य[46] महीपतौ क्षितौ गमिष्यसि त्वं ससुता पराभवम् ।
अतो ऽनुसंचिंतय[47] राज्यमात्मजे परस्य चैवाद्य विवासकारणम् ॥३२॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे मन्थरावाक्यं
नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

---

36 अ, कु—भक्तो हि रामः सौमित्रिं । 37 अ कु—राघवं । 38 अ, कु—०हाद्देव । 39 अ, कु—०द्गच्छतु । 40 अ, कु—०मेतदस्य । 41 अ, कु—एवं ते । 42 अ, कु—पैऽयं धर्म (कु—धर्म्यं) मवाप्स्यति । 43 अ, कु—मे । 44 कै—उच्छेद्यमानं । 45 अ, कु—नित्यं निकृता । 46 अ, कु—च । 47 कै—हि सं० ।

[एकादशः सर्गः]

एवमुक्ता तु कैकेयी विनिश्वस्याब्रवीद्वचः ।
सत्यं वदसि मे[1] कुब्जे जाने ते भक्तिमुत्तमाम्[2] ॥ १ ॥
न तु[3] पश्याम्युपायं[4] तं[0] येन[0] शक्येत[0] मे[0] सुतः[0]
इदं प्रापयितुं राज्यं पितृपैतामहं बलात् ॥[0]२ ॥
अनुरक्तो नृपश्चापि[5] रामं गुणगणान्वितम् ।[0]
स[0] कथ[0] राममुत्सृज्य[6] प्राणेभ्योऽपि प्रियं सुतम् ॥ ३ ॥
भरतं नाम मे पुत्रमभिषिञ्चेदकारणम् ।
प्रव्राजयेच्चापि[7] नृपः कथं राममकारणे[8] ॥ ४ ॥
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा कैकेय्या मन्थरा ततः ।
उवाचेदं विनिश्चित्य स्वबुद्ध्या[9] पापनिश्चया[9] ॥ ५ ॥
इमं राममहं[10] क्षिप्रं वनं प्रस्थापयामि ते ।
भरतस्याभिषेकं च कारयामि यदीच्छसि ॥ ६ ॥
श्रुत्वैतन्मन्थरावाक्यं कैकेयी हृष्टमानसा ।
किंचिदुत्थाय शयनात् स्वास्तीर्णादिदमब्रवीत् ॥ ७ ॥
कथय त्वं महाप्राज्ञे केनोपायेन मन्थरे ।
भरतः प्राप्नुयाद्राज्यं रामश्चैव वनं व्रजेत् ॥ ८ ॥
एवमुक्ता तया देव्या मन्थरा पापनिश्चया ।
वाक्यं दुःखाय रामस्य कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥

---

1 कै-मां । 2 अ. कु–इमां वाचमनुत्तमां । 3 अ-च । 4 पं-०म्युपा । 0पं—त्यक्तं । 5 अ, कु—श्चायं । 6 प—त्सृज्य । 7 कु—०येद्वा तं । अ. पं—०येद्वापि । 8 कु—०मकारणं । अ—रामस्य कारणम् । 9 अ, कु—बुद्ध्या पापविनिश्चया । 10 कै—राममहो ।

यत्त्विदानीमात्महितं[11] शृणु मे त्वमिदं[12] वचः ।
यथा ते भरतः पुत्रो राज्यं प्राप्स्यत्यसंशयम्[13] ॥ १० ॥
पुरा देवासुरे युद्धे युद्धसज्जः[14] पतिस्तव ।
याचितो देवराजेन युद्धं कर्तुमितो गतः ॥ ११ ॥
दिशमास्थाय कैकेयि दाक्षिणां दण्डकां[15] प्रति ।
वैजयन्तमिति ख्यातं पुरं यत्र तिमिध्वजः ॥ १२ ॥
स शंबर इति ख्यातो बहुमायो महासुरः ।
ददौ शक्राय संग्रामं देवसंघैर्विनिर्जितः[16] ॥ १३ ॥
तस्मिन्महति संग्रामे राजा शस्त्रपरिक्षतः ।
विजित्याभ्यागतो[17] देवि त्वयोपचरितः स्वयम् ॥ १४ ॥
व्रणसंरोपणं[18] चास्य तत्र देवि त्वया कृतम् ।
परितुष्टेन ते दत्तौ वरौ द्वौ ननु[19] भामिनि[20] ॥ १५ ॥
स त्वयोक्तः प्रतिश्रुत्य[21] यदेच्छेयं[22] तदा वरौ ।
गृह्णीयामिति तत्रैवं[23] तथेत्युक्तं महात्मना ॥ १६ ॥
अनभिज्ञा ह्यहं देवि त्वयैव कथितं पुरा ।
पतिं[24] वरौ तौ याचस्व[24] भरतस्याभिषेचनम् ॥ १७ ॥

---

11 अ, कु-हंतेदा० । 12 अ, कु—तदिदं । 13 अ, कु-प्राप्नोत्य० । 14 अ, कु—०सह्यः । 15 कै—दांडकां । 16 अ,कु—०र्वैरनि० । 17 कै-स चिरादागतो । पं—स चिताभागतो 18 अ, कु, पं—०संरोहंण । 19 अ, कु—तत्र । 20 अ, कु, पं-भाविनि 21 अ, कु, पं—पतिस्तत्र । 22 कै, पं—यदीच्छेयं । 23 अ, कु—तत्रैव । 24 अ, कु—तौ वरौ याच भर्तारं । पं—पतिं याचस्व च वरौ ।

प्रव्राजनं च रामस्य वर्षाणि हि चतुर्दश ।
क्रोधागारं प्रविश्याद्य[25] भूत्वा[26] क्रुद्धा[26] नृपात्मजे ॥ १८ ॥
शेष्वानन्तर्हितायां[27] त्वं[27] भूमौ मलिनवासिनी ।
राजानं मा निरीक्षिष्ठा[28] मा भाषिष्ठाः[29] कथंचन ॥ १९ ॥
सुप्ता भूमावनाथेव दुःखितेव[30] च भामिनि[30] ।
तत्र त्वां शयितां[31] राजा स्वयं दुःखसमन्वितः ॥ २० ॥
प्रसादयिष्यति क्षिप्रं प्रष्टा[32] चार्थविनिर्णयम्[32] ।
दयिता त्वं भृशं भर्तुरत्र मे नास्ति संशयः ॥ २१ ॥
त्वदर्थं हि महाराजः श्रियं दीप्तामपि त्यजेत् ।
मणिमुक्तासुवर्णानि[33] रत्नानि विविधानि च ॥ २२ ॥
यदि दद्याच्च ते राजा[34] मा स्म तेषु मनः कृथाः ।
यदा तु तौ वरौ दित्सुः स्वयमुत्थापयिष्यति[35] ॥ २३ ॥
सत्येन परिगृह्यैनं याचेथास्त्वं[36] तदा वरौ ।
रामप्रव्राजनार्थकं नववर्षाणि पंच च ॥ २४ ॥
द्वितीयं यौवराज्याय भरतस्य वरं शुभे ।
तौ[37] यौ[37] देवासुरे युद्धे वरौ दशरथो ददौ ॥ २५ ॥

---

25 कै—प्रविश्याथ । 26 अ, कु—क्रुद्धा भूत्वा । 27 कै—शया-नांतर्हिता चालं । पं-शयनांमन्तर्हितायास्त्वं । 28 अ, कु, पं-निरीक्षस्व । 29 पं—भाषस्व । 30 अ, कु, पं-दुःखिता नाम (पं-राग) भाविनी (अ—०नि) । 31 कु—शायितां । 32 अ, कु—प्रक्ष्यत्यपि च निर्णयं । पं—दृष्ट्वा वाप्यवनिगतां । 33 कै—यदि मु० । पं—यदा मु० । 34 अ, कु, पं—भर्ता । 35 अ, कु—०पयेत्पतिः । 36 अ, कु—०थास्तु । 37 अ, कु-यौ तौ ।

तौ स्मारयित्वा याचेथाः पश्चादेतद्[38] वरद्वयम् ।
रामप्रव्राजनं देवि[39] राज्यप्राप्तिं सुतस्य च ॥ २६ ॥
याचेथा भुवि[40] कल्याणि मा त्वां कालो ऽत्यगादयम्[40] ।
ध्रुवं प्रव्राजितश्चैव रामो भद्रे भविष्यति ॥ २७ ॥
भोक्ष्यते चापि पुत्रस्ते ध्रुवं राज्यमकंटकम् ।
येन कालेन काकुत्स्थो वनात्प्रत्यागमिष्यति ॥O २८ ॥
भरतो ऽनेन कालेन बद्धमूलो भविष्यति ।
संगृहीतमनुष्यश्च कोषवांश्च श्रिया युतः ॥ २९ ॥
ऋजुस्वभावे बुध्यस्व सौभाग्यबलमात्मनः[41] ।
न त्वां क्रोधयितुं शक्तो न च क्रुद्धामुपेक्षितुम् ॥ ३० ॥
तव प्रियार्थे राजा हि प्राणानपि परित्यजेत् ।
न व्यतिक्रमितुं[42] शक्तस्तव वाक्यं महीपतिः ॥ ३१ ॥
प्राप्तकालं तु[43] ते[43] मन्ये राजानं[44] जितसाध्वसा ।
रामाभिषेकसंकल्पात् तं[45] विगृह्य निवर्तय[45] ॥ ३२ ॥
*पथ्यरूपमपथ्यं तदधर्म्यं मन्थरावचः ।
*जिह्मस्वभावा कैकेयी प्रतिजग्राह मोहिता[46] ॥ ३३ ॥
*स्वभाव एष नारीणां मूर्खो ऽपि स्वजनो जनः ।
*यद्ब्रवीति तदेवाशु संगृह्णन्त्यविमृश्य[47] हि ॥ ३४ ॥

---

38 अ, कु—पश्चादेवं । 39 अ, कु—चैव । 40 अ, कु—भाविकल्याणं ध्रुवं प्राप्स्यति ते सुतः । O कै, पं—नास्ति । त्यक्तं भाति । 41 अ, कु—०फल० । 42 अ, कु—ह्यति० । 43 अ, कु—ततो । 44 अ, कु—राजन्ये । 45 अ, कु—राजानं विनिवर्तय । पं—विगृह्य विनिवर्तय । 46 पं—भेदिता । 47 गृह्णात्यप्यवि० । कै–०विमृष्य । *अ, कु—नास्ति ।

*सा तेन कुब्जा वाक्येन मृगीवोत्फुल्ललोचना ।
*व्याधेन गीतसंलोभादनर्थे सन्निवेशिता ॥ ३५ ॥
*अर्थाश्चानर्थरूपेण[48] अनर्थाश्चार्थरूपिणः[49] ।
*आविशन्ति विनाशाय नरं तच्चास्य रोचते ॥ ३६ ॥
अनर्थमर्थरूपेण सा ददर्श तयोदिता ।
नहि तद्बुबुधे पापं शापदोषेण मोहिता ॥ ३७ ॥
केकयेषु[50] हि सा[51] बाल्ये[51] ब्राह्मणं मूर्खरूपिणम्[52] ।
असूयितवती बाला तेन शप्ता महात्मना ॥ ३८ ॥
यस्मादसूयसे विप्रं त्वं रूपमददर्पिता ।
तस्मादसूयां त्वमपि लोके प्राप्स्यसि कुत्सिताम् ॥ ३९ ॥
इति शापसमाच्छन्ना मन्थरावशमागता ।
अतीवहृष्टा कैकेयी मन्थरां परिषस्वजे ॥ ४० ॥
परिष्वज्य ततो गाढं कैकेयी हर्षविक्लवा[53] ।
उवाच वचनं धीरा कुब्जां तां पापदर्शिनीम् ॥ ४१ ॥
*सम्यगुक्तं त्वया कुब्जे मया च प्रतिपूजितं[54] ।
*माहमेतद्विजानामि पूर्वं ते वाक्यमुत्तमम ॥ ४२ ॥
*उपायश्चिंतितः सम्यक् त्वया बुद्ध्या[55] तु[55] पण्डिते ।
*सुष्ठु संस्मारिता ते ऽहं यन्मे दशरथो ददौ ॥ ४३ ॥
*वरौ दवासुरे युद्धे प्राणत्यागं गतो नृपः ।

---

48 पं—अर्थास्त्वनर्थ० । 49 पं—त्वनर्था० । *अ, कु—नास्ति । 50 अ, कु, पं—कैकेयेषु । 51 पं—बाल्ये च । 52 अ, कु-रूक्ष० । 53 अ—०विह्वला । *अ,कु-नास्ति । 54 पं-प्रतिपालितं । 55 पं—बुध्वा सु- ।

*मम ह्यंकगतो राजा तदाऽऽसीच्छरपीडितः ॥ ४४ ॥
*मया च राक्षसभयात् पतिस्नेहेन रक्षितः ।
*न खल्वस्ति बलं किंचिन्मम राक्षसवारणे ॥ ४५ ॥
*मम विद्याबलं त्वस्ति येनाहं दुष्प्रधर्षणा[56] ।
*विद्यायाश्चागमं कुब्जे शृणु वक्ष्याम्यहं स्वयम् ॥ ४६ ॥
*परं रहस्यमपि यत्सुहृदां तदशेषतः ।
*आख्येयमिति[57] धर्मज्ञाः कथयन्ति मनीषिणः ॥ ४७ ॥
*न हि मे त्वाद्विधा लोके काचिदस्ति हितैषिणी ।
*मया प्रहसितो बाल्ये मूर्खवेशो द्विजोत्तमः ॥ ४८ ॥
*जीर्णवस्त्रपरिछन्नः श्मश्रुलस्तृणभूषणः ।
*भस्मभूषितसर्वांगो वृद्धो हर्षवशं गतः ॥ ४९ ॥
*अविज्ञातकथाभाषश्चेष्टाभिरनवस्थितः ।
*प्रसन्नश्चाह विप्रस्स सस्मितां मधुरां गिरम् ॥ ५० ॥
*प्रीतो ऽस्मि[58] नृपतेः कन्ये ब्रूहि किं करवाणि ते ।
*स मया प्रह्वया भूत्वा बध्द्वा चांजलिकुड्मलम् ॥ ५१ ॥
*उक्तो वाक्यमिदं कुब्जे लज्जया ग्रथिताक्षरम् ।
*न किंचिदहमिच्छामि कृतमेतावता मम ॥ ५२ ॥
*यन्मे क्रोधं परित्यज्य प्रसन्नस्त्वं द्विजोत्तम ।
*एवमुक्तेन तु मया तेन हर्षितचेतसा ॥ ५३ ॥
*ममातिसृष्टा[59] विद्येयं बहुमानान्मया धृता[60] ।

---

*अ, कु—नास्ति । 56 पं—०र्षिणी । 57 पं—०यमपि । 58 पं—हं ।
59 कै—०तिस्पष्टा । 60 कै—वृता ।

*तदिदं सुष्ठु ते कुब्जे प्रणीतं बुद्धिनिश्चयात् ॥ ५४ ॥
*विमृष(श)न्त्या स्वयं बुद्ध्या ममापि रुचितं दृढम् ।
*रामो यद्यपि धर्मात्मा गुणवान् भ्रातृवत्सलः ॥ ५५ ॥
*यौवराज्यं महत्प्राप्य व्यत्थास्यति[61] न संशयः ।
*राज्यश्रीर्हि मनुष्याणां बंधुस्नेहापहारिणी ॥ ५६ ॥
*यया[62] कार्यमकार्यं वा संसृष्टो नावबुध्यते ।
*रक्षणार्थं च पुत्रस्य भरतस्य महात्मनः ॥ ५७ ॥
*अवश्यमेतत्कर्तव्यं वचनं मन्थरे[63] तव ।
*सा त्वेवमुक्ता कैकेय्या प्रहृष्टा मन्थराभवत् ॥ ५८ ॥
*प्रत्युवाचाथ कैकेयीमिदं प्रीतिसमन्विता ।
*दिष्ट्याऽवगच्छसि हितं दिष्ट्या मे सफलःश्रमः ॥ ५९ ॥
*दिष्टया पुत्रहितं कर्म कर्तुमद्य व्यवस्यसि ।
*इदं वचोयुक्तमुदाहृतं मया तवानुरागेण सुखायतिक्षमम् ।
*अलं विमृष्टेन सुतप्रतीक्षया[64] कुरुष्व मूर्ध्ना प्रणतः[65] प्रसादये ॥६०॥

*इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे कैकेयीवाक्यं
*नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥



* अ, कु—नास्ति । 61 पं—संभेत्स्य । 62 कै—यथा । 63 पं—मंथरे वचनं । 64 पं—०तीक्ष्णं । 65 पं—प्रणयात् ।

[द्वादशः सर्गः]

*मन्थरायै ततः प्रीता केकेयी प्रमदोत्तमा ।
*कुण्डले श्रवणान्मुक्त्वा प्रददौ प्रीतिलक्षणम् ॥ १ ॥
*दत्त्वा तु कुण्डले देवी तापनीये अनुत्तमे[1] ।
*अव्यक्तं सुस्मितं कृत्वा मन्थरां प्रशशंस ह ॥ २ ॥
प्रज्ञां ते नावजानामि[3] श्रेष्ठां श्रेष्ठाभिभाषिणि[4] ।
अस्यां पृथिव्यां कुब्जासु[5] बुद्धया नास्ति समा[6] त्वया[6] ॥३॥
त्वमेव हि[7] ममार्थेषु[7] नित्ययुक्ता हितैषिणी ।
नाज्ञासिषमहं[8] पूर्वं कुब्जे[8] राज्ञश्चिकीर्षितम्[9] ॥ ४ ॥
सन्ति दुःसंस्थिताः कुब्जे वक्राः परमपापिकाः ।[10]O
त्वं पद्ममिवO वातेनO नामिता प्रियदर्शना ॥[11] ५ ॥
उरस्ते समविस्पष्टं[12] यावत्स्कन्धौ समुन्नतौ[12] ।
अधस्ताच्चोदरं शान्तं सुनाभमवलाक्षितम्[13] ॥ ६ ॥

---

1 पं—त्वनु० । * अ, कु—नास्ति । 3 अ, कु, पं—नाभिजानामि । 4 अ, कु, पं—श्रेष्ठाभिधायनि (पं—नी) । 5 अ, कु—कुब्जेन्या । पं-कुब्जेतु । 6 पं—त्वया समा । 7 अ, कु—चैव भक्तो मे । 8 अ, कु—नाहं जानामि कुटिलं कुब्जे । पं—जानासि त्वमहं सर्व्वं । 9 कु—रामचकीर्षितं । अ—त्यक्तं । 10 पं—०परमपापिनः । कु—सन्ति दुःखस्थिताः कुब्जा विरूपा विकृताननाः । O अ—नास्ति । त्यक्तमास्ति । 11 कु—त्वं तु पद्मांतरनिभा कुब्जे तिप्रि० । अ—त्वं कुब्जे तिप्रि० । पं—०वातेन सन्नतः प्रिय० । 12 पं—तु वितिष्ट्वं यावत्० । अ, कु—नातिनिमुन्नमाकण्ठान्मुखमुन्नतं । 13 अ, कु—विलग्नं च यथा शुनः ।

जघनं तव[14] विस्पष्टं रशनागुणशोभितम्[14] ।
जंघे भृशसमन्यस्ते[15] पादौ च विततांङ्गुली[15] ॥ ७ ॥
त्वमायताभ्यां सक्थिभ्यां[16] मन्थरे शुल्कवासिनी ।
अग्रतो मम गच्छन्ती सारसीव[18] विराजसे ॥ ८ ॥
यदिदं[19] ककुदाकारं[20] कुब्जं ते चारुशोभने[21] ।
मतयः क्षत्रविद्याश्च मायाश्चात्र वसन्ति ते ॥ ९ ॥
अत्र ते प्रतिमोक्ष्यामि कुब्जे मालां हिरण्मयीम् ।
अभिषिक्ते च[22] भरते राघवे[23] च[23] वनं गते ॥ १० ॥
एतेन[24] ते[24] सुवर्णेन मणियुक्तेन[25] सुंदरि ।
समृद्धार्था प्रतीताऽहं भूषयिष्यामि ते तनुम्[26] ॥ ११ ॥
मुखे च तिलकं कान्तं[27] कांचनं कनकप्रभे ।
कारयिष्यामि ते कुब्जे शुभान्याभरणानि च ॥ १२ ॥
यावदग्रनखं[28] लिप्ता चन्दनेन सुगन्धिना ।
परिधाय शुभं वस्त्रं देवतेव[29] चरिष्यसि[29] ॥ १३ ॥
चन्द्रं विस्पर्द्धमानेन मुखेन त्वं[30] शुभानने ।

---

14 पं–०रसनोगुण० । अ, कु–ते सु-(कु–स) निम्नासं रसनादामशो० । 15 कै–दशासम० । पं–०प्रनतांगुली । अ, कु–दीर्घे तनु चैव पादौ चाप्यायतौ कृशौ । 16 कै, पं–शक्तिभ्यां । 17 अ, कु–नीलवा० । 18 अ, कु–टिट्टिभीव । 19 अ, कु यच्चेदं । 20 कु–कुदाकारं । 21 अ, कु–चारुदर्शिनी । (कु–ना) । 22 अ, कु, पं–तु । 23 अ, कु, पं–रामे चैव । 24 अ–सुजातेन । कु–सुजात्येन । पं–जात्येन ते । 26 अ, कु–गडुम् । 27 अ, कु–चित्रं । 28 कै–० मुखं । 29 अ, कु, पं–देवीव विच० । 30 अ, कु–च ।

गमिष्यस्यनवद्यांगि नन्दयन्ती[31] सुहृज्जनम् ॥ १४ ॥
तवापि कुब्जे दास्यो ऽन्याः सर्वाभरणभूषिताः० ।
पादौ परिचरिष्यन्ति यथैव मम भामिनि[32] ॥०१५ ॥
एवं० प्रशस्ता० कैकेय्या० कुब्जा० भूयोऽब्रवीदिदम् ।
शयानां शयने शुभ्रे[33] त्वरयन्तीव तां भृशम्[33] ॥ १६ ॥
गतोदके सेतुबन्धः[34] कल्याणि न विधीयते[34] ।
उत्तिष्ठ कुरु कल्याणं राजानं परिमोहय ॥ १७ ॥
तथेत्यथ प्रतिज्ञाय मन्थरावचनं तदा[35] ।
भरतस्याभिषेकाय कैकेयी कृतनिश्चया ॥ १८ ॥
महार्हमणिरत्नाढ्यं मुक्ताहारं वरांगना ।
अवमुच्य तथाऽन्यानि सर्वाण्याभरणानि च ॥ १९ ॥
भृशं विभेदिता देवी तया मन्थरया तदा ।
क्रोधागारं प्रविश्यैका[36] सौभाग्यबलगर्विता[37] ॥ २० ॥
तप्तहेमोपमतनुः कुब्जावाक्यवशं[38] गता[38] ।
संविश्य भूमौ कैकेयी मन्थरामिदमब्रवीत् ॥ २१ ॥
अत्र[39] वा मां मृतां कुब्जे भर्तुरावेदयिष्यसि ।
वनं वा राघवे याते भरतः प्राप्स्यति श्रियम् ॥ २२ ॥
न धनानि न वस्त्राणि नालंकारान्न भोजनम् ।

---

31 अ, कु, पं—गर्वयन्ती । 32 अ, पं—भाविनि । ० कु-"भरण०" इत्यारभ्य "कुब्जा भू" इत्यन्तं त्यक्तमस्ति । 33 अ, कु, पं—देवीं कैकेयीं त्वरयंन्युत । 34 अ, कु, पं—न कल्याणि प्रशास्यते । 35 अ, कु—ततः । 36 कै—प्रविश्यैव । 37 अ, कु, पं—०दर्पिता । 38 अ, कु, पं-वशानुगा । 39 अ, कु—इह ।

आसेवयिष्ये[40] ऽहं तावद्यावद्रामो वनं गतः[41] ॥ २३ ॥
इतीदमुक्त्वा वचनं सुदारुणं निधाय सर्वाभरणानि भामिनी[42] ।
असंवृतामास्तरणेन[43] मेदिनीमथाधिशिश्ये पतितेव किन्नरी ॥२४॥
उदीर्णसंरंभमना[44] वृतानना[44] तदा विमुक्तोत्तमदामभूषणा ।
नरेन्द्रपत्नी विमना बभूव सा तमोवृता द्यौरिवनष्टभास्करा ॥ २५ ।

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे[45] मन्थरावाक्यं
नाम द्वादशः सर्गः[45] ॥ १२ ॥

---

40 अ, कु–आ (कु–अ) सेविष्ये ह्यहं । 41 अ, कु–व्रजेत् । 42 पं, कु–भाविनी । 43 अ, कु–असंवृतां संस्तरणेन । 44 अ, कु–संरंभतमोवृता० । 45 अ, कु–राम प्रव्राजनोपायचितासर्गः । कै–द्वादशः सर्गः ।

[त्रयोदशः सर्गः]

आज्ञाप्य[1] तु महाराजो राघवस्याभिषेचनम् ।
कैकेय्याः प्रियमाख्यातुं विवेशान्तःपुरं ततः[2] ॥ १ ॥
तां तत्र पतितां भूमौ शयानामतथोचिताम् ।
प्रतप्त इव दुःखेन शुश्राव जगतीपतिः ॥ २ ॥
स वृद्धस्तरुणीं भार्यां प्राणेभ्यो ऽपि गरीयसीम् ।
अपापः पापसंकल्पामुपचक्राम दुःखितः ॥ ३ ॥
सर्वलोकाप्रियं मूढामनर्थमपि[3] चात्मनः[3] ।
कर्तुं[4] प्रयतमानां तां[4] ददर्श पतितां भुवि ॥ ४ ॥
[लतामिव विनिष्कृत्तां पतितां देवतामिव ।
प्रतप्तामिव दुःखेन विज्ञाय जगतीपतिः ॥ ५ ॥][5]
करेणुं[6] विषदिग्धेन[6] विद्धां[7] व्याधेन दुःखिताम् ।
महागज इवासाद्य स्नेहात् पस्पर्श[8] तां नृपः[8] ॥ ६ ॥
स तां विमृज्य[9] पाणिभ्यामतिसत्रस्तचेतनः[10] ।
उवाच राजा कैकेयीं श्वसन्तीमुरगीमिव[11] ॥ ७ ॥
न ते ऽहमभिजानामि क्रोधमात्मनि संयतम् ।

---

1 कै—आज्ञप्य । 2 अ, कु, पं—नृपः । 3 अ, कु—०मनर्थं लोकगर्हितम् । पं—०मनर्थं लोकविश्रुतं । 4 अ, कु, पं—अकांक्षमाणां संप्राप्तो । 5 अ, कु, पं—नास्ति । 6 अ, कु, पं—करेणुमिव दिग्धेन । 7 पं—विद्धामत्यंत- । 8 अ, कु—परिममार्जे तां । 9 पं-विमृश्य । 10 अ, कु—०स्तलोचनः । पं—०मस्पृशत्तच्चेतनः । 11 पं-०तीं कुररीमिव ।

देवि केनाभिशस्ताऽसि[12] केन वाऽसि विमानिता ॥ ८ ॥
यदिदं मम दुःखाय शेषे कल्याणि दुःखिता ।
सति[13] देवि महाराज्ञि[13] मयि कल्याणचेतसि ॥ ९ ॥
भूतोपहतचित्तेव मम चित्तप्रमाथिनी ।
सन्ति मे कुशला वैद्याः सुविभक्ताश्च[14] वृत्तिभिः ॥ १० ॥
अगदां त्वां[15] करिष्यन्ति व्याधिमाचक्ष्व[16] भामिनि[17] ।
यस्य[18] वानि प्रियं कार्यं येन[19] वा विप्रियं[20] कृतम् ॥ ११ ॥
कः प्रियं लभतामद्य को वा सुमहदप्रियम् ।
केन देव्यभिशस्ताऽसि[21] केन वाऽसि[22] विमानिता ॥ १२ ॥
अवध्यो वध्यतां को ऽद्य[23] वध्यो[24] वा को[25] विमुच्यताम् ।
दरिद्रः को भवत्वाढ्यो धनवान् को ऽप्यकिंचनः ॥ १३ ॥
यदस्ति मे धनं किंचित्तस्य देवि त्वमीश्वरी ।
यावदावर्तते[26] चक्रं तावती[27] मे वसुन्धरा ॥ १४ ॥
प्राच्याश्च सिन्धुसौवीराः[28] सुरमावर्तयस्तथा ।
वंगांगमगधा देशाः समृद्धाः काशिकोसलाः[30] ॥ १५ ॥

12 अ, पं—०शमास्मि । 13 अ, कु—भूमौ पांशुष्वनाथेव 14 अ, कु—संवि० । 15 अ, कु—ते । 16 अ, कु—व्यक्तमाचक्ष्व । 17 कु- भाविनि । पं—भाविनी । अ-भामिनी । 18 अ, कु—कस्य । 19 अ, कु, पं—केन । 20 अ, कु—ते प्रियं । 21 अ, कु, पं—देव्यभिशप्तासि । 22 अ, कु, पं—वाद्य । 23 अ, कु—वा । 24 कै—बद्धो । पं-बद्धो । अ, कु—वध्यो । 25 कै—ऽद्य । 26 अ, कु—०वन्प्रव० । 27 अ, कु—तावद्देया । 28 पं-०सौवीराः 29 पं- सुराष्ट्रवयत्तयस्तथा । 30 पं—काशिकोशलमेकल ।

तत्र जातं बहु द्रव्यं धनधान्यमनन्तकम्[31] ।
ततो वृणीष्व कैकेयि यावत्त्वं मम शंकसे ॥ १६ ॥
वयं चैव मदीयाश्च सर्वे तव वशानुगाः ।[32]
न ते किञ्चिदभिप्रायं व्याहन्तुमहमुत्सहे ॥[32] १७ ॥
आत्मनो जीवितेनापि ब्रूहि यन्मनसेच्छसि ।[33]
बलमात्मनि जानामि न मां शंकितुमर्हसि[34] ॥[33] १८ ॥
करिष्यामि तव प्रीतिं सुकृतेनापि ते शपे ।
किमायासेन ते भीरु शीघ्रमुत्तिष्ठ शोभने ॥ १९ ॥
तत्त्वं मे ब्रूहि कैकेयि यतस्ते भयमागतम् ।
तत्ते ऽहमपनेष्यामि नीहारमिव रश्मिवान् ॥ २० ॥
पृथिव्यां सर्वराजोऽस्मि[35] सम्राडस्मि[36] महीक्षिताम् ।
पृथिव्यां वररत्नानां प्रभुरस्मि शुचिस्मिते ॥ २१ ॥[37]
ददामि[38] यत्ते रुचितं[39] कोपं मैवं[40] कृथाः प्रिये ।A1
[तं मन्मथशरैर्विद्धं कामवेगवशानुगम् ॥ २२ ॥

31 पं—धनं० । 32 पं—नास्ति । 33 पं—"आत्मनो" इत्यारभ्य "शपे" इत्यन्तं, "त्वमीश्वरो" इत्यनंतरं पठ्यते । 34 कै—किं मंतुमर्हसि । 35 अ, कु—राजराजो । 36 अ, कु—सम्राट् सर्व । 37 पं—नास्ति । 38 अ, कु—ददानि । 39 अ, कु—मिमतं । 40 अ, कु—मात्वं । पं—माव ।

A1. अ, कु—न ते किंचिदभिप्रेतं न कर्तुमहमुत्सहे ।
आत्मनो जीवितेनापि करिष्ये ते प्रियं प्रिये [१]
अ, कु, पं—एवमुक्ता समुत्थाय विवक्षुर्भृशमाप्रियं ।
परिपीडयितुं भूयो भर्तारं साभ्यभाषत [२] ॥

उवाच पृथिवीपालं कैकेयी दारुणं वचः ।][1]
नास्मि विप्रकृता[42] देव केनचिन्नावमानिता[43] ॥ २३ ॥
अभिप्रायोऽस्ति मे कश्चित्तं मे त्वं कर्तुमर्हसि[44] ।
प्रतिजानीहि तावत् त्वं यदि मे[45] कर्तुमिच्छसि[46] ॥ २४ ॥
प्रतिज्ञाते ततोऽहं त्वां वरयिष्यामि कांक्षितम् ।
एवमुक्तस्तया राजा प्रियया स्त्रीवशं गतः ॥[0] २५ ॥
प्रविवेश विनाशाय मृगः पाशमिवाबुधः ।
प्रियां प्रियहिते युक्तां भार्यां नित्यमनुव्रताम् ॥ २६ ॥
स तां विज्ञाय सन्तप्तां कैकेयीं पार्थिवो ऽब्रवीत् ।
अवलिप्ते न जानासि त्वत्तः प्रियतरो मम ॥ २७ ॥
राममेकं वर्जयित्वा लोकेष्वन्यो[47] न विद्यते ।
[तेन ज्येष्ठेन रामेण मुख्येन च महात्मना ॥ २८ ॥
शपेयं जीवनार्हेण ब्रूहि यन्मनसेच्छसि ।
यं मुहूर्त्तमपश्यंस्तु न जीवेयमहं शुभे ॥ २९ ॥
तेन रामेण कैकेयि शपे ब्रूहि किमिच्छसि ।]
दद्यामहं[49] प्रिये सर्वं स्वीयं[48] हृदयमप्यहम् ॥ ३० ॥
अतः समीक्ष्य कैकेयि ब्रूहि यत्साधु मन्यसे ।

---

41 अ, कु, पं—नास्ति । 42 पं—निर्भर्त्सिता । 43 अ, कु, पं—०चिन्न-विमानिता । 44 अ, कु, पं—अभीप्सितं च (पं-तु) मे किंचित् प्रियं कर्तुमिहार्हसि । 45 पं—त्वं । 46 अ, कु-तद्ज्ञातुमिच्छसि । 0पं-नास्ति । 47 पं—लोके ह्यन्यो । 48 अ, कु, पं—नास्ति । 49 अ, कु—दद्मि ते परित्यैनं प्रिये । पं—दद्याहं प्रत्ययं प्रिये ।

बलमात्मनि पश्यन्ती न विशंकितुमर्हसि[50] ॥ ३१ ॥
करिष्यामि तव प्रीतिं सुकृतेनात्मनः शपे ।
तुष्टा तेनैव[51] वाक्येन दृष्ट्वाऽतिप्रियमात्मनः[52] ॥ ३२ ॥
व्याजहार महाघोरं कैकेयी भृशमप्रियम् ।
यथा च[53] धर्मं[53] शपसे[54] वरं मह्यं ददासि च ॥ ३३ ॥
तच्छृण्वन्तु समागम्य देवाः शक्रपुरोगमाः ।
चन्द्रादित्यौ ग्रहांश्चैव नभो रात्र्यहनी दिशः ॥ ३४ ॥
जगच्च पृथिवी चैव सह गन्धर्वराक्षसैः ।
निशाचराणि भूतानि गृहेषु गृहदेवताः ॥ ३५ ॥
यानि चान्यानि सत्त्वानि जानीयुर्भाषितं तव[55] ।
सत्यसन्धो महाभागो[56] धर्मज्ञः सुसमाहितः ॥ ३६ ॥
वरं मह्यं ददात्येतं[57] तन्मे शृणुत देवताः ।
इति देवी महेष्वासं परिगृह्याभिगम्य[58] च ॥ ३७ ॥
ततो वाचमुवाचेदं[59] वरदं काममोहितम् ।
पुरा देवासुरे युद्धे वरौ दत्तौ त्वया[60] नृप[60] ॥ ३८ ॥
परितुष्टेन मे देव[61] तौ वरौ त्वं प्रयच्छ मे ।
यस्त्वयाऽयं समारंभो रामं प्रति समाहितः ॥ ३९ ॥

---

50 कै, पं—विकांक्षितु० । 51 अ, कु, पं—तेनाथ । 52 कै—दृष्ट्वा॰पिप्रिय० । 53 अ, कु—धर्मेण । पं—तु धर्म्मं । 54 पं—श्रयसे । कै—'श्रयसे' इति विभिन्नमस्यां पार्श्वे लिखितम् । 55 अ, कु—वचः । 56 अ, कु—महाराजो । 57 अ, कु—०त्येष । पं—०त्येतत् । 58 अ, कु—०भिशाप्य । 59 अ, कु—वच उवाचेदं । 60 पं—त्वयानघ । 61 अ, कु—चेदानीं ।

अनेनाप्नोतु भरतो यौवराज्याभिषेचनम् ।
वनं गच्छतु रामश्च चीराजिनजटाधरः ॥ ४० ॥
नव पंच च वर्षाणि वरावेतौ वृणोम्यहम् ।
यदि सत्यप्रतिज्ञोऽसि वनं रामं विसर्जय ॥ ४१ ॥
भरतं चापि मे पुत्रं यौवराज्ये ऽभिषेचय[62] ।
एभिर्वचोभिः कैकेय्या हृदि विद्धो नराधिपः ॥ ४२ ॥
भयेन हृष्टरोमाऽभूद्व्याघ्रीं वीक्ष्य[63] यथा मृगः ।
सीदन् दुःखेन महता स तेनाभिहतो नृपः ॥ ४३ ॥
असंवृतायां विमना भूमावुपविवेश सः ।
अहो धिगिति चाप्युक्त्वा शोकार्तः पतितः क्षितौ ॥ ४४ ॥
मोहमभ्यागमत्सद्यो वाक्शल्याभिहतो हृदि ।
चिरेण च पुनः संज्ञां प्रतिलभ्यात्ममानसः ॥ ४५ ॥
कैकेयीमब्रवीन् क्रुद्धो दुःखशोकसमन्वितः ।
नृशंसे भ्रष्टचारित्रे[64] कुलस्यास्य विनाशिनि ॥ ४६ ॥
किं कृतं तव रामेण मया वा पापदर्शने[65] ।
यदतीत्यापि कौशल्यां रामस्त्वामनुवर्त्तते ॥ ४७ ॥
तस्यैव त्वमनर्थाय किमर्थं वै समुद्यता ।
त्वं मया ऽऽत्मविनाशाय भवनं संप्रवेशिता[66] ॥ ४८ ॥
राजपुत्रीति विज्ञाय व्याली तीक्ष्णविषा[67] यथा[67] ।
जीवलोको यदा सर्वो रक्तो रामगुणैरियम् ॥ ४९ ॥

---

62 पं—भिर्षिचय । 63 अ, कु, पं—दृष्ट्वा । 64 अ, कु—दुष्ट० । 65 अ—०दर्शिने । 66 अ, कु, स्वं प्र० । 67 अ, कु, पं—०महाविषा ।

अपराधं कमुद्दिश्य त्यक्ष्यामीष्टमहं सुतम् ।
कौशल्यां वा सुमित्रां वा त्यजेयमपि वा श्रियम् ॥ ५० ॥
जीवितं चात्मनो[68] रामं नैवाम्[69] पितृवत्सलम् ।
नन्दामि हि प्रियं पुत्रं दृष्ट्वा राममहं सदा ॥ ५१ ॥
अपश्यतः क्षणं तं मे न भवेदिह चेतना ।
तिष्ठेल्लोको विना भूमिं सस्यं च[70] सलिलं विना ॥ ५२ ॥
न तु[71] रामं विना लोके[72] तिष्ठेत्[73] प्राणो मम क्षणम्[73] ।
तदलं[74] त्यज्यतामेष निश्चयः पापनिश्चये ॥ ५३ ॥
अपि ते चरणौ मूर्द्ध्ना स्पृशाम्येष प्रसीद मे ।
स[75] तेन[75] वाक्येन महाऽप्रियेण घोरेण राजा हृदये गृहीतः ।
अहृष्टरूपो विमना बभूव व्याघ्राभिपन्नो बलवानिवोक्षा ॥५४॥
लोकस्य नाथोऽपि विपन्ननाथो भृशं गृहीतो हृदये तथैव ।
पपात भूमौ चरणौ परिस्पृशन् प्रसीद देवीति वचोऽभ्युदीरयन् ॥५५

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे वराभियाचनं
नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

68 अ, कु—वात्मनो । 69 अ, कु—न त्वेवं । पं—न चैव । 70 अ, कु—वा । 71 कै—च । 72 अ, कु—देहे । 73 अ, कु—तिष्ठेयुरसवो मम । पं—०प्राणसवै मम । 74 कै—तदयं । 75 कै, पं—सत्येन ।

[चतुर्दशः सर्गः]

अतदर्हं महाराजं पतितं पादयोरपि ।
ययातिमिव पुण्यान्ते[1] देवलोकात्परिच्युतम् ॥ १ ॥
कैकेयी पुनरेवेदं घोरं वचनमब्रवीत् ।
अनन्तदुःखसंवीतमतीवभयदर्शनम्[2] ॥ २ ॥
कीर्त्यसे त्वं सदा[3] सद्भिः सत्यवादी दृढव्रतः ।
मम चेमौ[4] वरौ दत्त्वा किं विचारयसि प्रभो ॥ ३ ॥
एवमुक्तस्तु कैकेय्या राजा दशरथस्तदा ।
प्रत्युवाच ततः क्रुद्धो निःश्वसन्नतिविह्वलः[5] ॥ ४ ॥
मृते मयि गते रामे वनं मनुजपुंगवे[6] ।[7]
हन्तानार्ये ममामित्रे सकामा भव कैकयि[8] ॥[9] ५ ॥
यदा मां गुरवो वृद्धा गुणवन्तो बहुश्रुताः ।
परिप्रक्ष्यन्ति[10] काकुत्स्थं वक्ष्यामि किमहं तदा ॥ ६ ॥
कैकेय्याः प्रियकामेन रामः प्रव्राजितो मया ।
यदि सत्यं वदिष्यामि हास्यं तेषां भविष्यति ॥ ७ ॥A1

---

1 पं—दुर्धर्षं । 2 अ, कु—०संविग्नमभीता भय० । पं—०संविग्नमभिते भय० । 3 पं—यदा । 4 अ, कु—चोभौ । 5 कै, पं—०न्निति-विह्वलः । 6 अ, कु, पं—०कुंजरे । 7 अ, कु, पं—7=9 । 8 अ, कु, पं—केकयि । 9 अ, कु, पं—9=7 । 10 अ, कु—०प्रच्छंति ।

A1 अ, कु, पं—बालिशो बत कामात्मा राज्यं दशरथो ऽन्वशात्[1] ।
प्रव्राजितो यस्त्यजेत्पुत्रं प्रियं ज्येष्ठमकारणे ॥

---

1 अ—०न्वगात् । पं—०न्वगात् ।

गर्हयिष्यन्ति[11] च मां नित्यं[11] स्त्रीजितं सर्वसाधवः ।
गर्हितस्य च मे श्रेयो नेह[12] नामुत्र विद्यते[12] ॥ ८ ॥
स्त्रीजितेन[13] नृशंसेन[13] रामः सर्वगुणान्वितः ।
मया विवासितः[14] पुत्रः स महात्माऽन्तरात्मना[15] ॥ ९ ॥
व्रतैश्च ब्रह्मचर्यैश्च[16] गुरुभिश्चापि कर्षितः[17] ।
सुखकालेऽद्य मे पुत्रः कथं वत्स्यति वै वने ॥[18] १० ॥
अनियोज्यैव तं कृच्छ्रे यदि मे मरणं भवेत् ।
अनुग्रहः परो मे स्यादिति चैवाभिकांक्षये[19] ॥ ११ ॥
प्रियार्हं च सुखार्हं च प्रियं पुत्रं गुणान्वितम् ।
कथं वक्ष्याम्यहं पापो[20] वनं गच्छेति राघवम् ॥ १२ ॥
नृशंसमकृतात्मानं क्लीवसत्त्वं स्त्रिया जितम् ।
निरमर्ष[21] निरुत्साहमल्पवीर्यं धिगस्तु माम् ॥ १३ ॥
अकीर्तिरतुला लोके ध्रुवं[22] परिभवश्च मे । A2
इति राज्ञो विलपतः शोकसंविग्नचेतसः ॥ १४ ॥

---

11 अ, कु, पं—इति मां गर्हयिष्यंति । 12 कु—नेहामुत्र निगद्यते । 13 कै—स्त्रीजितेनानृशंसेन । 14 अ, कु—च पितृमान् । पं—च पितृवान् । 15 अ, कु—दुरात्मना । पं—त्यक्तम् । 16 कै-व्रत० । 17 अ, कु—०श्चातिकर्षित । पं—०श्चाभिकार्षितः ।

18 अ, कु—सुखकालेन मे पुत्रो वने कृच्छ्रमवाप्स्यति ।
पं—सुखकालेद्य ,, ,, ,, ,,

19 अ, कु—चाप्यभिकांक्षितं । पं—वाक्याभिकांक्षितं । 20 कै—पापे ।
21 अ, कु—निरामर्ष । 22 अ, कु—ध्रुवः ।
A2 अ, कु—सर्वभूतेषु चावज्ञा यथा पापकृतस्तथा ।

अस्तमभ्यगमत्सूर्यो[23] रजनी चाभ्यवर्त्तत ।
त्रियामा तु भृशार्त्तस्य सा रात्रिरभवत्तदा ॥ १५ ॥
तथा विलपतस्तस्य राज्ञो वर्षशतोपमा ।
दीर्घमुष्णं[24] च[24] निःश्वस्य वृद्धो दशरथो नृपः ॥ १६ ॥
करुणं विललापार्तो गगनासक्तलोचनः ।
कैकेयि हा नृशंसासि यन्मामिच्छसि बाधितुम् ॥ १७ ॥
राज्यलोभात्त्वया त्यक्तः प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ।
हा पुत्र राम धर्मात्मन्[25] मद्भक्त[26] गुरुवत्सलम्[27] ॥ १८ ॥
कथं त्वामल्पपुण्योऽहं परित्यक्ष्याम्यसंशयम् ।
हा[28] रात्रे[28] सर्वभूतानां जीविताद्धापहारिणि ॥ १९ ॥
नेच्छामि[29] हि[29] प्रभातां त्वां नतायं रचितोऽञ्जलिः[30] ।
अथवा गम्यतां शीघ्रं नेमामिच्छामि निर्घृणाम् ॥ २० ॥
अकृतज्ञां चिरं द्रष्टुं कैकेयीं भर्तृघातिनीम् ।
विलप्यैवं ततो राजा कैकेयीमुद्यताञ्जलिः ॥ २१ ॥
प्रसादयामास पुनर्वाक्यं चेदमथाब्रवीत्[31] ।
साधुवृद्धस्य[32] दीनस्य मादृशस्याल्पचेतसः[33] ॥ २२ ॥

---

23 अ, कु—०मभ्यागम० । 24 अ, कु, पं—स दीर्घमुष्णं । 25 अ, कु—भद्रात्मन् । 26 अ, कु—मद्भक्त । पं—सद्भक्त । 27 अ, कु—गुरुवत्सल । पं—गु[रु]वत्सलः । 28 अ, कु—हे रात्रि । 29 अ, कु, पं—नेच्छाम्यद्य । 30 अ, कु, पं—त्वामभियाचे कृतांजलिः । 31 पं—चैवम० । 32 अ, कु—साध्वि० । पं—प्रवृद्धस्य च । 33 अ, कु—त्वद्दशस्याल्पतेजसः ।

प्रसादः क्रियतां देवि राज्ञो भर्त्तुर्विशेषतः ।[34]

कृता ते यदि जिज्ञासा मदीया[35] चारुहासिनि ॥O२३ ॥

सत्यमेष स्वभावो मे त्वदधीनोऽस्मि सर्वदा[36] ।O

यद्यदिच्छसि संप्राप्तुं रामप्रव्राजनादृते ॥ २४ ॥

सर्वस्वमपि च[37] प्राणांस्ते ददानि[38] प्रसीद मे ।

शून्येन[39] खलु कैकेयि मयैतद् वाक्यमीरितम् ॥ २५ ॥

कुरु साध्वि प्रसादं मे भीतस्य शरणैषिणः[40] ।

विशुद्धभावस्य[41] सुदुष्टभावा[41] दुःखातुरस्याश्रुकलस्य[42] राज्ञः ।

कृताश्रुपातस्य तथाऽभिधावतोभर्त्तु[43] नृशंसा[44] न चकार संज्ञाम्[45] ।२६

ततः स राजा पुनरेव मूर्च्छितः प्रियां सुदुष्टां प्रतिकूलभाषिणीम् ।

समीक्ष्य पुत्रस्य विवासकारणं क्षितौ विषण्णो[46] विललाप पार्थिवः[47] २७

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे दशरथविलापो

नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

---

34 अ, कु, पं—शरणागतस्य सुभगे कुरु त्राणं प्रसीद मे । 35 कु—मयीयं । 36 कु, पं—सर्वथा । O अ—नास्ति । 37 अ, कु—वा । पं—त्रुटितम् । 38 अ, कु, पं—ददामि । कै—"नि" इति लिखित्वा पश्चात् तत्रैव "मि" इति कृतम् । 39 अ, कु—सत्येन । 40 अ, कु, पं—०शरणार्थिनः । 41 अ, कु—०हि दुष्टभावा । पं—विशुद्धबुद्धेरपि शुद्धभावा । 42 अ, कु—भृशार्त्तरूपस्य च तस्य । कै—दुःखार्त्तक*स्य वि*कलस्य । "क*" इति पश्चादुपरि विकृतम् । "*वि" इत्यपि विकृतम् । 43 अ, कु, पं—०भियाचतो । 44 कै—भर्तुर्भृशं सा । 45 अ, कु—साज्ञां । 46 पं—निषण्णो । 47 अ, कु—दुःखितः ।

[पञ्चदशः सर्गः]

पुत्रशोकातुरं[1] दीनं विसंज्ञं पतितं भुवि ।
विचेष्टमानं भर्तारं कैकेयी वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
पापं कृत्वेव[2] भो भर्तर्मम दत्त्वा[2] वरद्वयम् ।
शेषे किं भूतले स्वस्थः[3] सत्ये[4] त्वं स्थातुमर्हसि[4] ॥ २ ॥
आहुः सत्यं परं धर्मं धर्मज्ञाः सत्यवादिनः ।
सत्यवादीति[5] च ज्ञात्वा मया त्वमिह[6] याचितः ॥ ३ ॥
कपोतायाभयं दत्त्वा शिबिः[7] किल महीपतिः ।
उत्कृत्य[8] च स्वमांसानि दत्त्वा स्वर्गमितो गतः ॥ ४ ॥ A1
अलर्कश्चापि राजर्षिर्ब्राह्मणेनाभियाचितः ।
प्रदायोत्कृत्य नेत्रे द्वे[9] नाकपृष्ठमितो गतः ॥ ५ ॥
सत्यप्रतिज्ञस्त्वं[10] प्राक् प्रतिज्ञाय मे वरौ । A2

---

1 कं—पुत्रशोकातुरं । 2 पं—०भो भर्तर्दत्त्वाव । अ, कु—कृत्वेदम-परं मम० । कं—०भो भर्त्तमम० । 3 अ, कु—सन्नः । 4 पं—०स्थातुं-त्वमर्हसि । अ, कु—स्थातुं सत्ये त्वमर्हसि । 5 अ, कु—०वागिति । 6 अ, कु—त्वमभि- । 7 अ, कु—शैब्यः । 8 पं—उत्कृत्य ।

A 1 अ, कु, पं—सरितां च पतिः सत्यां[1] मर्यादां स्थापितां[2] पुरा ।
समयं पालयन्[3] वेलां[4] न लंघयति[5] वेगवान् ॥ ५ ॥

9 अ, कु—स्वे । 10 पं—स चाप्रतिज्ञ० । A2 अ, कु—न ददासि च[6] कस्मात्त्वं लुब्धः कापुरुषो यथा ।

१ पं—सत्यं । २ पं—स्थापितः । ३ पं—पालयद् । ४ कु—वलो* । ५ नोल्लंघयति । ६ अ—न ।

परित्यज[11] सुतं रामं वनवासाय पार्थिव[12] ॥ ६ ॥
न करिष्यासि चेदद्य वचनं मम कांक्षितम् ।
अग्रतस्ते महाराज[13] परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ ७ ॥
छलपाशेन कैकेय्या बद्ध एवं[14] नराधिपः ।
न शशाक तदा छेत्तुं बालिः प्रागिव विष्णुना ॥ ८ ॥
विवर्णवदनश्चापि विभ्रान्तनयनो[15] ऽभवत् ।
महाधुर्यः श्रमासक्तो[16] युक्तश्चक्रान्तरे यथा ॥ ९ ॥
विभ्रान्तचित्तनयनो नष्टसंज्ञो ऽतिदुःखितः[17] ।
कृच्छ्रादिव[18] स धैर्येण संस्तभ्यात्मानमात्मना[19] ॥ १० ॥
शोकसंरंभताम्राक्षः कैकेयीमिदमब्रवीत्[20] ।
धिगस्तु पापशीले त्वां नृशंसे पतिघातिनि⁰ ॥ ११ ॥
त्यजामि त्वामहं[21] पापे[21] निर्घृणां निरपत्रपाम् ।⁰
न मे त्वया कृत्यमस्ति क्षुद्रया[22] पापलुब्धया[23] ॥१२॥[A3]
त्वत्कृते चापि भरतं त्यजाम्यनपकारिणम् ।
एवं विलपतस्तस्य राज्ञो दशरथस्य च ॥ १३ ॥

---

11 अ, कु, पं–परित्ज्य । 12 अ, कु, पं–राघवं । 13 अ, कु, पं—ततो राजन् । 14 पं—एव । 15 अ—विभ्रांत० । 16 अ, कु—श्रमायुक्तो । पं–श्रमाशक्तो । 17 कु–भ्रष्टमभिवीक्ष्य निः दुःखितः । अ–भ्रष्टसंज्ञोतिदुःखितः । 18 अ, कु, पं—कृच्छ्रादेव । 19 अ, कु—०भ्यात्मानमब्रवीत् । 20 अ, कु, पं—०मभिवीक्ष्य तां । 21 पं—त्वां महापापां । कु—०पापो । O अ–नास्ति । 22 पं—क्रुद्धया । 23 अ, कु, पं–राज्यलुब्धया (कु–लुब्धया) A3 अ, कु, पं—मन्त्र (पं–नु) वच्च मया पाणिर्गृहीतो यस्त्यजाम्यहम् । 24 अ, कु—तु ।

जगाम सा निशा कृत्स्ना दुःखार्तस्य महात्मनः ।
अथोषसि प्रभातायां शर्वर्यां द्वारमागतः ॥ १४ ॥
सुमन्त्रः प्राञ्जलिर्भूत्वा बोधयामास पार्थिवम् ।
सुप्रभाता निशा राजंस्तवेयं भद्रमस्तु ते ॥ १५ ॥
बुध्यस्व नरशार्दूल श्रियं भद्राणि चाप्नुहि ।
पूर्णचन्द्रोदये पूर्णो वर्द्धते सागरो यथा ॥ १६ ॥
सर्वर्द्धिविभवैः पूर्णस्तथा[25] वर्द्धस्व भूपते ।
यथा रविर्यथा सोमो यथेन्द्रो वरुणो यथा ॥ १७ ॥
नन्दन्त्यृद्ध्या श्रिया चैव तथा नन्दस्व[26] भूपते ।
ततः स राजा सूतस्य प्रतिबोधनमङ्गलम् ॥ १८ ॥
श्रुत्वाऽतिशोकसंतप्तस्तमाभाष्येदमब्रवीत्[27] ।
सूत किं दुःखितं त्वं मामस्तुत्यं[28] स्तोतुमिच्छसि ॥ १९ ॥
वचोभिरभिगत्त[29] मां भूयस्त्वं परिक्रन्तासि[30] ।
सुमन्त्रस्तु[31] तदा[31] श्रुत्वा भर्तुर्दीनस्य भाषितम् ॥ २० ॥
सहसा व्रीडितः[32] किंचित्तस्माद्देशादपागमत् ।
अत्रान्तरे पापशीला कैकेयी पुनरब्रवीत् ॥ २१ ॥
वाक्प्रतोदेन[33] भर्तारं[33] सीदन्तं तुदतीव सा ।

---

25 अ, कु, पं—पूर्णस्तथा । 26 अ, कु, पं—त्वं नंद । 27 अ, कु—श्रुत्वा हि दुःखसं० । पं—श्रुत्वातिदुःखसं० । 28 कै—०मस्तोत्यं । 29 पं—०रेव राजानं । 30 अ, कु, पं—०स्त्वमनुक्रंतासि । 31 अ, कु, पं—०स्तद्वचः । 32 पं—पीडितः । 33 अ, कु, पं—भर्तारं वाक्प्रतोदेन ।

*किमेवं भाषसे दीनं वाक्यं त्वं[34] प्राकृतो[34] यथा ॥ २२ ॥
*राममाहूय विश्रब्धं वनायाशु[35] विसर्जय ।
*यदि सत्यप्रतिज्ञो ऽसि कुरु मे वचनं प्रियम् ॥ २३ ॥
*नायं कालो विषादस्य न मोहस्योपपद्यते ।
*प्रव्राज्य रामं भरतं यौवराज्ये ऽभिषिच्य[36] च[36] ॥ २४ ॥
*निःसपत्नां[37] च मां कृत्वा भवाद्य विगतज्वरः ।
*स पुनर्वाक्प्रतोदेन पीडितो नरपुंगवः ॥[38] २५ ॥
*राजा शोकार्तिसन्तप्तः[39] सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ।
*सत्यपाशनिबद्धो[40] ऽस्मि सूत संभ्रान्तमानसः[41] ॥ २६ ॥
*रामं द्रष्टुमिहेच्छामि तं च शीघ्रमिहानय ।
इति राज्ञो वचः श्रुत्वा कैकेयी तदनन्तरम् ॥ २७ ॥
स्वयमेवाब्रवीत्सूतमिदं सा[42] त्वरयन्त्युत[42] ।
नरेन्द्रवचनात्सूत गच्छ रामं[43] त्वमानय[43] ॥ २८ ॥
यथा च शीघ्रमेवैति तथैव त्वरयस्व[44] च[44] ।
कैकेय्या वचनं श्रुत्वा सुमंत्रः प्रीतमानसः ॥ २९ ॥

*एते श्लोकाः शोडशे सर्गे (३७—४२) किञ्चित्पाठभेदेन पुनरुक्ताः । 34 अ, कु, पं—सुप्राकृतो (पं—तं) । 35 अ, कु, पं—०वनायाद्य । 36 अ—भिषेच्यत । पं—भिषिच्यत । 37 पं—०पत्नीं । 38 अ, कु—स तुन्नो वाक्प्रतोदेन प्रतोदेनेव पुङ्गवः । 39 अ, कु—०कामिसं० । पं—०काग्निसं० । 40 अ, कु—०पाशविब० । 41 अ, कु, पं—०सूत वि० । 42 अ, कु—संत्वरयंत्युत । 43 अ, कु, पं—त्वं राममानय । 44 कु—त्वरयस्त्वयम् । अ—त्वरयस्वयम् । पं—त्वरयस्व तं ।

ततः स रामानयने समुत्सुको द्रुतः सुमंत्रोऽवततार मन्दिरात् ।
रथं समायोजय योजयेति वै ब्रुवंस्तुरंगाधिकृतं वरेण्यम् ॥ ३० ॥

ततः सुमन्त्रः प्रययौ रथेन[45] महीपतेर्द्वारमतीत्य सत्वरः ।
विनिर्गतश्चापि ददर्श धिष्ठितानपावृतान्[46] मन्त्रिपुरोहितांस्तदा ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे सुमंत्रवाक्यं[47]
नाम पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

45 अ, कु, पं—त्वरितो विनिर्ययौ महीपतीन् (पं—पतेः) द्वारगतो विलोकयन् । 46 अ, कु—०विष्ठितानुपागतान् । 47 कै, ल—नास्ति । अ, कु—कैकेय्युपालंभो (अ—भं) । पं—रामानयनं ।

[षोडशः सर्गः]

ततस्ते मन्त्रिणः सूतं सुमन्त्रं सपुरोहिताः ।
ऊचुरभ्यागतानस्मान् राज्ञ आवेदयस्व ह ॥ १ ॥
पश्यामो न च राजानमुदितश्च दिवाकरः ।
आभिषेचनिकं सर्वं द्रव्यमेवोपकल्पितम् ॥ २ ॥
औदुंबरं भद्रपीठं शातकौंभ-विभूषितम् ।
गङ्गायमुनयोश्चैव सङ्गमादाहृतं पयः ॥ ३ ॥
याश्चान्याः सरितः पुण्यास्ताभ्यश्च जलमाहृतम् ।
समुद्रेभ्यश्च सर्वेभ्यः सलिलं समुपाहृतम् ॥ ४ ॥
सर्वबीजानि गन्धश्च[1] रत्नानि विविधानि च ।
वाहनं नरसंयुक्तं दर्भाः सुमनसः प्रियाः ॥ ५ ॥
अहतानि च वासांसि भृंगारं च हिरण्मयम् ।
क्षीरिवृक्षप्रवालाश्च[2] पद्मोत्पलविभूषिताः[3] ॥ ६ ॥
पूर्णकुंभाः स्वलंकृत्य कांचना[4] उपकल्पिताः[4] ।
मंजूकारोचना* चैव लाजा दधि घृतं मधु ॥ ७ ॥
तथैव पुण्यतीर्थेभ्यो मृदापो मंगलानि च ।
चन्द्रांशुविमलं चांबु मणिदण्डे स्वलङ्कृते ॥ ८ ॥
चामरव्यजने श्रीमद्रामार्थमुपकल्पिते ।
पूर्णेन्दुमण्डलाभं च श्रीमन्माल्यविभूषितम् ॥०९ ॥

०म—त्यक्तम् । 1 म—गंधाश्च । 2 म—क्षीर० । 3 म, ल—विमिश्रिताः । 4 म, ल—कांचना तपकाल्पिताः । लेखकस्य लिपिनिमित्तकः प्रमादः प्रतीयते । * कै—…कारोचना । म-कारोचना । ० म-त्यक्तम् ।

रामस्य यौवराज्यार्थमातपत्रं प्रकल्पितम् ।
मत्तो गजवरश्चैव रथश्चैव प्रतीक्षते ॥ १० ॥
श्वेतस्तुरङ्गमश्चैव रामार्थमुपकल्पितः ।
अष्टौ कन्याश्च मंगल्याः सर्वाभरणभूषिताः ॥ ११ ॥
रूपयौवनसंपन्ना गणिकाश्च स्वलङ्कृताः ।
श्वेतपुष्पाणि वेणुश्च[5] निस्त्रिंशो धनुरेव च ॥ १२ ॥
हेमदाम्नाऽभ्यलङ्कृत्य ककुद्मान् पाण्डुरो वृषः ।
सिंहासनं व्याघ्रचर्म संसिद्धश्च हुताशनः ॥ १३ ॥
वादित्राणि च सर्वाणि सूतमागधबन्दिनः ।
आचार्या ब्राह्मणा गावः पुण्याश्च मृगपक्षिणः ॥ १४ ॥
पौरजानपदश्रेण्यो नैगमानां गणैः सह ।
एते चान्ये च बहवः प्रीयमाणाः[6] प्रियंवचः ॥ १५ ॥
इक्ष्वाकुराजाभ्युदयं यच्चान्यदपि किंचन ।
तत्सर्वं कृतमस्माभिः सूत राज्ञे निवेदय ॥ १६ ॥
इति तैरेवमाज्ञप्तः प्रतीहारो महीपतेः ।
अब्रवीत् तानिदं वाक्यं सुमन्त्रो मन्त्रिसत्तमः ॥ १७ ॥
अहं पृच्छामि वचनात् सुखमायुष्मतां नृपम् ।
राजसन्दर्शनार्थित्वमयमावेदयामि वः ॥ १८ ॥
इत्युक्त्वाऽन्तःपुरद्वारमासाद्य स नरेश्वरम् ।
सुमन्त्रो नृपतिं सुप्तं मत्वा भूयो व्यबोधयत् ॥ १९ ॥
वाग्भिः परमजुष्टाभिरभितुष्टाव पार्थिवम् ।

---

5 कै—"धूपश्च" इति पश्चाद्विकृतम् । 6 म—प्रियमाना ।

सोमः सूर्यश्च काकुत्स्थ शिवो वैश्रवणोऽपि च ॥ २० ॥
अनिलश्चाग्निरिन्द्रश्च विजयं प्रदिशन्तु ते ।
गता भगवती रात्रिरहः शिवमुपस्थितम् ॥ २१ ॥
प्रतिबुध्यस्व नृपते सर्वकल्याणसिद्धये ।
इन्द्रमस्यां हि वेलायामभितुष्टाव मातलिः ॥ २२ ॥
सोऽजयद्दानवान् सर्वांस्तथा त्वां बोधयाम्यहम् ।
वेदाः[7] सांगास्सर्षिगणा यथा कमलसंभवम् ॥[0]२३ ॥
ब्रह्माणं बोधयन्त्यद्य तथा त्वां बोधयाम्यहम् ।[0]
आदित्यः सह चन्द्रेण यथा भूतधरामिमाम् ॥ २४ ॥
बोधयन्त्यद्य पृथिवीं तथा त्वां बोधयाम्यहम् ।
उत्तिष्ठ त्वं महाभाग कृतकौतुकमंगलः ॥ २५ ॥
विरोचमानो वपुषा मेरोरिव दिवाकरः ।
इदं तिष्ठति रामस्य सर्वमत्राभिषेचने ॥ २६ ॥
पौरजानपदश्रेणी नैगमश्चागतो जनः ।
असौ वसिष्ठो भगवान् ब्राह्मणैः सह तिष्ठति ॥ २७ ॥
क्षिप्रमाज्ञप्यतां[8] शीघ्रं[8] राघवस्याभिषेचनम् ।
यथा ह्यगोपाः पशवो यथा सैन्यमनायकम् ॥ २८ ॥
एवं प्रजाः प्रजापाल भवन्ति ह्यनधिष्ठिताः ।
चन्द्रहीना यथा रात्रिः सूर्यहीनमहो यथा ॥ २९ ॥
तथा भवति तद्राष्ट्रं यत्र राजा न दृश्यते ।

---

7 ल—देवाः । 0म—त्यकम् । 8 म—०मज्ञाप्य तं राजन् ।

गता निशेयं काचित्ते सुखेन नृपसत्तम ॥[9] ३० ॥
प्रतिबुध्यस्व राजर्षे[10] राजकार्याणि कारय ।
पुरोधसो मन्त्रिणश्च पौरजानपदास्तथा ॥ ३१ ॥
दर्शनं तेऽभिकांक्षन्ति प्रतिबोद्धुं त्वमर्हसि ।
तं तथा पुनरेत्यात्र बोधयन्तं नराधिपम् ॥ ३२ ॥
अनु(न्व ?)भूयत[11] शोकेन भूय एव नराधिपः ।
स तु शोकाभिसन्तप्तः सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥ ३३ ॥
शोकरक्तेक्षणो धीमान् वीक्ष्य वाचाऽवधारितम् ।
सूत ! किं हतरूपं[12] मामस्तुत्यं स्तोतुमिच्छसि ॥ ३४ ॥
वाक्यैस्तावत्तु मर्माणि मम भूयो निकृन्तसि ।
सुमन्त्रः कुत्सनां कृत्वा दृष्ट्वा दीनं च पार्थिवम् ॥ ३५ ॥
प्रगृहीतांजलिस्तत्र ततः किंचिदपाक्रमत् ।
ततः पापसमाचारा कैकेयी पार्थिवं वचः ॥ ३६ ॥
उवाच परमं तीक्ष्णं वाक्यज्ञा वाक्यमूर्जितम् ।
किमेतद्वदसे वाक्यं राजंस्त्वं प्राकृतो यथा ॥ ३७ ॥
*राममाहूय विस्रब्धं वनमद्य विसर्जय ।
*यदि सत्यप्रतिज्ञोऽसि कुरुष्व वचनं मम ॥ ३८ ॥
*नायं कालो हि शोकस्य न मोहस्योपपद्यते ।
*प्रव्राज्य रामं भरतं यौवराज्येऽभिषिच्य च ॥ ३९ ॥

9 म—यथा नायकहीना वै मुक्तानामावली यथा । 10 म—राजेंद्र । 11 म—अद्य(?)भूयत । ल—अर्ध्य(?)भूयत । 12 कै—हनुरूपं । पश्चात् हरितालेन प्रोञ्छ्य "किमनुरूपं" इत्येवं विकृतम् ।

*निस्सपत्नां च मां कृत्वा भवाद्य विगतज्वरः ।
स नुन्नो वाक्यखड्गेन प्रतोदेनेव सद्धयः ॥ ४० ॥
*ततः स राजा सूतं तं पुनरेवाभ्यभाषत ।
सुमन्त्र नैव सुप्तो ऽस्मि रामं त्वं क्षिप्रमानय ॥ ४१ ॥
*सत्यपाशनिबद्धो ऽस्मि सूत संभ्रान्तमानसः ।
*रामं द्रष्टुमिहेच्छामि तं च शीघ्रमिहानय ॥ ४२ ॥
सुमन्त्रस्तु वचः श्रुत्वा सभार्यस्य नृपस्य ह ।
निर्जगाम सुसंभ्रान्तस्तस्माद्राजनिवेशनात् ॥ ४३ ॥
निष्क्रम्य चैव त्वरितं राममानयितुं तदा ।
रथेन जविताश्वेन राममानयितुं गृहात् ॥ ४४ ॥
जनौघं राजमार्गस्थं प्रतिव्यूहमुपागतम् ।
शृण्वन् वाचः कथयतां रामाभ्युदयसंयुताः ॥ ४५ ॥
रामोऽद्य युवराजत्वं प्राप्स्यते नृपशासनात् ।
अहो महोत्सवो[13] ऽस्माकमद्यायं भविता पुरे ॥ ४६ ॥
अद्याहोऽनुगृहीताः स्म यत्साधुजनवत्सलः ।
युवराजः किलाद्यायमस्माकं भविता पुरे ॥ ४७ ॥
पालयिष्यति नो रामः पिता पुत्रानिवौरसान् ।
इति तस्य जनौघस्य वचः[14] शृण्वन्[14] समन्ततः ॥ ४८ ॥
ययौ सुमन्त्रस्त्वरितो राममानायितुं गृहात् ।
ततो ददर्श रुचिरं[15] कैलाससदृशप्रभम् ॥ ४९ ॥

---

13 कै—महोत्साहो । 14 म—०शृण्वन् वाचः । 15 कै—"रुधिरं" इति पूर्वं लिखितं, पश्चात् "रुधितं" इति विकृतम् ।

[रामवेश्म सुमंत्रस्तु त्रिविष्टपसमप्रभम्][16]
महाकवाटपिहितं[17] वितर्दिशतशोभितम् ॥
कांचनप्रतिमैकाग्रं[18] मणिविद्रुमतोरणम् ॥ ५० ॥
शारदाभ्रघनप्रख्यं दीप्तपावकसप्रभम्[19] ।
दामभिर्वरमाल्यैश्च सुमहद्भिरलंकृतम् ॥ ५१ ॥
मुक्तामणिभिराकीर्णं जनैरंजालिमोहितैः[20] ।
गन्धान् मनोज्ञान् विसृजद्यथा मलयपर्वतः ॥ ५२ ॥
सारसैश्च मयूरैश्च विनदद्भिर्विराजितम् ।
मनश्चक्षुश्च भूतानामाददानमिव श्रिया[21] ॥ ५३ ॥
चन्द्रभास्करसंकाशं कुबेरसदनोपमम् ।
महेन्द्रसद्मप्रतिमं नानापक्षिसमाकुलम् ॥ ५४ ॥
मेरुवेश्मोपमं सूतो रामवेश्म ददर्श ह ।

ततः समासाद्यमहाधनं महत् प्रहृष्टरोमा स बभूव सारथिः ।
मृगैर्मयूरैश्च समाकुलं सदा गृहं च रामस्य शचीपतेरिव ॥ ५५ ॥
स तत्र कैलासनिभाः स्वलंकृताः प्रविश्य कक्ष्यास्त्रिदशालयोपमा ।
उपस्थितैर्मागधसूतवन्दिभिस्तथैव वैतालिकसौखशायिकैः ॥ ५६ ॥

---

16 म, ल—नास्ति । 17 कै—"०कवाट०" इति पूर्वं लिखितं पश्चात् "०कपाट०" इति शोधितम् । 18 कै—०प्रतिमेकाग्रं । 19 कै—"०दीप्त ...समप्रभम्" इति त्रुटितं लिखितं, पश्चात् "दीप्तवंतंसमप्रभम्" इत्थं पूरितम् । 20 कै—०रांजलि० । 21 कै—प्रिया ।

अभिष्टुवद्भिर्गुणतो नृपात्मजं समावृतं राजपथं ददर्श सः ।
समस्तकक्ष्यं पुरुषैरलंकृतं विनीतवेशैर्बहुभिः सुरंजितम् ॥ ५८ ॥
विवेश रामस्य महात्मनो गृहं महीयमानो नृपमन्त्रिसत्तमैः ।
सितं च शैलोत्तमशृंगसन्निभं महाविमानप्रतिमं जनौघवत् ।
स मोज्यमानः प्रविवेश तद्गृहं संपूज्यमानो नृपमन्त्रिसत्तमैः ॥५९॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे सुमन्त्रप्रेषणं
नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

[सप्तदशः सर्गः]

जनौघवत्यः[1] सोऽतीत्य षट्कक्ष्यास्तस्य[2] वेश्मनः ।
प्रविभक्तां[3] ततः कक्ष्यां[4] सप्तमीमाससाद ह[5] ॥ १ ॥
युवभिः पुरुषैर्गुप्तां प्रासकार्मुकधारिभिः[6] ।
अप्रमादिभिरेकाग्रैर्भक्तिमद्भिरलंकृतैः ॥ २ ॥
तथा कंचुकिभिः[7] शुद्धैः[7] कषायाम्बरधारिभिः[8] ।
रक्षितामनलंकारैः स्त्र्यध्यक्षैर्वेत्रपाणिभिः ॥ ३ ॥
ते दृष्ट्वागतं सूतं रामप्रियचिकीर्षवः[9] ।
समायाय[10] च[12] रामाय समुपेत्याचचक्षिरे[11] ॥ ४ ॥
श्रुत्वैवाभ्यागतं तं[12] तु दूतमभ्यर्हितं[13] पितुः ।
रामः प्रवेशयामास सत्कृत्य[14] गृहमात्मनः[14] ॥ ५ ॥
स तं धनदसंकाशमुपविष्टं स्वलंकृतम् ।
ददर्श सूतः पर्यङ्के[15] सौवर्णे[16] राङ्कवाश्रिते[17] ॥ ६ ॥
वराहरुधिराभेण सुश्लक्ष्णेन महाभुजम् ।
अनुलिप्तं महार्हेण चन्दनेन सुगन्धिना ॥ ७ ॥

---

1 अ, कु—०कीर्णाः । पं—०कीर्णः । 2 अ, कु—कक्षास्तस्य । 3 अ, कु—अविभक्तां । 4 अ, कु, पं—कक्षां । 5 कु—शः । अ, पं—सः । 6 अ, कु, पं—०पाणिभिः । 7 अ, कु, पं—०वृद्धैः । 8 पं-०वासिभिः । अ, कु—काषायांवरवासिभिः । 9 पं—०चिकीर्षया । 10 अ, कु, पं—सह भार्याय । 11 अ, कु, पं—प्रणिपत्य न्यवेदयन् । 12 अ, कु, पं—च । 13 अ, कु, पं-सूतमभ्यर्हितं । 14 अ, कु, पं-सत्कृत्यालयमात्मनः । 15 अ, कु, पं—सौवर्णे । 16 अ, कु, पं—पर्यंके । 17 कै—०वारिते । अ—०वाविते । पं—०वास्तृते । कु—०वाचिते ।

वालव्यजनधारिण्या सीतया पार्श्वसंस्थया ।
सपद्मया सेव्यमानं श्रियेव मधुसूदनम् ॥ ८ ॥
तरुणादित्यसदृशमुज्ज्वलन्तमिव[18] श्रिया ।
ववन्दे राममभ्येत्य सुमन्त्रो विनयान्वितः ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा[19] चैनं सुखं प्रह्वो विहारशयनासने ।
उवाचानन्तरमिदं सुमन्त्रो राजशासनात्[20] ॥ १० ॥
कौशल्या सुप्रजा देवी देव[21] त्वां द्रष्टुमिच्छति ।
कैकेयीसहितो राजा[22] गम्यतां यदि रोचते ॥ ११ ॥
एवमुक्तः सुमन्त्रेण रामो राजीवलोचनः ।
शिरसा प्रतिगृह्याज्ञां पितुः सीतामथाब्रवीत् ॥ १२ ॥
सीते देवश्च देवी च समागम्य परस्परम् ।
मम चिन्तयतो[23] नूनं यौवराज्याभिषेचनम् ॥ १३ ॥
ध्रुवं मे[24] यतते माता[24] कैकेयी मत्प्रियेप्सया[25] ।
अद्यैव मां[26] यौवराज्ये[26] प्रतिपादयितुं स्वयम् ॥ १४ ॥
नूनं रहसि राजानं त्वरयत्येव[27] मत्कृते[27] ।
अथवा सहिता राज्ञा मां प्रियं वक्तुमिच्छति ॥ १५ ॥

18 अ, कु, पं—प्रज्वलंतमिव । 19 अ, कु—पृष्ट्वा । 20 अ, कु—शासनं । 21 अ, कु—देवस् । पं—देवदेवस् । म—देवस्त्वं । 22 अ, कु—राम । 23 अ, कु-मंत्रयतो । 24 पं—यतति माता मे । 25 अ, कु—०येच्छया । 26 अ, कु—मे यौवराज्यं । 27 पं--प्रज्ञापत्येव । अ, कु—मत्कृते त्वरयत्यसौ ।

यादृशी परिषत्सीते दूतश्चायं यथाविधः[28] ।
ध्रुवं[29] संप्रति मां राजा[29] यौवराज्ये[30]ऽभिषेक्ष्यति[30] ॥ १६ ॥
तस्माच्छीघ्रमहं गत्वा पश्यामि जगतीपतिम् ।
एकं रहसि कैकेय्या सुखासीनं गतज्वरम् ॥ १७ ॥
इह त्वं परिवारेण सुखमास्स्व रमस्व च ।
इति सम्मानिता सीता भर्त्रा त्वमितलोचना ॥ १८ ॥
द्वारान्तमनुवव्राज[31] मंगलान्यपि दध्युषी[32] ।
राज्यं द्विजातिभिर्जुष्टं राजसूयाभिषेकवत् ॥ १९ ॥
कर्तुमर्हति ते राजा वासवस्येव लोककृत् ।
दीक्षितं व्रतसंपन्नं वराजिनधरं शुचिम् ॥ २० ॥
कुरंगशृंगपाणिं च पश्यन्ती त्वां भजाम्यहम् ।
पूर्वां दिशं वज्रधरो दक्षिणां पातु ते यमः ॥ २१ ॥
वरुणः पश्चिमामाशां धनेशस्तूत्तरां दिशम् ।
अथ सीतामनुज्ञाप्य कृतकौतुकमंगलः ॥ २२ ॥
निश्चक्राम सुमन्त्रेण सह रामो निवेशनात् ।
पर्वतादिव निष्क्रम्य[33] सिंहो गिरिगुहाशयः ॥ २३ ॥
मध्यमायां समेयाय कक्ष्यायामर्थिभिर्द्विजैः ।
स सर्वानर्थिनो दृष्ट्वा समेत्य प्रतिनन्द्य[34] च ॥ २४ ॥
मेघनादसमारावं मणिहेमविभूषितम् ।

---

28 अ, कु—तथा० । 29 अ, कु—ध्रुवमद्यैव राजा मां । पं—ध्रुवे राज्ये ध्रुवं राजा । 30 कै—०षेक्ष्यते । पं—मे(मां) संप्रत्यभिषेक्ष्यति । 31 म—द्वारं तमनुत (व) व्राज । ल—द्वारांतरमनुव्राज । 32 कै—दध्नुषी । म—दर्ध्यषी । 33 म—निष्क्रांता । 34 म—०नर्म्य ।

तथा पावकसंकाशमारुरोह रथोत्तमम् ॥ २५ ॥
वैयाघ्रं पुरुषव्याघ्रो राजितं राजनन्दनः ।
मुष्णन्तमिव चक्षूंषि प्रभया सूर्यवर्चसम् ॥ २६ ॥
करेणुशिशुकल्पैश्च युक्तं परमवाजिभिः ।
सहस्रहयसंयुक्तं रथमिन्द्र इवाशुगम् ॥ २७ ॥
प्रययौ तूर्णमास्थाय राघवो ज्वलितं श्रिया ।
स पर्जन्य इवाकाशे स्वनवान् वै निनादयन् ॥ २८ ॥
केतनान्निर्ययौ श्रीमान्[35] महाऽभ्रादिव चन्द्रमाः ।
छत्रचामरपाणिस्तु राघवो लक्ष्मणोऽनुजः ॥ २९ ॥
जुगोप भ्रातरं भ्राता रथमास्थाय पृष्ठतः ।
ततो हलहलाशब्दस्तुमुलः समपद्यत ॥ ३० ॥
तस्य निष्क्रामतस्तत्र जनौघस्य समन्ततः ।
ततो हयवरा मुख्या नागाश्च घनसन्निभाः[36] ॥ ३१ ॥
अनुजग्मुस्ततो रामं शतशोऽथ सहस्रशः ।
अग्रतश्चास्य सन्नद्धाश्चन्दनागुरुवासिताः ॥ ३२ ॥
खड्गचर्मधराः शूरा जग्मू रामस्य पृष्ठतः ।
अथ वादित्रशब्दांश्च स्तुतिशब्दांश्च वंदिनाम् ॥ ३३ ॥
सिंहनादांश्च शूराणां तदा शुश्राव वै पथि ।
हर्म्यवातायनस्थाभि र्भूषिताभिः समन्ततः ॥ ३४ ॥
आकीर्यमाणः पुष्पैश्च ययौ स्त्रीभिररिन्दमः ।
रामं सर्वानवद्याङ्गं रामाश्च प्रीतिसंयुताः ॥ ३५ ॥

35 म—शीघ्रं । 36 म—गिरि० ।

वचोभिरग्र्यैर्हर्म्यस्थाः क्षितिस्थं तं ववंदिरे ।
नूनं नन्दति ते माता कौशल्या भ्रातृनन्दन ॥ ३६ ॥
पश्यन्ती सिद्धमत्र त्वां पित्र्यं[37] राज्यमुपस्थितम् ।
सर्वसीमंतिनीभ्यश्च सीतां सीमंतिनीं वराम् ॥ ३७ ॥
अभ्यनंदत वै नार्यो रामस्य हृदयप्रियाम् ।
तया सुचरितं देव्या पुरा नूनं महत्तपः ।
रोहिण्या शशिनो वेह रामसंयोगकाम्यया ॥ ३८ ॥
ततो हलहलाशब्दस्तुमुलस्समजायत ।
उपस्थाने नरेन्द्रस्य विमर्दः सुमहान्पथि ॥ ३९ ॥
स राघवस्तत्र कथाभिरामः[38] शुश्राव लोकस्य समागतस्य ।
आत्माधिकारैर्विविधाश्च वाचः प्रहृष्टरूपस्य पुरे जनस्य ॥ ४० ॥
एष स्वयं गच्छति राघवोऽद्य राज्ञः प्रसादात्पृथिवीमलप्स्यत् ।
जाता वयं सर्वसमृद्धकामा येषामयं नो भविता प्रशास्ता ॥ ४१ ॥
लाभो जनस्यास्य यदेष सर्वं प्रपत्स्यते राष्ट्रमिदं चिराय ।
न ह्यप्रियं कश्चन जातु किंचित्पश्येत दुःखं मनुजाधिपेऽस्मिन् ॥४२॥
सुघोषवद्भिश्च हयैस्समाराथिः पुरःस्थितैरार्थिकसूतमागधैः ।
महीयमानः प्रवरैश्च वादकैरभिष्टुतो वैश्रवणो यथा ययौ ॥ ४३ ॥
करेणुमातंगरथाश्वसंकुलं महाजनौघप्रतिपन्नचत्वरम् ।
प्रभूतरत्नं बहुवस्त्रसंचयं ददर्श रामो रुचिरं महापथम् ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे रामानयनं
नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

---

37 म—पितृ । 38 कै—कथाद्दि रामः । म—कथाभिरामाः ।

[अष्टादशः सर्गः]

प्रायादेव च काकुत्स्थः संप्रहृष्टसुहृज्जनः ।
शुश्राव राजमार्गस्थः प्रिया वाचो ऽभ्युदीरिताः ॥ १ ॥
एष राज्ञः प्रसादेन राघवो रघुनन्दनः ।
ह्लादयन् पौरहृदयान्यतुलां प्राप्स्यति श्रियम् ॥ २ ॥
जनस्यास्य महानेष लाभो यद्राघवो बली ।
राज्यं प्राप्स्यति दुर्धर्षः सकोशबलवाहनम् ॥ ३ ॥
सुगृहैरभ्रसंकाशैः[1] पाण्डुरैरुपशोभितम् ।
राजमार्गं ययौ रामो मध्येनागुरुधूपितम् ॥ ४ ॥
उत्तमानां च गंधानां क्षौमपट्टांबरस्य च ।०
चन्दनानां च मुख्यानामगुरूणां च धूपितम् ॥ ५ ॥
आबद्धाभिश्च मुख्याभि र्मणिभिः स्फटिकैरपि ।
शोभमानमसंबाधं नरेन्द्रपथमुत्तमम् ॥ ६ ॥
संवृतं विविधैः पण्यै[2] र्भक्ष्यैरुच्चावचैस्तथा[3] ।
ददर्श तं राजमार्गं दिव्यं राजसुतस्तथा ॥ ७ ॥
आशीर्वादान् बहून् शृण्वन् सुहृद्भिः समुदीरितान् ।
यथार्हं तांश्च संपूज्य सर्वानेव नरान् ययौ ॥ ८ ॥
पितामहैराचरितं तथैव प्रपितामहैः ।
अद्य[4] संप्राप्य तं मार्गमभिषिक्तोऽनुपालय ॥ ९ ॥
यथा स्म लालिताः पित्रा यथा सर्वैः पितामहैः ।

---

1 म, ल—स्वगृ० । ०म—त्यक्तम् । 2 म, ल—पुण्यै । 3 म—० वचैरपि । 4 कै—अभ्य- ।

ततः सुखतरं सर्वे वत्स्यामस्त्वयि राजनि ॥ १० ॥
अलमद्याभियुक्तेन परमार्थैरलं च नः ।
साधु पश्याम निर्यातं रामं राज्ये प्रतिष्ठितम् ॥ ११ ॥
अतो हि नः प्रियतरं नान्यत् किंचिद् भविष्यति ।
रामाभिषेकादन्यत्र जीवितादपि च प्रियम् ॥ १२ ॥
एताश्चान्याश्च सुहृदामुदासीनकथाः शुभाः ।
आत्मसंपूजिनीः शृण्वन् ययौ रामो-महारथः ॥ १३ ॥
न हि तस्मान्मनः कश्चिच्चक्षुषी वा नरोत्तमात् ।
नरः शशाक चाक्रष्टुमतिक्रान्तेऽपि राघवे ॥ १४ ॥
न पश्यति च यो रामं न वा दृश्येत तेन यः ।
स निन्दितमिवात्मानमवमेने जनस्तदा ॥ १५ ॥
सर्वेष्वेव च धर्म्मात्मा वर्णेष्वासीद्दयापरः ।
आत्मनो विषयस्थेषु तेन ते तमनुव्रताः ॥ १६ ॥
स राजकुलमासाद्य वृतं मेघोपमैः शुभैः ।
प्रासादशृंगैर्विविधैः कैलासशिखरप्रभैः ॥ १७ ॥
आवारयद्भिर्गगनं विमानैरिव पाण्डुरैः ।
वर्धमानगृहैश्चैव हेमलाजपरिष्कृतैः[5] ॥ १८ ॥
तत्पृथिव्यां गृहं श्रेष्ठं महेन्द्रसदनोपमम् ।
राजपुत्रः पितुः शुभ्रं प्रविवेश गृहोत्तमम् ॥ १९ ॥

---

5 कै—हेमलाज० इति पूर्वं लिखितं पश्चाद् विभिन्नमस्यां "हेमलैाज" (="हेमजाल") इत्याङ्कितम् ।

AN APPEAL FROM THE GENERAL EDITOR OF THE SERIES.

The D.A.V. College Sanskrit series has already placed six important works before the public. This is the first fasciculus of the seventh. It is a huge work and unattempted before. We have taken our best care to entrust it to a scholar who has spent over six years in studying the various recensions of the Rāmāyaṇa under Dr. A. Venis and Principal A. C. Woolner, and who officiated as a University Professor in the University of the Panjab, Lahore. Moreover the fine collection of the Rāmāyaṇa MSS. of our Library, which is increasing everyday, is costing us a good deal. Thus a large sum of money is needed, to bring the work to a successful ending. Will generous readers help us with money, and ask their friends to buy our publications.

दयानन्द महाविद्यालय संस्कृत-ग्रन्थमाला ।

१—अथर्ववेदीया पञ्चपटलिका	१॥)
२—ऋग्वेद पर व्याख्यान	१)
३—जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मणम्	२॥)
४—दन्त्योष्ठविधिः	॥)
५—अथर्ववेदीया माण्डूकी शिक्षा	१)
६—अथर्ववेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणिका	४)

यन्त्रस्थ

१—काठकगृह्यसूत्रम् with extracts from three com. Ed. by Dr. W. Caland.

२—रामायणम् अयोध्याकाण्डम्, Fasc II. सं० पं० रामलभाय

३—वैदिक कोषः, सम्पादक श्री हंसराज पुस्तकाध्यक्ष ।

४—चारायणीय शाखा मन्त्रार्षाध्यायः । सम्पादक भगवद्दत्त

५—रामायणम् बालकाण्डम् । संपादक पं० रामलभाया एम० ए०

BHAGAVAD DATTA,

Supdt. Research Dept. *D. A. V. College, Lahore*

॥ दयानन्द महाविद्यालय संस्कृत ग्रन्थमाला, सं० ७ ॥

* ओ३म् *

वाल्मीकीय-रामायणम्

अयोध्या-काण्डम्

(पश्चिमोत्तरशाखीयम्)

THE RAMAYANA

OF

VALMIKI

(NORTH-WESTERN RECENSION)

CRITICALLY EDITED FOR THE FIRST TIME
FROM ORIGINAL MSS.

BY

PANDIT RAM LABHAYA M. A.
SOMETIME RESEARCH SCHOLAR AND PROFESSOR
IN SANSKRIT, UNIVERSITY OF THE PANJAB,
LAHORE.

AYODHYA KANDA. FASC. II.

PUBLISHED BY THE RESEARCH DEPARTMENT
D. A. V. COLLEGE, LAHORE.

Printed by Lalji Dass, Manager Hindi Press, Lahore.
JUNE 1923.

First Edition
1000 Copies. | आषाढ़ १९८० | Price 1—8—0

स कक्ष्यां धन्विभिर्गुप्तां प्रविवेश तुरंगमैः ।
पदातिरपरे कक्ष्ये द्वे जगाम नृपात्मजः ॥ २० ॥
स सर्वाः समतिक्रम्य कक्ष्या दशरथात्मजः ।
सन्निवार्य जनं सर्वं शुद्धान्तःपुरमभ्यगात् ॥ २१ ॥
ततः प्रविष्टे पितुरन्तिकं तदा जनः स सर्वो मुमुदे नृपात्मजे ।
प्रतीक्षमाणः पुनरस्य निर्गमं यथोदयं चन्द्रमसः सरित्पतिः॥२२॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे रामोपयानं
नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥



[एकोनविंशः सर्गः]

स ददर्शासने रामो निषण्णं पितरं तु तम् ।
कैकेयीसहितं दीनं मुखेन[1] परिशुष्यता ॥ १ ॥
स पितुश्चरणौ पूर्वमभिवाद्य विनीतवत्[2] ।
ततो ववन्दे चरणौ कैकेय्याः सुसमाहितः[3] ॥ २ ॥
सौमित्रिरपरिश्रान्तः पितुः पादावनन्तरम् ।
ववन्दे परमप्रीतः कैकेय्याश्च तदा पुनः ॥ ३ ॥
अभ्यागतं प्राञ्जलिं तं रामं दृष्ट्वा नराधिपः ।
न शशाकाप्रियं वक्तुं समीपस्थमरिन्दमम् ॥ ४ ॥
रामेत्युक्त्वा च वचनं बाष्पपर्याकुलेक्षणः ।
न शक्तो नृपतिर्दीनः प्रेक्षितुं नाभिभाषितुम् ॥ ५ ॥
तदपूर्वं नरपते दृष्ट्वा रूपं भयावहम् ।
रामोऽपि भयमापन्नो यथा स्पृष्ट्वेव* पन्नगम् ॥ ६ ॥
इन्द्रियैरप्रहृष्टैस्तं शोकसन्तापकर्षितम् ।
निःश्वसन्तं महाराजं व्यथिताकुलचेतसम् ॥ ७ ॥
ऊर्मिमालापरिक्षिप्तं क्षुभ्यमाणमिवार्णवम् ।
उपप्लुतमिवादित्यमुक्तानृतमृषिं यथा ॥ ८ ॥
अचिन्त्यकल्पं हि पितुस्तं शोकमवधारयन् ।
बभूव संरब्धतरः समुद्र इव पर्वणि ॥ ९ ॥
चिन्तयामास च तदा रामः पितृहिते[4] रतः ।

---

1 म, ल—मुखेन । 2 कै, म—०वान् । 3 ल—सममाहितः । * (स्पृष्ट्वैव)
4 ल—प्रियहिते ।

किंस्विदद्यैव नृपति र्न मां प्रेक्ष्याभिनन्दति ॥ १० ॥
तस्य मामद्य संप्रेक्ष्य किमायासः प्रवर्तते ।
ततस्तु पितुरप्रीत्या व्यथितः पितृवत्सलः ॥ ११ ॥
चिन्तयामास धर्मात्मा रामस्तद्बहुधा पितुः ।
स दीन इव शोकार्तो विवर्णवदनद्युतिः ॥ १२ ॥
कैकेयीमभिवाद्यैवं रामो वचनमब्रवीत् ।
देवि किं नु मयाऽज्ञानादपराद्धं महीपतेः ॥ १३ ॥
विवर्णवदनो दीनो न हि मामभिभाषते ।
शारीरो मानसो वाऽपि कश्चिद्देवि न बाधते ॥ १४ ॥
सन्तापो वाऽनुतापो वा दुर्लभं हि सदा सुखम् ।
कच्चिन्नु[5] किञ्चिद्भरते[6] कुमारे प्रियदर्शने ॥ १५ ॥
शत्रुघ्ने वाप्यकुशलं देवि मातृषु वा पुनः ।
कच्चिन्मया नापकृतमज्ञानादेव मे पिता ॥ १६ ॥
कुपितस्तत्त्वमाचक्ष्व त्वं चैवैनं प्रसादय ।
अतोषयित्वा राजानमकृत्वा च पितुर्वचः ॥ १७ ॥
मुहूर्तमपि नेच्छेयं जीवितुं कुपिते नृपे ।
यतोमूलं नरः पश्येत् प्रादुर्भावमिहात्मनः ॥ १८ ॥
कथं तस्मिन् न वर्तेत प्रत्यक्षमिव दैवते ।
कच्चिन्न परुषं[7] किञ्चिदभिमानात् पिता मम ॥ १९ ॥
उक्तो भवत्या कोपेन येनास्य लुलितं मनः ।
एतदाचक्ष्व मे देवि तत्त्वेन परिपृच्छतः ॥ २० ॥

---

5 कै, म-कश्चिन्नु । ल-किंश्चिन्नु । 6 म-भरते कच्चि । 7 कै, म, ल-पुरुषं ।

किन्निमितमपूर्वो ऽयं विकारो मनुजाधिपे ।
एवमुक्ता तु कैकेयी राघवेण महात्मना ॥ २१ ॥
अकृतार्थमना देवी भावं रामस्य वीक्ष्य तम् ।
वीतचिन्ता प्रहृष्टा च रामं वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥
राजा न कुपितो राम व्यसनं न च किञ्चन ।
किंचिन्मनोगतं त्वस्य त्वद्भयान्न च भाषते ॥ २३ ॥
प्रियत्वादप्रियं वक्तुं नास्य वाणी प्रवर्तते ।
यच्चावश्यं त्वया कार्यं यच्चानेन प्रतिश्रुतम् ॥ २४ ॥
एष मह्यं वरं दत्त्वा त्वदर्थमाभिमृश्य च ।
पश्चात्सन्तप्यते राजा यथाऽन्यः प्राकृतस्तथा ॥ २५ ॥
आतिसृज्य[४] ददानीति वरं मह्यं विशांपतिः ।
स निरर्थं गतजले सेतुबंधनमिच्छाति ॥ २६ ॥
त्वत्कृते न त्यजेद्राजा यथा सत्यं तथा कुरु ।
यदयं वक्ष्यति नृपः शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ २७ ॥
तत्करिष्यसि चेत्सर्वमाख्यास्यामि ततस्त्वहम् ।
यदा त्वभिहितं राज्ञा राम सम्पादयिष्यसि ॥ २८ ॥
ततो ऽहमभिधास्यामि न ह्येष त्वां प्रवक्ष्यति ।
एतत्तु वचनं श्रुत्वा कैकेय्या समुदाहृतम् ॥ २९ ॥
उवाच व्यथितो रामस्तां देवीं नृपसन्निधौ ।
अहो धिङ्नार्हसीदं मां वक्तुं देवीदृशं वचः ॥ ३० ॥

---

४ म—अभिसृज्य ।

अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावकम् ।
भक्षयेयं विषं वापि मज्जेयमपि वा जले ॥ ३१ ॥
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च ।
तद् ब्रूहि वचनं देवि यद्राज्ञः[9] प्रसमीहितम्[10] ॥ ३२ ॥
प्रतिज्ञातं करिष्ये च रामो ऽसत्यं न भाषते ।
तमार्जवसमायुक्तमनार्या सत्यवादिनम् ॥ ३३ ॥
उवाच रामं कैकेयी मन्थरावाक्यमोहिता ।
पुरा देवासुरे युद्धे पित्रा ते मम राघव ॥ ३४ ॥
रक्षितेन वरौ दत्तौ सशल्येन महारणे ।
द्वौ वरौ याचितो राजा भरतस्याभिषेचनम् ॥ ३५ ॥
दण्डकारण्यगमनं भवतो ऽद्यैव राघव ।
यदि सत्यप्रतिज्ञं त्वं पितरं कर्तुमिच्छसि ॥ ३६ ॥
आत्मानं च नरश्रेष्ठ मम वाक्यमिदं शृणु ।
सन्निदेशः पितुस्ते ऽयं प्रतिज्ञातं ह्यनेन[11] मे ॥ ३७ ॥
त्वया त्वरण्ये वस्तव्यं नव वर्षाणि पञ्च च ।
भरतश्चाभिषिच्येत यदेतदभिषेचनम् ॥ ३८ ॥
त्वदर्थं विहितं राज्ञा तेन सर्वेण राघव ।
सप्त सप्त च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः ॥ ३९ ॥
अभिषेकमिमं[12] त्यक्त्वा जटाचीरधरो भव ।
भरतः कोशलपुरे[13] प्रशास्तु वसुधामिमाम् ॥ ४० ॥

9 म-राज्ञा । 10 कै-प्रसमीक्षिताम् । म-प्रसमीक्षितं । 11 कै—ह्यतेन ।
12 ळ—०मिदं । 13 कै, ळ, म—कोसल० ।

नानारत्नसमाकीर्णां सवाजिरथकुञ्जराम् ।
एवं ते पितुरादेशः कृतो राम भविष्यति ॥ ४१ ॥
स तु तद्वचनं श्रुत्वा कैकेय्या समुदाहृतम् ।
प्रहस्यानन्तरं वाक्यमुवाच रघुनन्दनः ॥ ४२ ॥
देव्येवमस्तु वत्स्यामि नव वर्षाणि पञ्च च ।
जटाचीरधरोऽरण्ये प्रतिज्ञां पालयन् पितुः ॥ ४३ ॥
इदं तु ज्ञातुमिच्छामि किमर्थं नाभिभाषते ।
महीपति मां दुर्धर्षो यथापूर्वमरिन्दमः ॥ ४४ ॥
मन्युर्नात्र त्वया कार्यो ब्रवीम्येष तवाग्रतः ।
यास्यामि भव सुप्रीता वनं चीरजटाधरः ॥ ४५ ॥
हितेन गुरुणा पित्रा कृतज्ञेन नृपेण च ।
नियुज्यमानो विस्रब्धं किं न कुर्यामहं प्रियम् ॥ ४६ ॥
व्यलीकं मानसं त्वेकं हृदयं दहतीव मे ।
स्वयं मां नाह यद्राजा भरतस्याभिषेचनम् ॥ ४७ ॥
यद् ब्रूते न महाराजा मम चैव प्रवासनम् ।
अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान् धनानि च ॥ ४८ ॥
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताय* प्रणोदतः ।
किं पुनर्मनुजेन्द्रेण स्वयं पित्रा प्रणोदितः ॥ ४९ ॥
देव्याश्च प्रियमाकांक्षन् प्रतिज्ञामनुपालयन् ।
तदाश्वासय मां देवि किं न्विदं[14] यन्महीपतिः ॥ ५० ॥

---

* भरतायाप्रणोदितः इति साधु 14 कै—०त्विदं ।

वसुधाऽऽसक्तनयनो[15] भृशमश्रूणि[16] मुञ्चति ।
गच्छन्तु चैवानयितुं दूताः शीघ्रजवैर्हयैः ॥ ५१ ॥
भरतं मातुलगृहादद्यैव नृपशासनात् ।
आनीयतां[17] महाभागे[18] राज्ये चैवाभिषिच्यताम्[19] ॥ ५२ ॥
दण्डकारण्यमेषो ऽहमितो गच्छामि सत्वरः ।
अविचार्य पितुर्वाक्यं समा वस्तुं चतुर्दश ॥ ५३ ॥
संहृष्टा तस्य तद्वाक्यं कैकेयी सन्निशम्य ह ।
प्रस्थापनं श्रद्दधती त्वरयामास राघवम् ॥ ५४ ॥
एवं भवतु यास्यन्ति दूताः शीघ्रजवैर्हयैः ।
भरतं मातुलकुलादुपावर्तयितुं वृताः[20] ॥ ५५ ॥
नैव त्वहं क्षमं मन्ये औत्सुक्याद्धि विलंवनम्[21] ।
राम तस्मादितः क्षिप्रं वनं त्वं गन्तुमर्हसि ॥ ५६ ॥
व्रीडान्वितः स्वयं यच्च[22] नृपस्त्वां नाभिभाषते ।
मा च[23] ते संशयो ऽस्त्वन्यो मा मन्युं कुरु राघव ॥ ५७ ॥
यावत्त्वं न वनं यातः पुरादस्मादपि त्वरन् ।
तावन् न ते पिता राम स्वास्थ्यं[24] प्राप्नोति[25] दुःखितः ॥५८॥
निमीलितेक्षणो राजा श्रुत्वैतद्दारुणं वचः ।
कैकेय्यां शङ्कमानायां लुब्धायां रामनिश्चयम् ॥ ५९ ॥

---

15 ल—वसुधामंथ० । 16 कै, ल, म—०मस्रूणि । 17 कै, म—आनीयतं । 18 म—०भाग्ये । 19 म—०तम् । 20 म—वृतम् । 21 म—विडम्बनां । 22 कै, ल, म—यश्च । 23 कै—यं । 24 म—स्वस्त्यं । ल—स्वात्स्थं (?) । 25 म—व्रजति ।

सुदीर्घं हा हतो ऽस्मीति वाक्यमुक्त्वा सुदुःखितः ।
मूर्च्छामुपागमद् भूयः शोकबाष्पपरिप्लुतः ॥ ६० ॥
मूर्च्छितश्चापतत्तस्मिन् पर्यङ्के हेमभूषिते ।
अथ रामो ऽपि दुर्धर्षः कैकेय्याऽभिप्रणोदितः ॥ ६१ ॥
कशयेवाहतः वाजी वनं गन्तुं कृतत्वरः ।
तदप्रियमविश्रान्तो वचनं मरणोपमम् ॥ ६२ ॥
श्रुत्वाऽप्यव्यथितो रामः कैकेयी मिदमब्रवीत् ।
नाहमर्थपरो देवि लोकानावस्तुमुत्सहे ॥ ६३ ।
विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं केवलं धर्ममास्थितम् ।
यदत्र भवतां किञ्चिच्छक्यं कर्तुं प्रियं मया ॥ ६४ ॥
प्राणानपि परित्यज्य सर्वथा कृतमेव तत् ।
न ह्यतो धर्मचरणादन्यदस्त्यधिकं भुवि ॥ ६५ ॥
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया ।
अनुक्तो ऽप्यत्र गुरुणा भवत्या वचनादहम् ॥ ६६ ॥
वने वत्स्यामि विजने नव वर्षाणि पञ्च च ।
नूनं त्वमपि कल्याणि संभावयसि किञ्चन ॥ ६७ ॥
यत्त्वया भरतस्यार्थे राजा विज्ञापितः स्वयम् ।
इष्टान् भोगान् प्रियान् दारानपि वा जीवितं प्रियम् ॥६८॥
तवैव वचनाद्द्यां भरताय महात्मने ।
राजानं दुःखितं कृत्वा पुत्रार्थं राज्यलुब्धया ॥ ६९ ॥
अम्ब किं नाम संप्राप्तं त्वया फलमभीप्सितम् ।
अहं मातरमापृच्छ्य वैदेहीं प्रविहाय च ॥ ७० ॥

अद्यैव वनवासाय गच्छामि सुखिनी भव ।
भरतः पालयन् राज्यं शुश्रूषेत यथा नृपम् ॥ ७१ ॥
तथा भवत्या कर्तव्यमेष धर्मः सनातनः ।
इति रामवचः श्रुत्वा शोकवाष्पपरिप्लुतः ॥ ७२ ॥
ईषत्ससंज्ञो नृपति भूयो मोहमुपागमत् ।
श्रुत्वा चैवाप्रियाख्यानं राममातुस्तदप्रियम् ॥ ७३ ॥
अन्तःपुरचरा नार्यः प्रद्वेषभयशङ्किताः ।
अतो नाभ्यागमंस्तत्र कौशल्यायै निवेदितुम् ॥ ७४ ॥
निपीड्य चरणौ रामो विसंज्ञस्य महीपतेः ।
कैकेय्याश्चापि धर्मात्मा निर्जगाम महाद्युतिः ॥ ७५ ॥
तं वाष्पपरिरुद्धाक्षो लक्ष्मणो पृष्ठतोऽन्वगात् ।
लक्ष्मणः परमक्रुद्धः सुमित्राकुलनन्दनः ॥ ७६ ॥
गमने च मतिं चक्रे वनवासाय चैव हि ।
आभिषेचनिकं भाण्डं कृत्वा रामः प्रदक्षिणम् ॥ ७७ ॥
शनैर्जगाम साक्षेपो[26] दृष्टिं तत्राविधारयन् ।
स रामः पितरं कृत्वा कैकेयीं च प्रदक्षिणम् ॥ ७८ ॥
निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात्तं ददर्श सुहृज्जनम् ।
दृष्ट्वा च सस्मितमुखः प्रतिपूज्य यथार्हतः ॥ ७९ ॥
जगाम त्वरितं द्रष्टुं मातरं स्वं निवेशनम् ।
दुःखमन्तर्गतं तस्य न कश्चिद्बुबुधे जनः ॥ ८० ॥

---

26 म—सोपेक्षो ।

लक्ष्मणं वर्जयित्वैकं धृतिसंयतचेतसम् ।
न ह्यस्य राजलक्ष्मीं तां राज्यनाशोऽपकर्षति ॥ ८१ ॥
लोककान्तस्य कान्तत्वाच्छीतरश्मेरिव क्षयः ।
न चापि घनसंपूर्णां त्यजतोऽस्य वसुन्धराम् ॥ ८२ ॥
यतेरिव विमुक्तस्य लक्ष्यते चित्तविक्रिया ।
धारयन् मनसा दुःखमिन्द्रियाणि नियम्य च ॥ ८३ ॥
जगाम चात्मवान् वेश्म मातुरप्रियशंसकः ।
तथैव रामः स्वजनं समागमे प्रहर्षयन् हृष्टमना रघूद्वहः ।
जगाम तामर्थविपत्तिमात्मनो विचिन्तयन्मातुरथो निवेशनम् ।८४।

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे वनवासप्रतिज्ञानाम
एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

[विंशः सर्गः]

रामो ऽथ दुःखसन्तप्तः श्वसन्निव भुजङ्गमः ।
जगाम सहितो भ्रात्रा कौशल्याया निवेशनम् ॥ १ ॥
सो ऽपश्यत् पुरुषांस्तत्र वृद्धान् बन्धुवरांस्तथा[1] ।
स्वस्थान् विनयसम्पन्नान् धिष्ठितान्[2] पितुराज्ञया ॥ २ ॥
तैः कृताञ्जलिभिस्तत्र विवेशाप्रतिवारितः ।
प्रथमां राघवः कक्ष्यां मातरं द्रष्टुमातुरः[3] ॥ ३ ॥
प्रविश्य प्रथमां कक्ष्यां द्वितीयायां ददर्श सः ।
ब्राह्मणान् वेदविदुषो वृद्धान् राजपुरस्कृतान् ॥ ४ ॥
विवेश मातुर्भवनं रामस्त्वरितमानसः ।
कौशल्याऽपि तदा देवी परं नियममास्थिता ॥ ५ ॥
अकरोत् प्रयता पूजां देवानां नियतव्रता ।
आशंसन्ती च पुत्रस्य यौवराज्याभिषेचनम् ॥ ६ ॥
सा शुक्लाम्बरसंवीता तत्पराऽनन्यमानसा ।
प्रविश्य चैव त्वरितो रामो मातुर्निवेशनम् ॥ ७ ॥
ददर्श मातरं तत्र देवागारे यतव्रताम् ।
कृताञ्जलिपुटां चैव स्थितां मङ्गलवादिनीम् ॥ ८ ॥
अर्चयन्तीं पितॄंश्चैव देवांश्चानन्यमानसाम् ।
तामवेक्ष्य ततो रामो ववन्दे विनयात् ततः ॥ ९ ॥
उवाच चैनामभ्येत्य रामोऽहमिति नन्दयन् ।

---

1 म-वृद्धवंधावरांस्तथा । 2 म, ल-विष्ठितान् । 3 कै, ल-द्रष्टुमातुरः । म—दृष्टमातरः ।

साऽथ दृष्ट्वैव तनयं मातृनन्दनमागतम् ॥ १० ॥
अभ्यनन्दत वात्सल्याद् वत्सं गौरिव वत्सला ।
स मात्रा समभिप्रेत्य परिष्वज्याभिनन्दितः ॥ ११ ॥
पूजयामास तां देवीमदितिं मघवानिव ।
तमुवाच ततो हृष्टा कौशल्या प्रियमात्मजम् ॥ १२ ॥
अपूजयन्ती पुत्रस्य शिववृद्ध्यर्थमाशिषः ।
वृद्धानां पुत्र सर्वेषां राजर्षीणां महात्मनाम् ॥ १३ ॥
आप्नुह्यायुश्च कीर्तिं धर्मं च स्वकुलोचितम् ।
पित्रा निसृष्टामतुलामव्ययां श्रियमाप्नुहि ॥ १४ ॥
हतामित्रः श्रियायुक्तः पितॄन् नन्दय पुत्रक ।
सत्यप्रतिज्ञं पितरं पश्य राघव मा चिरम् ॥ १५ ॥
अद्य हि त्वां पिता राम यौवराज्येऽभिषेक्ष्यति ।
एवं ब्रुवाणां कौशल्यां रामो वचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥
कैकेयीवाक्यसन्तप्त ईषद्व्याकुलचेतनः ।
अम्ब न त्वं प्रजानासि महद्भयमुपागतम् ॥ १७ ॥
तव दुःखाय महते वैदेह्या लक्ष्मणस्य च ।
कैकेय्या भरतस्यार्थे राज्यं राजाऽभियाचितः ॥ १८ ॥
सत्येन परिगृह्यादौ तेन चास्यै प्रतिश्रुतम् ।
भरताय महाराजो यौवराज्यं प्रदास्यति ॥ १९ ॥
मां पुनर्वनवासाय नियोजयति साम्प्रतम् ।
सोऽहं वत्स्यामि वर्षाणि वने देवि चतुर्दश ॥ २० ॥

स्वादूनि हित्वा भोज्यानि फलमूलकृताशनः ।
इति रामवचः श्रुत्वा सा पपात तपस्विनी ॥ २१ ॥
कौशल्या दुःखसन्तप्ता निकृत्ता कदली यथा ।
स तां निपतितां दृष्ट्वा भूमौ मातरमातुराम् ॥ २२ ॥
राम उत्थापयामास दुःखितां गतचेतनाम् ।
उपावृत्योत्थितां दीनां वडवामिव विह्वलाम् ॥ २३ ॥
संमार्ज्य पाणिना रामः पांसुना परिगुण्ठिताम् ।
अथ किञ्चित्समाश्वस्य कौशल्या दुःखमोहिता ॥ २४ ॥
उदीक्ष्य रामं प्रोवाच वाष्पगद्गदया गिरा ।
नैव राम यदि त्वं मे जायेथाः शोकवर्द्धनः ॥ २५ ॥
न चैवाहमिदं दुःखं प्राप्नुयां त्वद्वियोगजम् ।
एकमेव हि बन्ध्याया दुःखं भवति पुत्रक ॥ २६ ॥
अप्रजाऽस्मीति न त्वादृगिष्टापत्यवियोगजम् ।
न प्राप्तपूर्वं कल्याणं मया पतिपरिग्रहात् ॥ २७ ॥
आशंसिताऽस्मि रुचिरं त्वत्तोऽपि प्राप्नुयामिति ।
तदद्य विफलं जातं मम राम विचिन्तितम् ॥ २८ ॥
दुःखानामेव पुत्राहं विहिताऽत्यन्तभागिनी ।
सा बहून्यमनोज्ञानि वाचश्च हृदयच्छिदः ॥ २९ ॥
सहिष्ये न सपत्नीनामवराणां वरा सती ।
इतोऽपि वै दुःखतरं मम राम भविष्यति ॥ ३० ॥
त्वयि सन्निहिते तावादियं मे राम विक्रिया ।
प्रोषिते त्वयि सुव्यक्तं नैव शक्ष्यामि जीवितुम् ॥ ३१ ॥

यदि मां प्रीयते काचित् सम्यङ् न (च ?) परिवर्तते ।
सर्वा एव तु ता द्वेष्टि कैकेयीं वीक्ष्य मत्कृते ॥ ३२ ॥
साऽहं बहून्यनिष्टानि वाचश्च हृदयच्छिदः ।
सहिष्ये खलु कैकेय्यास्त्वयि राम वनं गते ॥ ३३ ॥
तदसह्यमहं दुःखं सोढुं पुत्रक नोत्सहे ।
अद्यैव मरणं मेऽस्तु को वाऽर्थो जीवितेन मे ॥ ३४ ॥
अद्य जातस्य वर्षाणि दश चाष्टौ च तेऽनघ ।
क्षपितानीह कांक्षन्त्या त्वत्तो दुःखपरिक्षयम् ॥ ३५ ॥
नियमैरुपवासैश्च कर्षयन्त्या⁰ कलेवरम⁰ ।
दुःखं संवर्द्धितो राम मया दुःखितया ह्यसि ॥ ⁰३६ ॥
नियमाश्चोपवासाश्च⁰ ये मया त्वत्कृते कृताः ।
त एते विफला जाता वनं संप्रस्थिते त्वयि ॥ ३७ ॥
दुःखौघेन परिक्लिष्टं हृदयं सीदतीव मे ।
दुर्बलं विपरिक्लिष्टं नदीकूलमिवांभसा ॥ ३८ ॥
ममैव नूनं मरणं न विद्यते न चावकाशोऽस्ति ममक्षये* क्वचित् ।
यदन्तकोऽद्यैव न मां प्रधर्षते गृहीतशोकाऽस्मि निगृह्य जीवितम् ३९।
यदि ह्यकाले मरणं स्वयेच्छया लभेयं कश्चिद्गुरुदुःखदुःखिता ।
भवेयमद्यैव सजीविता ध्रुवं सुदुःखिता राम विनाकृता त्वया ।४०।
दृढं च नूनं हृदयं सुमहतं ममायसं यच्छतधा न दीर्यते ।
त्वयैवमुक्ते च तदा मृता ह्यहं ध्रुवं हि मृत्युर्मम नैव विद्यते ॥४१॥

---

* (यमक्षये ?) । 1 म—दृढं ।

इदं तु ते दुःखमतीव यन्मया सुदुष्करं दुःखमनर्थकं तु* यः* ।
प्रसादिता ये च कृताशया मया निरर्थकं पुत्र हृदि प्रहर्षती ॥४२॥
भृशमसुखमवाप्य तत्तु सा नृपमहिषी विललाप दुःखिता ।
व्यसनिनामिव वीक्ष्य राघवं सुतमिव बद्धमवेक्ष्य केसरी ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे कौशल्याविलापो
नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

* म—तुया (तपः ?) । 5 म—किंकरी ।

[एकविंशः सर्गः]

पुनरेव सुदुःखार्ता कौशल्या राममब्रवीत् ।
न श्रोतव्यं त्वया राम पितुः कामव्रतो वचः ॥ १ ॥
इहैव वस किं तेऽसौ राजा वृद्धः करिष्यति ।
न गन्तव्यं त्वया वत्स जीवन्तीं मां यदीच्छसि ॥ २ ॥
तथा तामातुरां दृष्ट्वा कौशल्यां राममातरम् ।
उवाच लक्ष्मणः श्रीमांस्तत्कालसदृशं वचः ॥ ३ ॥
न रोचते ममाप्येतद् यदार्ये राघवो वनम् ।
त्यक्त्वा राज्यश्रियं गच्छेद् वृद्धवाक्यवशं गतः ॥ ४ ॥
विपरीतश्च वृद्धश्च विषयैश्च प्रधर्षितः ।
नृपः किमिव न ब्रूयाद् बोध्यमानः समन्मथः ॥ ५ ॥
देवसत्त्वं मृदुं शान्तं[1] रिपूणामपि वत्सलम् ।
अवेक्षमाणः को धर्मं त्यजेत्पुत्रमकारणम् ॥ ६ ॥
पुनर्बालस्य वृद्धस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ।
कः कुर्याद्वचनं तस्य राजधर्मार्थविद्बुधः ॥ ७ ॥
यावदेव न जानाति कश्चिदर्थमिमं नरः ।
तावदेव मया सार्द्धमात्मस्थं[2] कुरु शासनम् ॥ ८ ॥
भृत्ये ते मयि पार्श्वस्थे राज्यकार्यार्थमुद्यते[3] ।
यौवराज्याभिषेकस्य विघातं कः करिष्यति ॥ ९ ॥
निर्मनुष्यामयोध्यां हि कुर्यां राम शितैः शरैः ।

---

1 म—दान्तं । 2 कै, ल, म—सार्धं० । 3 कै—०मुच्यते । ल, म—०मुद्यमे ।

यौवराज्ये विघातं ते कः कुर्वीत नृपाज्ञया ॥ १० ॥
भरतस्यापि वा पक्षं यो गृह्णीयादचेतनः ।
तं पापमहमद्यैव प्रेषयामि यमक्षयम् ॥ ११ ॥
नायमव्यक्तिकालस्ते तेजो दर्शय राघव ।
क्षमी ह्येकरसो राम लोकेन परिभूयते ॥ १२ ॥
कैकेय्या नियतं राजा भेदितो ऽद्य भविष्यति ।
त्वया तस्य विभिन्नस्य श्रोतव्यं न कथञ्चन ॥ १३ ॥
कं च धर्मं समाश्रित्य त्वामसौ त्यक्तुमिच्छति ।
विग्रहो ऽयं कृतो ऽनेन त्वया सह मयैव च ॥ १४ ॥
कस्य शक्तिः श्रियं दातुं भरताय बलादिव ।
प्रविविक्षति रामोऽयं यदि दीप्तं हुताशनम् ॥ १५ ॥
पूर्वमेव ततो देवि प्रविष्टं मोपधारय ।
सर्वभावानुरक्तोऽस्मि रामं भ्रातरमग्रजम् ॥ १६ ॥
न्यायवृत्तेन सत्येन पादौ चैवालभे तव ।
अद्य पश्यन्तु मे वीर्यं सर्वशो युधि मानवाः ॥ १७ ॥
रामाज्ञया दुःखशल्यमहमद्योद्धरामि ते ।
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य महात्मनः ॥ १८ ॥
उवाच रामं कौशल्या दुःखशोकपरिप्लुता ।
भ्रातुस्ते वचनं राम श्रुतं भक्तियुतं[4] हितम् ॥ १९ ॥
एतदेव विमृश्याशु क्रियतां यदि रोचते ।

---

4 ल—०युक्तं ।

न मे सपत्न्या वचनाद् वनं गन्तुमितोऽर्हसि ॥ २० ॥
शोकपावकसन्तप्तां मां विमुच्यारिधर्षण ।
धर्मं च यदि धर्मात्मन् पुराणमनुवर्तसे ॥ २१ ॥
शुश्रूषुर्मामिहस्थश्च चर धर्ममनुत्तमम् ।
पुरा मातुर्नियोगाद्धि शक्रः[5] परपुरञ्जय ॥ २२ ॥
भ्रातॄन् जघान सापत्न्याद्राज्यं चापि[6] दिवौकसाम् ।
शुश्रूषुर्जननीं तत्र स्वगृहे नियतो वसन् ॥ २३ ॥
परेण तपसा युक्तः काश्यपस्त्रिदिवं गतः ।
यथैव राजा पूज्यस्ते तथाऽहमपि पुत्रक ॥ २४ ॥
त्वया ममापि वचनान्न गन्तव्यमितो वनम् ।
न चैव त्वाद्विहीनाऽहं जीवेयमिति मे मतिः ॥ २५ ॥
मामुपेक्ष्य च राम त्वं न वनं गन्तुमर्हसि ।
गन्तव्यं यदि चावश्यं मयैव सहितो व्रज ॥ २६ ॥
त्वया सह मम श्रेयस्तृणानामपि भक्षणम् ।
यदि मां सम्परित्यज्य वनं यास्यसि राघव ॥ २७ ॥
ततोऽहं प्रायमासिष्ये न हि शक्ष्यामि जीवितुम् ।
मातृहा निरयं[7] घोरं तेनावाप्स्यासि[8] कल्मषम् ॥ २८ ॥
विलपन्तीं तथा दीनां कौशल्यां शोकमूर्च्छिताम् ।
उवाच रामो धर्मात्मा वचनं धर्मसंहितम् ॥ २९ ॥

---

5 ल—चक्रः । म—शुक्रः । 6 कै, ल, म—चाप । कै कोषे "चापि" इत्येवं पश्चात् संशोधितम् । 7 ल—निमयं । 8 ल—त्वमवाप्स्यासि ।

किमेतद्देवि धर्मज्ञे स्नेहविक्लवया त्वया ।
भाषितं स्मर धर्मं त्वमात्मानं स्वकुलं तथा ॥ ३० ॥
भर्तारं परमोदारं ततो मातः प्रशाधि माम् ।
जानतोऽपि हि मातॄणां दुःखं पुत्रप्रवासजम्[9] ॥ ३१ ॥
नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं प्रतिकूलयितुं मम ।
प्रसादये त्वा शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ॥ ३२ ॥
न खल्वेतन्मयैतेन क्रियते पितृशासनम् ।
अरण्यवासः साधूनां विशेषेण प्रशस्यते ॥ ३३ ॥
इदं च मे कथयतां ब्राह्मणानां परिश्रुतम् ।
पुरा कृतं पितृवचो यदन्यैरपि साधुभिः ॥ ३४ ॥
जामदग्न्येन रामेण जनन्याः किल धीमता ।
शिरश्छिन्नं परशुना क्रुद्धस्य पितुराज्ञया ॥ ३५ ॥
कण्डुना[10] चाऽपि सिद्धेन वनाश्रमनिवासिना ।
महर्षिणा गौर्विशस्ता तथैव पितुराज्ञया ॥ ३६ ॥
अस्माकं पूर्वकैश्चापि खनद्भिः पितुराज्ञया ।०
भूतलं सगरापत्यैर्महासत्त्ववधः कृतः ॥ ३७ ॥
तदेतन्न मयैकेन क्रियते पितृशासनम् ।
प्रायशः पितृभिः सद्भिर्गतो मार्गोऽनुगम्यते ॥ ३८ ॥
करिष्ये वचनं तस्मात्पितुरद्य प्रसीद मे ।
पितुर्हि वचनं कुर्वन्न कश्चिन्न[11] प्रशस्यते ॥ ३९ ॥
इत्युक्त्वा चैव कौशल्यां रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।

---

9 म—०प्रवासनं । 10 म—कातांना । ० कै, ल । 11 ल—किंचिन्न ।

जानामि लक्ष्मणाहं ते भक्तिभावमनुत्तमम् ॥ ४० ॥
मदर्थमपि ते प्राणा अपि जानामि राघव ।
दुःखशल्यमिवाज्ञानात्संघट्टयसि मे पुनः ॥ ४१ ॥
तदेव तावद्दुःखं मे यदसौ मत्कृते नृपः ।
दुःखेन महताऽऽविष्टः शेते मोहमुपागतः ॥ ४२ ॥
कैकेय्या स्त्रीस्वभावेन पातितो धर्मसङ्कटे ।
अहो कृच्छ्रमहो दुःखं तत्पापं कर्तुमिच्छसि ॥ ४३ ॥
धर्मज्ञस्य पितुः कोऽत्र मादृशो राज्यलिप्सया ।
उत्क्रम्य शासनं जीवेत्सर्वलोकविगर्हितः ॥ ४४ ॥
मा भून्स कालः सौमित्रे यदहं शासनं पितुः ।
इच्छेयं समतिक्रम्य मुहूर्त्तमपि जीवितुम् ॥ ४५ ॥
अभिप्रायमविज्ञाय नैवं मां वक्तुमर्हसि ।
साधु लक्ष्मण संशाम्य मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ ४६ ॥
धर्मस्थितिः परो लाभो धर्मो धारयते धृतः ।
न च धर्मो धृतो मेऽन्यः पितुराज्ञामृतेऽनघ ॥ ४७ ॥
करिष्यामीति संश्रुत्य यदहं पितृशासनम् ।
न कुर्यां यदि सौमित्रे सर्वथैव धिगस्तु माम् ॥ ४८ ॥
सोऽहं न शक्ष्यामि पितुर्नियोगमतिवर्तितुम् ।
पितुर्ह्यनुमतं तन्मे कैकेय्या समुदाहृतम् ॥ ४९ ॥
तदेतामुत्सृजानार्यां क्षत्रविद्याऽऽकुलां मतिम् ।
धर्ममाश्रित्य सद्[12]-बुद्धिमनुवर्तितुमर्हसि ॥ ५० ॥

12 कै, ल, म—मद् ।

इत्युक्त्वा वचनं रामो लक्ष्मणं लक्ष्मीवर्द्धनम्।
उवाच भूयः कौशल्यां प्राञ्जलिः शिरसा नतः ॥ ५१ ॥
अनुजानीहि मां देवि करिष्ये शासनं पितुः ।
शापिताऽसि मया प्राणैः पुनरागमनेन च ॥ ५२ ॥
तीर्णप्रतिज्ञः कुशली पादौ द्रक्ष्यामि ते पुनः ।
गच्छेयं त्वदनुज्ञातो निर्व्यलीकेन चेतसा ॥ ५३ ॥
यशो ह्यहं देवि न राज्यकारणात् परित्यजेयं सुकृतेन ते शपे ।
अदीर्घकाले नरलोकजीविते वृणोमि धर्मं न महीमधर्मतः ॥५४॥
प्रसादये त्वां शिरसा यतव्रते प्रसीद मे कर्तुमविघ्नमर्हसि ।
वनं गमिष्यामि नृपाज्ञया ह्यहम् प्रदेह्यनुज्ञां शिरसा नतस्य मे ॥५५॥
प्रसादयन्नरवृषभः स मातरं बहूक्तवान् जिगमिषुरेव दण्डकम्[13] ।
अथात्मजं भृशमति[14]-देविनं तदा चकार सा हृदि जननी पुनः पुनः॥५६

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे कौशल्याऽनुनयो
नाम एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

13 कै, ल—दंडकाम् । 14 म—ऽमपि ।

[द्वाविंशः सर्गः]

इत्युक्त्वा मातरं रामो भूयो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
दृष्ट्वा तथैव सामर्षं निःश्वसन्तमिवोरगम् ॥ १ ॥
यो ऽयं मदभिषेकार्थं तव लक्ष्मण संभ्रमः ।
तमेवार्हसि कर्तुं त्वं मत्प्रस्थाने ससंभ्रमम् ॥ २ ॥
यस्या मदभिषेकार्थं मनो विपरितप्यते[1] ।
माता मे मा यथा भूयः शङ्कते न तथा कुरु ॥ ३ ॥
न बुद्धिपूर्वं नाज्ञानान्मातॄणां मातृनन्दन ।
कृतपूर्वमहं वीरः* स्मरामि क्वचिदप्रियम् ॥ ४ ॥
तस्माच्छङ्काकृतं दुःखं मुहूर्तमपि लक्ष्मण ।
गच्छेन्न वेति मा चाभूच्छङ्का मयि महीपतेः ॥ ०५ ॥
अभिषेकाभिलाषं च मुञ्चेमं मम लक्ष्मण ।०
संप्रत्येवाहमिच्छामि वनं गन्तुमितः पुरात् ॥ ६ ॥
मयि चीराजिनधरे जटामण्डलधारिणि ।
गतेऽरण्यं च कैकेय्या भविष्यति मनःसुखम् ॥ ७ ॥
मयि प्रव्रजिते देवी कृतकृत्यं सुनिर्वृतम् ।
आत्मानमपि जानातु पितुश्चानृण्यमस्तु मे[2] ॥ ८ ॥
एवं मे निश्चिता बुद्धिर्मनश्चैव समाहितम् ।
न विलंबितुमिच्छामि मुहूर्तमपि कर्हिचित् ॥ ९ ॥
कारणं तु कृतान्तोऽत्र सौमित्रे मद्विनिग्रहे ।
यौवराज्याभिषेकस्य तथैवास्य विनिग्रहे ॥ १० ॥

---

1 कै—विपरिवर्तते । *(वीर) Om । 2 ल—ते ।

कैकेयी च प्रकृत्यैव सदा मां प्रति वत्सला ।
सत्यं मत्परिपीडार्थं बलादेव विमोहिता ॥ ११ ॥
तदुक्तं परुषं[3] यच्च तत्कृतान्तकृतं स्मर ।
नित्यं मातृषु मे प्रीतिरविशेषेण लक्ष्मण ॥ १२ ॥
सर्वासामविशेषेण तासामपि तथा मयि ।
अनुक्तपूर्वं कैकेय्या यदुक्तं परुषं रुषा ॥ १३ ॥
कथं प्रकृतिकल्याणी राजर्षिकुलजा सती ।
ब्रूयाद्विप्राकृतस्त्रीव मां तथा पितृसन्निधौ ॥ १४ ॥
दैवस्वभावसंसिद्धिरचिंत्येति च मे मतिः ।
तन्नूनं पतितं मूर्ध्नि मम भाग्यविपर्ययात् ॥ १५ ॥
कश्च दैवेन सौमित्रे योद्धुमुत्सहते सह ।
यस्येह निग्रहोपायः कथंचन[4] न[4] विद्यते ॥ १६ ॥
सुखदुःखभयोद्वेगलाभालाभभवाभवाः ।
नृणां भवन्ति दैवेन न भवन्ति च लक्ष्मण ॥ १७ ॥
अवश्यभावि व्यसनं ममैतदिति पश्यतः ।
व्याहते ऽप्यभिषेके मे परितापो न विद्यते ॥ १८ ॥
तस्मात्त्वमपि मे बुद्धिमनुवर्तितुमर्हसि ।
प्रतिसंचिंतयात्मानं मा च शोके मनः कृथाः ॥ १९ ॥
न लक्ष्मणास्मिन्मम राज्यविघ्ने माता यवीयस्यभिशङ्कनीया ।
न चैव राजाऽत्र विशङ्कनीयो दैवं हि कोऽतिक्रमितुं समर्थः ॥२०॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे लक्ष्मणानुनयो नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

---

3 कै, ल, म—पुरुष । 4 म—न कथचन ।

[त्रयोविंशः सर्गः]

इति ब्रुवति रामे तु लक्ष्मणोऽधोमुखः स्थितः ।
दुःखामर्षपरीतात्मा दध्यौ विप्लुतचेतनः ॥ १ ॥
स बद्ध्वा भ्रुकुटिं रोषाद् भ्रुवोर्मध्ये नरर्षभः ।
निशश्वास महासर्पो बिलस्थ इव रोषितः ॥ २ ॥
रुषितस्य तथा साक्षाद् भ्रुकुटीकुटिलं मुखम् ।
क्रुद्धस्येव मृगेन्द्रस्य विबभौ भूरितेजसः ॥ ३ ॥
विनिर्धूयाग्रहस्तं च प्रभिन्न इव कुञ्जरः ।
तिर्यगूर्ध्वं च संप्रेक्ष्य शिरः संकम्प्य चासकृत् ॥ ४ ॥
खड्गं परिमृषन् रोषाच्छत्रुपक्षविदारणम् ।
संरंभामर्षताम्राक्षस्ततो भ्रातरमब्रवीत् ॥ ५ ॥
अस्थाने संभ्रमो यस्ते जातोऽयं गमनं प्रति ।
धर्मलोपभयाद्देव[1] लोकवादभयेन वा ॥ ६ ॥
कथमीदृगसंभ्रान्तस्त्वद्विधो वक्तुमर्हति ।
क्लीबं वाक्यमशौटीर्यं शौटीरः[2] क्षत्रियान्वयः ॥ ७ ॥
तेजःक्षात्रं समालंब्य[3] भ्रमाद्वक्तुं न चार्हसि ।
क्लीबा हि दैवमेवैकं प्रशसन्ति न पौरुषम् ॥ ८ ॥
प्रतीपमपि शक्नोषि व्यसनायाभ्युपागतम् ।
दैवं पुरुषकारेण प्रतियोद्धुमरिन्दम ॥ ९ ॥
कैकेयीं च नरेन्द्रं च कस्मात्कार्येण शंससि ।

---

1 म—०लोपभयाद्देव । 2 छ, म—शोटीरः । 3 कै, म—समालम्ब्य ।

तयोर्न प्रतिपत्तव्यं तस्मात्पापानुबन्धयोः ॥ १० ॥
धर्मोऽभ्युपायाः सन्त्यन्ये कुशलैः परिचिन्तिताः ।
तैरुपायैरर्थसिद्धैर्माऽनर्थं नेतुमर्हसि ॥ ११ ॥
यदि वाऽर्य स्वयं कर्तुं त्वमेवं न व्यवस्यासि ।
मां नियुंक्ष्व करिष्ये ऽहं वचनं यदनन्तरम् ॥ १२ ॥
लोकविद्विष्टमुत्सृज्य तस्माल्लोकप्रियं कुरु ।
यदर्थं बुद्धिमोहो ऽयमीदृशस्त्वामुपागतः ॥ १३ ॥
सो ऽपि धर्मो मम द्वेष्यो यत्प्रसंगाद्विमुह्यसि ।
लोकस्याप्रियमारब्धं कैकेय्याः केवलं प्रियम् ॥ १४ ॥
एतत् कार्यं नरेन्द्रेण कामतो न तु धर्मतः ।
अतिसृष्ट्वाऽभिषेकं[4] ते पुनः प्रत्यवगृह्णतः ॥ १५ ॥
तत्प्रतीपे कृते ह्यत्र कलुषं[5] नोपपद्यते ।
क्षुद्रायाः पापभावायाः प्रद्विषन्त्या विशेषतः ॥ १६ ॥
कैकेय्या वचनं क्षुद्रं नैव त्वं कर्तुमर्हसि ।
यौवराज्याभिषेके च त्वामुपामन्त्र्य धर्मतः ॥ १७ ॥
कथं नाम स्थितो धर्मे कुर्यात्तदनृतं नृपः ।
पापबुद्धिरियं राज्ञो दैवेनापकृता यदि ॥ १८ ॥
तदाऽप्युपेक्षणीयो ऽर्थो नैव बुद्धिमतां भवेत् ।
विक्लवो हीनवीर्यो यः स दैवमनुवर्तते ॥ १९ ॥
अविक्लवस्तु तेजस्वी न दैवमनुवर्तते ।
दैवं पुरुषकारेण यतते यो ऽतिवर्तितुम् ॥ २० ॥

---

4 ळ—अभि० । 5 म—किलि (ल्वि)षं ।

न स दैवविपन्नार्थः कदाचिदपि सीदति ।
लोकः पश्यतु कृत्स्नोऽद्य दैवपौरुषयोरिदं ॥ २१ ॥
अन्तरं कार्यसंसिद्धौ यद्युत्थातुं त्वमिच्छसि ।
अद्य तत्पौरुषहतं दैवं पश्यन्तु मानवाः ॥ २२ ॥
तव राज्यविघाताय प्रतीपं समुपागतम् ।
निरङ्कुशमिवोद्दामं गजं मदबलोद्धतम् ॥ २३ ॥
प्रतीपमागतं दैवं पौरुषेण निर्वतये ।
लोकपालाः सहेन्द्रेण यौवराज्याभिषेचनम् ॥ २४ ॥
प्रतिहन्तुं न शक्तास्ते किमुतैको नराधिपः ।
यैर्निवासस्तवारण्ये मिथ्या राम समर्थितः ॥ २५ ॥
अहं वित्रासयिष्यामि तानेवाद्य बलान्वितः ।
प्रतीपमागतं दैवं पौरुषेण निवर्तये ।० २६ ॥
प्रतीपमपि दुःखाय तव दैवमुपागतम् ।
प्रमविष्यति राम त्वां मत्पौरुषपराहतम् ॥ २७ ॥
बहुवर्षसहस्रान्तं प्रजापाल्यमनुत्तमम् ।
आर्यपुत्राः करिष्यन्ति वनवासं गते त्वयि ॥ २८ ॥
पूर्वराजर्षिवृत्तेन वनवासो विधीयते ।
पुत्रेष्वन्ते विनिक्षिप्य राज्यं वयसि पश्चिमे ॥ २९ ॥
स त्वं समर्थो धर्मज्ञ धर्मलोपविशङ्कया ।
कैकेय्या वचनाद् धर्म्यं स्वं राज्यं त्यक्तुमिच्छसि ॥ ३० ॥
प्रतिजानामि ते सत्यं मा भूवं वीरशब्दभाक् ।

०त्र ।

यदि प्रतीपं दैवं ते न हरिष्याम्युपागतम्[2] ॥ २१ ॥
फलमेवास्य दैवस्य प्रतीपस्य निवर्तये ।
तवैव तेजसेच्छामि दैवं लोकान्निवर्त्तितुम् ॥ ३२ ॥
अविषह्यतमं लोके विषह्यं केन किंचन ।
त्वदर्थमुत्सहे ह्येकः परिवर्त्तयितुं जगत् ॥ ३३ ॥
मङ्गलैरभिषिच्यस्व तत्र त्वं निर्वृतो भव ।
अलमेको[3] महीपाल महीं पालयितुं बलात् ॥ ३४ ॥
न शोभार्थमिमौ बाहू न धनुर्भूषणाय मे ।
नासिरा बन्धनार्थं मे न शराः[4] स्थाणहेतवः[4] ॥ ३५ ॥
अमित्रदमनार्थं मे सर्वमेतच्चतुष्टयम् ।
न चार्थमाभिकांक्षेयं यशः शत्रुवधो मम ॥ ३६ ॥
असिना तीक्ष्णधारेण विद्युच्चलितवर्चसा ।
प्रगृहीतेन कः शक्तो वज्री वा मत्समो न च ॥ ३७ ॥
खड्गधाराहता मेऽद्य पतन्तु नरराशयः ।
प्रावृट्काले समागम्य विद्युतेव समाहताः । ३८ ॥
खड्गनिष्पेषनिष्पिष्टै गहनास्तदुरास्तथा ।
पत्त्यश्वरथमातंगै मही भवतु सर्वशः ॥ ३९ ॥
बद्धगोधांगुलित्राणे प्रगृहीतशरासने ।
कथं पुरुषकारस्स्यात् पुरुषाणां मयि स्थिते ॥ ४० ॥
अभ्यस्तान् विविधे काले निशितान् रुधिराशनान् ।

ल—हानिष्य० । म—वि[ह]न्यंमुपा० ।
कै, ल—अहमेको महीपालं । 8 म—शरास्तुण० ।

विप्रमोक्ष्याम्यहं बाणान् नृवाजिगजमर्मसु ॥ ४१ ॥
अद्य मे सुप्रभावस्य प्रभावः प्रभविष्यति ।
राज्ञश्चाप्रभुतां कर्तुं प्रभुत्वं च तव प्रभो ॥ ४२ ॥
अद्य चन्दनसाराणां केयूराणां धनस्य च ।
वसूनां च विमोक्षस्य सुहृदां पूजनस्य च ॥ ४३ ॥
अभिरूपमिमौ बाहू राजन् कर्म करिष्यतः ।
अभिषेके तु विघ्नस्य शत्रूणां ते निबर्हणम् ॥ ४४ ॥
तद्ब्रूहि को ऽद्यैव वियोज्यतां मया तवासुहृत्प्राणयशः सुहृज्जनैः ।
यथा तवेयं वसुधा वशे भवेत् तथाऽद्य मां शाधि तवास्मि किंकरः॥४५
प्रगृह्य मन्युं परिगृह्य पौरुषं स लक्ष्मणो राममभिप्रसादयन् ।
उवाच भूयोऽपि पितुर्विनिग्रहे यतस्व रामैष विनिश्चयो मम ॥४६॥
इति वचनमुदारसत्त्वयुक्तं तदभिसमीक्ष्य तु लक्ष्मणस्य रामः ।
मधुरतरमुवाच सोऽर्थयुक्तं परिकुपितं पितरं प्रति प्रतीतः ॥ ४७॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे लक्ष्मणसंरंभो
नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

[चतुर्विंशः सर्गः]

भक्त्या रामस्य संरब्धं लक्ष्मणं पितरं प्रति ।
श्लक्ष्णैःसानुनयैर्वाक्यैः शमयामास राघवः ॥ १ ॥
सौमित्रे नैतदाश्चर्यं मद्भक्त्या त्वं[1] यदिच्छसि[1] ।
व्यसनार्णवसंमग्नमुद्धर्त्तुं मां बलादिव ॥ २ ॥
पुण्यशीलस्तु धर्मात्मा सत्यव्रतपरायणः ।
पार्थिवो नानृतः कर्तुं न्याय्यो लोके गुरुर्मया ॥ ३ ॥
सत्यप्रतिज्ञं कृत्वा हि पितरं धर्मवत्सलम् ।
पुण्यां कीर्तिमवाप्स्यामि प्रेत्य चेह च शाश्वतीम् ॥ ४ ॥
यदि त्वस्ति मयि स्नेहो भक्तिर्वा यदि[2] लक्ष्मण ।
ततो निवर्तयैनां त्वं पापां बुद्धिं समुत्थिताम् ॥ ५ ॥
धर्मात्मनः श्रुतवतः कृतज्ञस्य महात्मनः ।
पितुरस्याप्रियं कर्तुं नेच्छामि मनसाऽप्यहम् ॥ ६ ॥
यदीच्छसि प्रियं कर्तुं मम त्वं यदभीप्सितम् ।
इतो[3] मयि गते भक्त्या शुश्रूष्यो नृपतिस्त्वया ॥ ७ ॥
निर्व्यलीकेन मनसा प्रत्यक्षं दैवतं यथा ।
*एतन्मे परमं वाक्यं भक्तितः कर्तुमर्हसि ॥ ८ ॥
*यथा मां प्रति नोत्कण्ठां करोति वसुधाधिपः ।
तथा शुश्रूषयितव्योऽसौ त्वया मयि विनिर्गते ॥ ९ ॥

---

1 म—यतु मिच्छसि । 2 म—तव । 3 म—इते । ल—ततो । *म—नास्ति ।

मातरश्च विशेषेण शुश्रूष्याः सर्वथा त्वया ।
तथा यथा न तप्ययु र्वनवासं गते मयि ॥ १० ॥
भरतश्चापि धर्मात्मा द्रष्टव्यो ऽहमिव त्वया ।
परिपाल्यश्च यत्नेन मम प्रियचिकीर्षुणा ॥ ११ ॥
इमां धर्मधुरं गुर्वीमहं वक्ष्यामि लक्ष्मण ।
भरतेन सहेमां त्वं गुर्वीं राज्यधुरं वह ॥ १२ ॥
इत्युक्तवचनं रामं बभाषे लक्ष्मणस्तदा ।
अप्रकंप्यं स्थितं[1] धर्मे पुरन्दरमिवानुजः ॥ १३ ॥
लोकनाथ गतिर्या ते सा ममापि भविष्यति ।
वने वत्स्याम्यहमपि शुश्रूषानिरतस्तत्र ॥ १४ ॥
त्वया त्यक्तामहमपि परित्यक्ष्ये पुरीमिमाम् ।
त्वद्दते न हि वस्तुं मे स्वर्गे ऽपि रमते मनः ॥ १५ ॥
यद्यस्ति मयि ते स्नेहो भक्तोऽयं वीर मामिति ।
ततो मामनुगच्छन्तं न निवर्तयितुमर्हसि ॥ १६ ॥
वने निवसतस्तेऽहं नानावनविचारिणः ।
आहरिष्यामि स्वादूनि मूलानि च फलानि च ॥ १७ ॥
सहायस्ते भविष्यामि दुर्गेषु विषमेषु च ।
आज्ञाकरस्ते भृत्यो ऽहं भविष्यामि महावने ॥ १८ ॥
सर्वभावानुरक्तं मां न परित्यक्तुमर्हसि ।
पश्य मामार्यपुत्र त्वं पूज्यश्चासि गुरुश्च मे ॥ १९ ॥

1 म—स्थिरं ।

पानीयमाहरिष्यामि पुष्पमूलफलानि च ।
साधयिष्यामि चाहारं वनेषु वसतः प्रभो ॥ २० ॥
अनुजानीहि मामार्य निश्चितं धर्मवत्सलम् ।
अनुगन्तुं कृतमतिं कृतज्ञं शरणागतम् ॥ २१ ॥
न निवर्तयितव्यो ऽहं सर्वथा रघुनन्दन ।
न हि राम त्वया त्यक्तो जीवेयमिति मे मतिः ॥ २२ ॥
न निवर्तयितुं शक्या बुद्धिरेषा मम स्थिरा ।
स भवाननुजानातु ममाप्यागमनं वने ॥ २३ ॥
सो ऽनुनीतो बहुविधं लक्ष्मणेन यशस्विना ।
बाढमित्यब्रवीद्रामो लक्ष्मणं भ्रातृवत्सलम् ॥ २४ ॥
सह यास्यामि सौमित्रे त्वया दुर्गं महद्वनम् ।
भवान् हि मे परो बन्धुः सखा भक्तः प्रियश्च मे ॥ २५ ॥
तथा तु रामं गमने धृतव्रतं समीक्ष्य देवी वचनं भृशातुरा ।
उवाच भूयो हृदयेन[5] तप्यता सुखोचिता दुःखपरिप्लुता भृशम् ।२६

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे लक्ष्मणानुनय-
श्चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

5 कै, ल, म—हृदयेण

[पञ्चविंशः सर्गः]

तं समीक्ष्य व्यवसितं पितुर्वचनपालने ।
कौशल्या[1] वाष्पसन्दिग्धं वचो धर्मिष्ठमब्रवीत् ॥ १ ॥
यदि धर्मं पुरस्कृत्य पुत्र वर्तितुमिच्छसि ।
ततो मद्वचनं धर्म्यं शृणु धर्मभृतां[2] वर ॥ २ ॥
त्वं हि लब्धो मया कृच्छ्रैस्तपोभिर्नियमैस्तथा ।
वचनं मे त्वया कार्यमतः पुत्र विशेषतः ॥ ३ ॥
आशया परया राम शिशुश्च परिपालितः ।
तत्समर्थोऽद्य मां दीनां परिरक्षितुमर्हसि ॥ ४ ॥
पश्याद्य पुत्र मां चाधजीवितेन[3] वियोजिताम् ।
न सकामां सपत्नीं मे कैकेयीं कर्तुमर्हसि ॥ ५ ॥
न चापि परिशक्ताऽहं[4] विप्रकारान् पृथग्विधान् ।
सोढुं सकाशात् कैकय्याः[5] परिभूता विशेषतः ॥ ६ ॥
नित्यकालं सपत्नीभिर्भृशं विप्रकृता सती ।
पुत्रच्छायां समाश्रित्य भवाम्यद्य समाहिता[6] ॥ ७ ॥
साऽहमद्य न शक्ष्यामि जीवितुं शर्वरीमिमाम् ।
फलिनी[7] पादपेनेव फलकाले वियोजिता ॥ ८ ॥
न पुत्रक वचः कार्यं स्त्रीविधेयस्य भूपतेः ।
कामचारप्रवृत्तस्य दुष्कृतेष्वशुचेरिव[8] ॥ ९ ॥

---

1 कै, ल, म—कौसल्या । 2 म—धर्मवृतं । 3 म, ल०—चाद्य०— । 4 म—राम शक्ताहं । 5 कै, म—कैकेय्या । 6 कै—समाहृत्ता । 7 ल—फलता । 8 म, ल—दुष्कृतेषु शुत्रेरिव ।

यो ऽतीत्य धर्मं पौराणमिक्ष्वाकूणां कुलोचितम् ।
त्वामातिक्रम्य भरतमभिषेक्तुमिहेच्छति ॥ १० ॥
अपि चेयं पुरा गीता गाथा सर्वत्र विश्रुता ।
मनुना मानवेन्द्रेण तां श्रुत्वा मे वचः कुरु ॥ ११ ॥
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
कामचारप्रवृत्तस्य न कार्यं ब्रुवतो वचः ॥ १२ ॥
दश विप्रानुपाध्यायो गौरवेणातिरिच्यते ।
उपाध्यायाद्दश[9] पिता गौरवेणातिरिच्यते ॥ १३ ॥
पितॄन् दश च मातैका सर्वां च पृथिवीमपि ।
गौरवेणाभिभवति को ऽस्ति मातृसमो गुरुः ॥ १४ ॥
पतिता गुरवस्त्याज्या न तु माता कदाचन ।
गर्भधारणपोषाभ्यां तेन माता गरीयसी ॥ १५ ॥
साऽहं ते[10] पितृतो राम धर्मतो गौरवाधिका ।
माननीया विशेषेण यथा धर्मविदो विदुः ॥ १६ ॥
अतो ममापि ते कार्यं शासनं गुरुवत्सल ।
अभिषिच्यस्व धर्मेण राज्ये राजीवलोचन ॥ १७ ॥
यदि त्वमेतन्मम भाषितं हितं कुलोचितं सत्पुरुषैर्निषेवितम् ।
यथावदुक्तं न करिष्यसे ततश्चिराय यास्यामि यमक्षयं ततः ॥१८॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे कौशल्यावाक्यं नाम पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

---

9 (उपाध्यायान् दश) । 10 ल—हि ।

[षड्विंशः सर्गः]

अथानुनेतुं चक्रे ऽसौ मातरं यत्नमास्थितः ।
प्रश्रितैर्मधुरैर्वाक्यैर्हेतुमद्भिश्च राघवः ॥ १ ॥
मम चैव भवत्याश्च राजा प्रभवति प्रभुः ।
न प्रभुत्वमतस्ते ऽस्ति मम देवि निवर्तने ॥ २ ॥
दातुमर्हसि मे ऽनुज्ञां देवि धर्मभृतां वरे ।
वनवासाय वर्षाणि नवपञ्च च सुव्रते ॥ ३ ॥
भर्ता हि दैवतं स्त्रीणां भर्ता चेश्वर उच्यते ।
अतस्ते शासनं भर्तुर्न व्याहन्तव्यमेव हि ॥ ४ ॥
पुनरागमनं मे ऽद्य त्वमाशंसितुमर्हसि ।
यतव्रता नित्यमेव भर्तुराराधने रता ॥ ५ ॥
तीर्णप्रतिज्ञ एष्यामि त्वत्प्रसादादहं पुनः ।
अरिष्टं कुशली चैव तस्मात्संशाम्य मा शुचः ॥ ६ ॥
कुले जाताऽसि विस्तीर्णे राज्ञाममिततेजसाम् ।
सद्गुणाख्यातयशसां कोशलानां महात्मनाम् ॥ ७ ॥
कुलशीलसमाचारैर्धर्मिष्ठा नियतव्रता ।
सा कथं शासनं भर्तुरतिवर्तितुमर्हसि ॥ ८ ॥
दैवतं ते गुरुश्चैव भर्ता देवि प्रसीद मे ।
मत्स्नेहान्नार्हसे तस्य मतमुत्क्रम्य वर्तितुम् ॥ ९ ॥
निर्विचारं मया कार्या गुरोराज्ञा महात्मनः ।
श्रेयो ह्येवं भवत्याश्च मम चैव विशेषतः ॥ १० ॥
कार्पण्याद्बालभावाद्वा न कुर्यां चेत्पितुर्वचः ।

ततो ऽहं प्रेषितव्यः स्यां भवत्या विनयज्ञया ॥ ११ ॥
किं पुनर्यस्य मे देवि स्वभावनियता मतिः ।
भूयो विवर्धनीयैव भवत्या विनयज्ञया ॥ १२ ॥O
न ते राजा किंचिदपि वक्तव्यो मदपेक्षया ।
प्रतीपमप्रियं वापि न वक्तव्यः प्रसीद मे ॥ १३ ॥
कैकेयी वा महाभागा भरतो वा महायशाः ।
स्वल्पमप्यप्रियं वाक्यं न वक्तव्यौ प्रसीद मे ॥ १४ ॥O
यथाऽहमेवं द्रष्टव्यो भरतः सर्वदा त्वया ।
कैकेयी भगिनीवच्च[1] द्रष्टव्या सर्वदा त्वया ॥ १५ ॥
विरुध्यन्ते न बलिभि र्बुद्धिमन्तः कथञ्चन ।
बलहीनैरपि तथा विरुध्यन्ते न संहतैः ॥ १६ ॥
तत्कथं सह पित्राऽहं विरुध्येयं महात्मना ।
भ्रात्रा वा भरतेनाद्य भक्तेनानपकारिणा ॥ १७ ॥
धर्मात्मना विनीतेन प्राणेभ्योऽपि प्रियेण च ।
कथं नाम विरुध्येयं सह तेन महात्मना ॥ १८ ॥
पित्रा दत्तं यौवराज्यं भरतो यद्यवाप्स्यति ।
तत्र दोषो ऽस्ति कस्तस्य भरतस्य महात्मनः ॥ १६ ॥
अतिसृष्टं पुरा राज्ञा कैकेयी भर्तृतो वरम् ।
यदि गृह्णाति कस्तस्या दोषस्तत्र ब्रवीहि मे ॥ २० ॥
राजा च प्राक्प्रतिश्रुत्य ददावस्यै यदा वरम् ।
भीतो ऽनृतात्ततो राज्ञः को दोषः सत्यवादिनः ॥ २१ ॥

O ल । 1 म—भगिनीवैषा

व्यक्तमेव परं धर्मं भर्ता ते देवि मन्यते ।
चलेद्धि राजा धर्माच्चेन्न सकामो भविष्यति ॥ २२ ॥
मा त्वं सद्वृत्तकुशला छिन्नधर्मार्थसंशया ।
न धर्मज्ञं नरपतिं दोषतो गन्तुमर्हसि ॥ २३ ॥
प्रसीदानुनयामि त्वां नानुशास्मि कथञ्चन ।
अनुजानीहि मां देवि वनवासाय दीक्षितम् ॥ २४ ॥
एवं स रामो गतवुद्धिभावो वनं प्रवेष्टुं सह लक्ष्मणेन ।
भूयो वचः सानुनयं वभाषे स्वां मातरं धर्मभृतां वरिष्ठः ॥ २५ ॥
यशो ह्यहं केवलराज्यकारणान्न पृष्ठतः कर्तुमलं महोदयम् ।
अदीर्घकाले नरलोकजीविते वृणे बलान्नाद्य महीमधर्मतः ॥ २६ ॥
प्रसादये त्वां शिरसा यतव्रते प्रसीद मे कर्तुमविघ्नमस्तु ते ।
वनं गमिष्याम्यहमाज्ञया पितुः प्रदेह्यनुज्ञां शिरसा नतस्य मे ॥२७॥
प्रसादयन्नरवृषभः स मातरं वहूक्तवान्न्जिगमिषुरेव दण्डकाम् ।
अथात्मजं भृशपरिदेवितं तदा चकार सा हृदि जननी पुनः पुनः २८

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे कौशल्याऽनुनयो-
नाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

[सप्तविंशः सर्गः]

इत्युक्त्वा जननीं रामो धर्मात्माऽनुनयं वचः ।
स्थितां धर्मपरां दीनां पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
त्वया देवि मया चैव स्थेयं नृपतिशासने ।
राजा भर्ता गुरुश्चैव सर्वेषामीश्वरेश्वरः ॥ २ ॥
इमानि तु विहृत्यैव नववर्षाणि पञ्च च ।
वने पुनरुपावृत्तः स्थास्यामि वचने तव ॥ ३ ॥
इत्युक्ता सा प्रियं पुत्रं वाष्पपर्याकुलं वचः ।
उवाचेदं सपत्नीनां वस्तुं मध्ये न मे क्षमम् ॥ ४ ॥
नय मामपि पुत्र त्वं वनं वन्यमृगाकुलम् ।
यदि ते गमने बुद्धिः कृता पितुरवेक्षया ॥ ५ ॥
तां तथा ब्रुवतीं रामः पुनर्वचनमब्रवीत् ।
जीवत्पत्न्याः स्त्रिया भर्त्ता दैवतं परमं स्मृतः ॥ ६ ॥
भवत्या मम चैवाद्य राजा प्रभवति प्रभुः ।
अतो नार्हाम्यहं नेतुं त्वामितो नगराद्वनम् ॥ ७ ॥
न चानुगन्तुं न्याय्यो ऽहं जीवत्पत्न्या त्वयापि वा ।
महात्मा वाऽमहात्मा वा पतिरेव गतिः स्त्रियाः[1] ॥ ८ ॥
किं पुनर्नृपति र्देवि महात्मा दयितश्च ते ।
भरतश्चापि धर्मात्मा विनीतो गुरुवत्सलः ॥ ९ ॥
असंशयं यथैवाहं पुत्रस्ते धर्मतस्तथा ।
मत्तो ऽधिकतरां पूजां भरतात्त्वमवाप्स्यासि ॥ १० ॥

---

1 म—स्त्रियः ।

न हि किञ्चिदकल्याणं तस्मादाशंसयाम्यहम् ।
यथा तु मयि निष्क्रान्ते पुत्रशोकेन मे पिता ॥ ११ ॥
अतिमात्रं न सन्तप्येत्तथा त्वं कर्तुमर्हसि ।
कार्यः प्रत्यग्रवयसि न तथा वाऽप्यपह्नवः ॥ १२ ॥०
पत्यौ वृद्धे यथा कार्यस्त्वया मच्छोककर्षिते ।
या धर्मचारिणी नारी पतिं पतिपरायणा ॥ १३ ॥
नानुवर्त्तेत यत्नेन न सा सद्भिः प्रशस्यते ।
भर्तृव्रता भर्तृपरा नारी भर्तृपरायणा ॥ १४ ॥
इह कीर्तिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गे महीयते ।
तस्मात्सदैव भर्त्तुस्त्वं शुश्रूषानिरता गृहे ॥ १५ ॥
स्थातुमर्हसि धर्मो हि सत्स्त्रीणामेष शाश्वतः ।
गार्हस्थ्यधर्मरतया देवाराधनशीलया ॥ १६ ॥
भर्तृचित्तानुवर्त्तिन्या भर्त्ता सेव्य इह त्वया ।
ब्राह्मणान् वेदविदुषः पूजयन्ती यतव्रता ॥ १७ ॥
वसेह भर्तृसहिता ममागमनकांक्षिणी ।
द्रक्ष्यसे भर्तृसहिता ममाभ्यागमनं पुनः ॥० १८ ॥
यदि राजा मद्विहीनो धारयिष्यति जीवितम् ।
इति सानुनयं वाक्यं श्रुत्वा धर्मार्थसंहितम् ॥ १९ ॥०
रामेणोक्ता बभाषेऽथ कौशल्या साश्रुलोचना०।
गच्छ पुत्र शिवं तेऽस्तु कुरुष्व पितृशासनम् ॥ २० ॥०

० ल । ० ल । ० म । २ कै, ल—साश्र०

स्वस्तिमन्तमरिष्टं त्वां द्रक्ष्यामि पुनरागतम् ।
शुश्रूषा निरता भर्तुर्भविष्यामि यथाऽऽत्थ माम् ॥ २१ ॥
यच्चान्यदपि कर्तव्यं करिष्ये तत्सुखी व्रज
तथा तु रामं वनवासनिश्चितं समीक्ष्य देवी गतसत्त्वचेतना ।
बभूव भूयः सहसैव दुःखिता सगद्गदं बाष्पकलप्रलापिनी ॥ २२॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे कौशल्याऽऽश्वासनं
नाम सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

[अष्टविंशः सर्गः]

समाश्वस्य ततो भूयः कौशल्या राममब्रवीत् ।
मास्राक्षरपदं[1] वाक्यमिदं बाष्पाकुलेक्षणा ॥ १ ॥
अदृष्टदुःखो धर्मात्मा सर्वभूतहिते रतः ।
मया दशरथाज्जातः[2] कथं दुःखमवाप्स्यसि ॥ २ ॥
यस्य प्रेष्याश्च दासाश्च स्वादून्यन्नानि[3] भुञ्जते ।
तस्य पुत्रः प्रियो वन्यं भोक्ष्यसे मुनिभोजनम् ॥ ३ ॥
कः श्रद्दध्यादिदं श्रुत्वा कस्य वा न भयं भवेत् ।
राज्ञा निर्वासितः पुत्रः प्रियोऽतिगुणवानिति ॥ ४ ॥
अयं धक्ष्यति मां पुत्र लोकवाक्यहुताशनः ।
वियोगार्तिसमुद्भूतस्त्वद्गुणौघमयेन्धनः[4] ॥ ५ ॥
चिन्ताऽऽयाममहाधूमस्त्वद्वियोगानिलेरितः ।
मां प्रधक्ष्यत्ययं नूनं निःश्वासायासपावकः ॥ ६ ॥
त्वया विहीनामवशां शोकाग्निरनिशं ज्वलन् ।
प्रधक्ष्यति यथा कक्ष्यं चित्रभानुर्हिमात्यये ॥ ७ ॥
वत्सलत्वाद्यथा धेनुः स्वं पुत्रमभिधावति ।
तथा त्वामनुयास्यामि वात्सल्यादभिधावती ॥ ८ ॥
इति मातुर्निगदितं मातुः सकरुणाक्षरम् ।
श्रुत्वा रामाऽब्रवीद्वाक्यं कौशल्यां शोककर्षिताम् ॥ ९ ॥
कैकेय्या वञ्चितो राजा मयि चारण्यमाश्रिते ।

---

1 कै—साम्राक्षर० । ल—मास्राक्षर० । म—सस्राक्षर । 2 ल—दशरथाज्ञातः । म—दशरथो जातः । 3 म—स्वादून्यश्नानि । 4 कै—स्त्वद्गुणौघ० ।

भवत्या च परित्यक्तो न मन्ये वर्तयिष्यति ॥ १० ॥
भर्तुश्चैव परित्यागः शस्यते न कथञ्चन ।
स भवत्या न कर्तव्यो मनसाऽपि विगर्हितः ॥ ११ ॥
यावज्जीवति ते भर्ता भर्त्ता हि तव दैवतम् ।
सर्वात्मना सयत्नात्तमाराधयितुमर्हसि ॥ १२ ॥
राजा हि ते प्रभविता प्राणानां जीवितस्य च ।
अनुगन्तु मतो देवि न मामर्हसि सर्वथा ॥ १३ ॥
इत्येवमुक्ता रामेण कौशल्या धर्मदर्शिनी ।
तथेत्युवाच दुःखार्त्ता रामं संप्रस्थितं वनम् ॥ १४ ॥
विनिश्चितं तथा रामं विज्ञाय गमनोन्मुखम् ।
प्रास्थानिकं राममाता[5] कर्तुं समुपचक्रमे[5] ॥ १५ ॥
सा निगृह्य ततो वाष्पमुपस्पृश्य जलं शुचि ।
चकार देवी रामस्य ततः स्वस्त्ययनाक्रियाम् ॥ १६ ॥
सुमनोभिश्च गन्धैश्च मनोज्ञैर्बलिभिस्तथा ।
देवानभ्यर्च्य विधिवत्प्रणम्य च शुभव्रता ॥ १७ ॥
गन्धमाल्यहविःशेषं रामाय प्रतिपाद्य च ।
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय परिष्वज्य च पीडितम् ॥ १८ ॥
रक्षोघ्नीमोषधीं पाणौ दक्षिणे च बबन्ध सा ।
रामस्वस्त्ययनार्थं हि मन्त्रमेनं जजाप च ॥ १९ ॥
स्वस्ति ते कुरुतां ब्रह्मा शिवो विष्णुः प्रजापतिः ।

---

5 म—०कर्तुं संघाप्रचक्रमे । कै—स्वस्त्य राममाता कर्त्तुं प्रचक्रमे ।

स्वस्ति कुर्वन्तु ते साध्या[6] मरुतश्च महर्षिभिः[7] ॥ २० ॥
स्वस्ति धाता विधाता च स्वस्ति पूषा भगोऽर्यमा ।
वरुणः स्वस्ति राजा च करोतु मनुभिः सह ॥ २१ ॥
स्वस्ति मित्रः सहादित्यैः स्वस्ति रुद्रा दिशन्तु ते ।
दिशश्च विदिशश्चैव मासाः संवत्सराः क्षपाः ॥ २२ ॥
दिनानि च मुहूर्त्ताश्च स्वस्ति पुत्र दिशन्तु ते ।
यन्मंगलं महेन्द्रस्य सर्वैः देवैः[8] कृतं पुरा ॥ २३ ॥
वृत्रं हन्तुं प्रयातस्य वत्स तत्ते ऽस्तु मंगलम् ।
यन्मंगलं सुपर्णस्य विनताऽकल्पयत्पुरा ॥ २४ ॥
अमृतार्थे प्रयातस्य तत्ते भवतु मंगलम् ।
वेदाः सांगास्तथाऽऽदित्या मन्त्रा आथर्वणाश्च ये।२५
धृतिः स्मृतिश्च मेधा च पान्तु त्वां पुत्र सर्वशः ।
सिद्धा देवर्षयः सर्वे तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ २६ ॥
नागाः सुपर्णाः पितरो रक्षन्तु त्वां समन्ततः ।
स्कन्दश्च सुरसेनानीस्तथैव च महेश्वरः ॥ २७ ॥
सप्तर्षयो नारदश्च सोमः शुक्रो बृहस्पतिः ।
नक्षत्राणि ग्रहाश्चान्ये तथा नक्षत्रदेवताः ॥ २८ ॥
ज्योतींषि चैव दिव्यानि पान्तु त्वां पुत्र सर्वतः ।
महावने विचरतो मुनिवेशधरस्य ते ॥ २९ ॥
उग्ररूपविषा नागाः सौम्यरूपा भवन्तु ते ।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च यक्षाश्च पिशिताशनाः ॥ ३० ॥

6 ल—सख्या । 7 ल—(सहर्षिभिः ?) । 8 ल—देवाः । 9 म—विप्र ।

शिवा भवन्तु ते पुत्र व्यालाश्चारण्यवासिनः[10] ।
पतंगा वृश्चिकाः कीटा दंशाश्च मशकैः सह ॥ ३१ ॥
सरीसृपाश्चोग्रविषाः शिवाय विचरन्तु ते ।
महागजा वराहाश्च खड्गयः[11] सिंहास्तथैव च ॥ ३२ ॥
ऋक्षाश्च महिषाश्चैव शिवास्ते सन्तु पुत्रक ।
ये चामिषाशिनो रौद्रा नानारूपा मृगद्विजाः ॥ ३३ ॥
मयाऽभियाचितास्त्वेते शिवाः सन्तु वने चराः ।
स्वस्ति तेऽस्त्वान्तरिक्षेभ्यः पार्थिवेभ्यश्च पुत्रक ॥ ३४ ॥
दिव्येभ्यश्चैव भूतेभ्यो वनचारिभ्य एव च ।
सर्वलोकप्रभुर्ब्रह्मा वृषभांकस्तथैव च ॥ ३५ ॥
त्रिलोकनाथश्च वने रक्षन्तु त्वां जनार्दनः ।
आगमास्ते शिवाः सन्तु सिध्यन्तु च मनोरथाः ॥ ३६ ॥
सुखेन यातु कालस्ते स्वस्ति प्राप्नुहि राघव ।
संसिद्धार्थमरोगं त्वामयोध्यां पुनरागतम् ॥ ३७ ॥
द्रक्ष्यामि त्वां कदा पुत्र जुष्टं राजश्रिया पुनः ।
इत्युक्त्वा मूर्ध्न्युपाघ्राय परिष्वज्याभिनन्द्य च ॥ ३८ ॥
पुनरागमनायेह गच्छ पुत्रेत्युवाच तम् ।
शीघ्रं त्वां पुनरायातं पश्येयं सह लक्ष्मणम् ॥ ३९ ॥
वनवाससमुत्तीर्णं नवं चन्द्रमिवोदितम् ॥ ४० ॥
मयाऽर्चिता देवगणाः शिवादयो महर्षयश्चैव पितामहो महान् ।
इतः प्रयातस्य वनं चिराय ते हितैषिणः सन्तु मयाऽभियाचिताः ॥४१

---

10 कै—व्याडाश्चारण्य० । 11 म, ल—खड्गाः ।

इत्येवमश्रुप्रतिपूर्णलोचना समाप्य च स्वस्त्ययनं कृताञ्जलिः।
प्रदक्षिणं चैव चकार राघवं पुनः पुनः सा परिपीड्य सस्वजे ॥४२॥
तथा तु देव्या स कृतप्रदक्षिणश्चकार मूर्ध्ना चरणाभिवन्दनम्।
स चापि सौमित्रिरमित्रकर्षणो जगाम चामंत्र्य च तां स्वमालयम्॥४३॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे कौशल्यास्वस्त्ययनं
नाम अष्टविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

[एकोनत्रिंशः सर्गः]

कौशल्यामभिवाद्यैवमनुमान्य च राघवः ।
कृतस्वस्त्ययनो मात्रा प्रतस्थे सहलक्ष्मणः ॥ १ ॥
विराजयन् राजमार्गं[1] राजपुत्रो[1] जनैर्वृतम् ।
हरन्निव जनौघस्य हृदयानि जगाम सः ॥ २ ॥
वैदेह्यपि च तत्कालं तत्पराऽनन्यमानसा ।
आशंसन्ती च सा भर्तुर्यौवराज्याभिषेचनम् ॥○३ ॥
देवान् पितॄंश्च सत्कृत्य तथा नियतमानसा ।○
अभिज्ञा राजधर्माणां राजपुत्री धृतव्रता ॥ ४ ॥
प्रद्वारासक्तनयना भर्तृदर्शनलालसा ।
तस्थौ स्ववेश्ममध्ये सा रामागमनकांक्षिणी ॥ ५ ॥
प्रविवेशाथ सहसा रामो वेश्मात्मनस्तदा ।
भक्तिमद्भिर्जनैः कीर्णं ह्रिया किञ्चिदधोमुखः ॥ ६ ॥
ईषद्दीनमुखः क्षामो मनोदुःखसमन्वितः ।
नातिहृष्टमनाः सीतां प्रविश्याथ ददर्श सः ॥ ७ ॥
तत्परां वेश्ममध्यस्थां विनयावनतां स्थिताम् ।
विनयाचारसंपन्नां प्राणेभ्यो ऽपि प्रियां प्रियाम् ॥ ८ ॥
सा च दृष्ट्वैव भर्तारं प्रत्युद्गम्य प्रणम्य च ।
वामपार्श्वे स्थिता देवी रामं दीनमुखं तदा ॥ ९ ॥
अभिवीक्ष्य वरारोहा वेपमानेदमब्रवीत् ।
दृष्ट्वान्तर्गतदुःखार्त्तं किमेतदिति विह्वला ॥ १० ॥

1 म—राजपुत्रो राजमार्गं । ○ म ।

किं न बार्हस्पतो योगो युक्तः पुष्येण राघव ।
प्रोच्यते ब्राह्मणैस्तज्ज्ञैर्येन त्वमतिदुर्मनाः ॥ ११ ॥
कस्माच्छतशलाकेन पूर्णेन्दुप्रतिमेन ते ।
आवृतं वदनं चारु छत्रेण न विराजते ॥ १२ ॥
चामरव्यजनाभ्यां च चारुपद्मदलेक्षणम् ।
न वीज्यते तेऽद्य मुखं कस्मात् पूर्णेन्दुसुप्रभम् ॥ १३ ॥
यौवराज्याभिषिक्तं च सूतमागधवन्दिनः ।
वाग्मिनो न स्तुवन्ति त्वां कस्माद्राघव शंस मे ॥ १४ ॥
न ते क्षौद्रं च दधि च ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
मूर्ध्नि राज्याभिषेकार्थं दध्युश्च विधिवन्न किम् ॥ १५ ॥
कस्मात्प्रकृतिमुख्यास्ते श्रेणिमुख्याश्च राघव ।
किंकरा नाद्य तिष्ठन्ति यौवराज्याभिषेचने ॥ १६ ॥
त्रिप्रसूता गजवृषाः शुभलक्षणलक्षिताः ।
पृष्ठतो नानुयान्ति त्वां कस्मादद्याभिषेचने ॥ १७ ॥
शुभलक्षणसंपन्नः श्वेतश्च तुरगोत्तमः ।
न तेऽद्य याति पुरतः कस्माच्छ्रीविजयावहः ॥ १८ ॥
एवं ब्रुवाणां तां रामो जातशंकां च मैथिलीम् ।
उवाचेदं वचो वीरः[2] सत्त्वगांभीर्यमास्थितः ॥ १९ ॥
राजर्षिकुलसंभूते धर्मज्ञे सत्यवादिनि ।
शृणु मैथिलि धीरा त्वं भूत्वा वाक्यमिदं मम ॥ २० ॥
राज्ञा सत्यप्रतिज्ञेन पित्रा दशरथेन मे[3] ।

---

२ म—धीरा । ३ ल—च ।

कैकेय्यै प्रीतमनसा दत्तौ किल वरौ पुरा ॥ २१ ॥
ममोपकृत्य चैवाद्य यौवराज्याभिषेचनम् ।
प्रचोदितेन समये धर्मज्ञेनापवर्जितौ ॥ २२ ॥
मया वर्षाणि वस्तव्यं चतुर्दश वने प्रिये ।
भरतेनाप्ययोध्यायां राज्ञा भाव्यमनिन्दिते ॥ २३ ॥
सो ऽहं त्वामागतो द्रष्टुं प्रस्थितो विजनं वनम् ।
आपृच्छे धैर्यमालंव्य[4] मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ २४ ॥
श्वश्रूं[5] च[5] श्वशुरं चैव वस त्वं समुपाश्रिता ।
शुश्रूषा परमा भूत्वा यावदागमनं मम ॥ २५ ॥
मद्व्यपाश्रयजं[6] मानमाश्रित्य वरवर्णिनि ।
भरतस्य समीपे ऽहं न ते स्तुत्यः कथञ्चन ॥ २६ ॥
ऐश्वर्यमदमत्ता हि न सहन्ते परस्तवम् ।
तस्मात्त्वया गुणाः स्तुत्या भरतस्याग्रतो न मे ॥ २७ ॥
अहं हि[7] पितरं सत्यं चिकीर्षुस्तन्नियोगतः ।
वनमद्यैव यास्यामि कुरु त्वं हृदयं स्थिरम् ॥ २८ ॥
मयि याते च कल्याणि वनं मुनिजनप्रियम् ।
व्रतोपवासरतया भवितव्यं त्वया प्रिये ॥ २९ ॥
कल्य उत्थाय देवानां कृत्वा पूजाभिवादनम् ।
नन्दितव्यो दशरथः पिता मे दैवतं यथा ॥ ३० ॥
मातरश्चैव मे सर्वा यथाक्रममशेषतः ।

---

4 कै, ल—०मालंभ्य । म—०मालमय । 5 कै, ल—श्वश्रुश्च । 6 ल—०श्रयणं । 7 ल—च ।

त्वयाऽर्चनीयाः सततं समा हि मम मातरः ॥ ३१ ॥
भ्रातरौ चापि मे सीते प्राणेभ्योऽपि प्रियावुभौ ।
त्वया भरतशत्रुघ्नौ द्रष्टव्यौ भ्रातृपुत्रवत् ॥ ३२ ॥
न वक्तव्यो ऽप्रियं सीते मत्प्रीत्या भरतस्त्वया ।
स हि राजा गुरुश्चैव देशस्यास्य प्रियश्च मे ॥ ३३ ॥
आराधिता हि राजानो देवताश्चोपसेविताः ।
अनुग्रहैर्योजयन्ते भक्तान् घ्नन्ति विपर्यये ॥ ३४ ॥
औरसानपि पुत्रांश्च विहिंसन्त्यपकारिणः ।
अनुगृह्णन्ति च प्रीत्या परानप्युपकारिणः ॥० ३५ ॥
त्वं च तेनेह वर्तव्या वनं हि प्रोषिते मयि ।
तस्मात् सान्त्व लिप्सेथाश्चलपिण्डभृतिं[8] ततः ॥ ३६ ॥
मम माता च कौशल्या वृद्धा मच्छोककर्षिता ।
मत्प्रियार्थं प्रिये सीते शुश्रूष्याऽनन्यचिन्तया ॥ ३७ ॥
सोऽहं गमिष्यामि महावनं प्रिये त्वयाऽपि[9] वस्तव्यमिहाज्ञया मम ।
यथा व्यलीकं न करोमि कस्यचित् तथा त्वया कार्यमितो गते मयि॥३८॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे सीतानुशासनं
नाम एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

० म । 8 कै, ल—लिप्स्येथा० । 9 म—त्वयाधि ।

[त्रिंशः सर्गः]

इत्यप्रियमिदं वाक्यं श्रुत्वा सा प्रियभाषिणी ।
साभ्यसूयमिव भर्तारं सीता वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
आर्यपुत्र पिता माता भ्रातरो बान्धवाः सुताः ।
प्रेत्य चैवेह चाश्नन्ति स्वं स्वं कर्मफलं पृथक् ॥ २ ॥
न पितुः कर्मणा पुत्रः पिता वा पुत्रकर्मणा ।
सुखमाप्नोति दुःखं वा स्वं स्वं कर्माभिजायते ॥ ३ ॥
भार्यैका पतिभोज्यानि भुंक्ते पतिपरायणा ।
साऽहं त्वामनुयास्यामि यत्र यत्र गमिष्यसि ॥ ४ ॥
शपे ऽहं ते प्रसादेन जीवितेन च राघव ।
यथा नेच्छाम्यहं वस्तुं स्वर्गे ऽपि रहिता त्वया ॥ ५ ॥
त्वं मे नाथो गुरुश्चैव गतिर्दैवतमेव च ।
गमिष्यामि त्वया सार्धमेष मे निश्चयः परः ॥ ६ ॥
यदि त्वमुद्यतो गन्तुं दुर्गं कण्टकितं वनम् ।
अहं तत्राग्रे यास्यामि मृद्नन्ती[1] कुशकण्टकम्[2] ॥ ७ ॥
न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सुहृज्जनः ।
गतिर्भवति सत्स्त्रीणां पतिस्त्वेकः परा गतिः ॥ ८ ॥
ईर्ष्यादोषं समुत्सृज्य पीतशेषमिवोदकम् ।
नय मां वीर विस्रब्धां पापं मयि न विद्यते ॥ ९ ॥
हर्म्यप्रासादभवनविमानेभ्यो ऽपि मे प्रभो ।
त्वत्पादाश्रयणं[3] श्रेयः स्वर्गादपि च दुर्लभम् ॥ १० ॥

---

1 कै—मृश्नंति । 2 ल—०कंटकान् । 3 ल—०श्रयणं ।

कुरु प्रसादं गच्छेयं त्वयाऽद्य सहिता वनम् ।
सिंहकुञ्जरशार्दूलवराहर्क्षनिषेवितम् ॥ ११ ॥
सुखं वने ऽपि वत्स्यामि तव⁰पादव्यपाश्रयात्⁰ ।
विहरन्ती त्वया सार्धं यथेन्द्रभवने तथा ॥⁰१२ ॥
शुश्रूषमाणा⁰वत्स्यामि⁰पादौ ते नियतव्रता ।
रममाणा त्वया सार्धं काननेषु सुगन्धिषु ॥ १३ ॥
न ममाभिभवे शक्तो महेन्द्रो ऽपि त्वदाश्रयात् ।
अतो नार्हसि मां भक्तां निवर्त्तयितुमातुराम् ॥ १४ ॥
शतक्रतुसमः शौर्ये विष्णुतुल्यपराक्रमः ।
त्वं हि लोकत्रयस्यास्य समर्थः प्रतिपालने ॥ १५ ॥
त्वया सह भविष्यामि फलमूलकृताशना ।
दुर्भरा न भविष्यामि वने ते ऽहं कथञ्चन ॥ १६ ॥
इच्छामि सरितः शैलान् सरांसि च वनानि च ।
द्रष्टुं वल्कलसंवीता त्वया नाथेन रक्षिता ॥ १७ ॥
हंसकारण्डवाकीर्णाः पद्मिन्यो विमलोदकाः ।
अवगाह्याभिरंस्ये ऽहं त्वयैव सह राघव ॥ १८ ॥
वनोद्देशेषु रम्येषु नानाकुसुमगन्धिषु[4] ।
रन्तुमिच्छामि[5] मुदिता त्वयाऽहं सह राघव ॥ १९ ।⁰
सहस्राण्यपि वर्षाणि बहूनि सहिता त्वया ।
समतीतानि मन्ये ऽहं यथैकदिवसं तथा ॥ २० ॥
स्वर्गे ऽपि वासं रहिता त्वया वीर न कामये ।

⁰ म । 4 ल —नानार्थेसु सुगन्धिषु । 5 ल —गंतु० ।⁰ म ।

नरकश्चापि मे स्वर्गाद्विशिष्टः स्यात्त्वया सह ॥ २१ ॥
पित्रा चाप्यनुशिष्टाऽस्मि मात्रा च स्वजनेन च ।
विना भर्त्रा न वस्तव्यं त्वयेति रघुनन्दन ॥ २२ ॥
अतः प्रणम्य याचे त्वां गमने कृतनिश्चया ।
न मामर्हसि सन्देष्टुमितिकर्तव्यतां प्रति ॥ २३ ॥
वनं गमिष्यामि सह त्वयाऽहं न मां नृवीर प्रतिषेद्धुमर्हसि ।
वनं निवत्स्यामि यथा पितुर्गृहे तथैव पद्भ्यामभिरक्षिता त्वया[1] ।२४॥
अनन्यभावामनुरक्तचेतसां त्वया वियुक्तां मरणाय निश्चिताम् ।
नयस्व मां साधु कुरु प्रियं च मे मया न भारो गुरुतामुपैष्यति ।२५।
इति ब्रुवाणामपि धर्मवादिनीं नेतुं न रामो दयितां व्यवस्यति ।
निवर्त्तयिष्यन् हि स तां तदा प्रियामुवाच दोषान् वनवासिनामथ २६।

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे सीतावाक्यं नाम त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

[1] म, ल—तव ।

[एकत्रिंशः सर्गः]

तां तथा ब्रुवतीं रामः प्रियां भार्यामनुव्रताम् ।
उवाचेदं बहून् दोषान् वनवासमुदाहरन् ॥ १ ॥
सीते महाकुलीनाऽसि धर्मज्ञाऽसि यशस्विनि ।
सत्यं मद्वचनं कार्यं श्रोतुमर्हस्यनिन्दिते ॥ २ ॥
मनो हि त्वयि निक्षिप्य शरीरेणैव केवलम् ।
गमिष्याम्यवशः सीते काननं पितुराज्ञया ॥ ३ ॥
तस्माद् यथा वदामि त्वां तथा त्वं कर्तुमर्हसि ।
वनवासे हि बहव इमे दोषा महात्यया ॥ ४ ॥
तच्छ्रुत्वा त्यज्यतां भीरु वनवासकृता मतिः ।
तवानुकंपयैवाहं वनदोषान् सुदारुणान् ॥ ५ ॥
संजानानो ह्यहं न त्वां वनं नेतुं समुत्सहे ।
वनेषु सन्ति शार्दूला आसन्नजनघातिनः ॥ ६ ॥
भेतव्यं हि सदा तेभ्यस्तेन दुःखं प्रिये वनम् ।
तथैव हरयो नागा बहवः सन्ति कानने ॥० ७ ॥
अतिमात्रं विनिघ्नन्ति तेन दुःखं वनं प्रिये ।
अत्यम्बु चातिशीतं च तृड्बुभुक्षे तथैव च ॥ ८ ॥०
भयानि च बहून्यत्र तेन दुःखं प्रिये वनम् ।०
सर्पाः सरीसृपाश्चान्ये वृश्चिकाश्च महाविषाः ॥० ९ ॥
चरन्ति गहने ऽरण्ये तेन दुःखं प्रिये वनम् ।०
गिरिकन्दरजातानां नानाऽरण्यनिवासिनाम् ॥ १० ॥

---

(०) कं । (०) म ।

उद्वजनानां सिंहानां श्रूयन्ते निनदा वने ।
सिंहर्क्षमृगशार्दूलवराहोरगवारणाः ॥ ११ ॥
प्राणाभिघातिनो घोरास्तथाऽन्या मृगजातयः ।
बह्व्य[ः] सन्ति वने दुर्गे न गन्तव्यं ततो वनम् ॥ १२ ॥
तथा कुटिलगा नागा महाविवरशायिनः ।
दृश्यन्ते चात्र मार्गेषु वृश्चिकाश्च महाविषाः ॥ १३ ॥
पतंगा मक्षिकाः कीटा दंशाश्च मशकैः सह ।
सन्त्यरण्येषु वैदेहि तेन दुःखं महावनम् ॥ १४ ॥
अगाधाः पङ्कवत्यश्च महानक्रकुलाकुलाः ।
सरितः सन्त्यरण्यानि नदीकंदरवन्ति च ॥ १५ ॥
कक्ष्यवृक्षक्षपलता गहनानि शुचिस्मिते ।
सन्त्यटव्यश्च वैदेहि तस्माद्दुःखतरं वनम् ॥ १६ ॥
सुप्यते तृणशय्यासु पर्णशय्यासु चाबले ।
स्वयंकृतासु दुःखासु भूतले निर्जने वने ॥ १७ ॥
आहाराश्चैव कर्तव्या बदरामलकेंगुदैः ।
तथा श्यामाकनीवारपियालकटुतिन्दुकैः[1] ॥ १८ ॥
वन्येष्वलभ्यमानेषु वने मूलफलेषु वै ।
बहून्यहानि वस्तव्यं निराहारैर्वनप्रियैः ॥ १९ ॥
वल्कलाजिनपर्णानि वासितव्यानि कानने ।
वनेषु भवितव्यं च दीर्घश्मश्रुजटाधरैः ॥ २० ॥
दीर्घरोमधरैश्चैव मलपङ्कसमाचितैः ।

1 ल—०प्रियाल० ।

वातातपविशुष्काङ्गैः प्रिये दुःखमतो वनम् ॥ २१ ॥
स्थाने वीरासनं सेव्यमुपचाराश्च मैथिलि ।
कर्तव्या दुश्चराश्चैव नियमा वनवासिभिः ॥ २२ ॥
ग्रीष्मे पञ्चतपोभिश्च वर्षास्वभ्रावकाशकैः[1] ।
जलवासैश्च शिशिरे भाव्यं वनचरैः प्रिये ॥ २३ ॥
त्वगस्थिमात्रशेषेण तपसा कर्षितेन च ।
मया ते तत्र का प्रीतिः का रतिर्वा भविष्यति ॥ २४ ॥
*मां वा समनुगच्छन्त्या नियमव्रतशीलया ।
*त्वयापि हि वने तत्र का रतिर्मे भविष्यति ॥ २५ ॥
वातातपविशीर्णाङ्गीं तपोनियमकर्षिताम् ।
कथं द्रक्ष्याम्यरण्ये त्वां भृशं हि दयिताऽसि मे ॥ २६ ॥
तदलं ते वनं गन्तुं वनचर्या न ते क्षमा ।
विमृषन् वनदोषं हि पश्यामि दयिते वनम् ॥ २७ ॥
तत्र स्थास्यापि मे नित्यं हृदये त्वं निवत्स्यसि ।
इहस्थाऽपि न दूरे त्वं प्रिया हि भवती[3] मम ॥ २८ ॥
एवं वने नेतुमनिश्चितो ऽसावुक्त्वा प्रियां तां विरराम रामः ।
अथोत्तरं सा सुदती सुदीना सीता पुनर्वाक्यमिदं जगाद ॥ २९ ॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे सीतावनदोषदर्शनं नाम एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

---

1 कै—वर्षेष्व० । ल—वर्षस्व० । * कै, ल—नास्ति । 3 कै—भवतो । पश्चात "भवती" इति कृतम । ल—तवनो ।

[द्वात्रिंशः सर्गः]

अथ तद्वचनं श्रुत्वा सीता रामस्य दुःखिता ।
प्रसक्ताश्रुमुखी वाक्यं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
वनवासे त्वया दोषा य एते परिकीर्तिताः ।
तानार्यपुत्र मन्ये ऽहं त्वद्भक्त्या सर्वशो गुणान् ॥ २ ॥
त्वद्बाहुगुप्तां न च मामपि देवः शतक्रतुः ।
शक्तो ऽभिभवितुं लोके कुतो ऽन्ये वनचारिणः ॥ ३ ॥
सिंहव्याघ्रवराहादीनुक्तवानसि यान्वने ।
दुरासदान्न मे तेभ्यो भयं किञ्चन[1] विद्यते ॥ ४ ॥
त्वद्बाहुबलगुप्तायाः कुतो मे ऽनुबलं[2] भवेत् ।
विपत्तिरपि वा तत्र श्रेयो मे नेह जीवितम् ॥ ५ ॥
त्वया वा सह गन्तव्यं त्वदनुज्ञातया वनम् ।
त्वत्परित्यक्ता वापि त्यक्तव्यं जीवितं मया ॥ ६ ॥
नारी भर्तृपरित्यक्ता जीवन्त्यपि सुदुःखिता ।
मृता भवत्यार्यपुत्र तस्माच्छ्रेयो ऽद्य मे मृतम् ॥ ७ ॥
अपि चैवाहमादिष्टा लक्षणज्ञैर्द्विजातिभिः ।
वने ते विजने सीते वस्तव्यमिति राघव ॥ ८ ॥
तेषां लक्षणिनां श्रुत्वा वचस्तत्सत्यवादिनाम् ।
वनवासस्पृहा नित्यं हृदि मे परिवर्त्तते ॥ ९ ॥
स चेदवश्यं प्राप्तव्यः सिद्धादेशस्तथा मया ।
सह त्वया भवतु मे न हीच्छामि तमन्यथा ॥ १० ॥

---

1 ल—किंचिन्न । 2 म, ल—नुभयं ।

प्राप्तादेशा भविष्यामि गत्वाऽहं महिता त्वया ।
कालश्चायं समुत्पन्नः सत्यास्ते सन्तु वै द्विजाः ॥ ११ ॥
वनवासे च जानामि दुःखानि विविधान्यहम् ।
प्राप्यन्ते यानि मुनिभिर्वनवासे यतात्मभिः ॥ १२ ॥
कन्ययैव मया सर्वे वनदोषाः श्रुताः पुरा ।
भिक्षुक्याः साधुवृत्तायाः कथयन्त्याः पितुर्गृहे ॥ १३ ॥
प्रसादये त्वां शिरसा नय मामपि राघव ।
वनवासो हि सुभृशं कांक्षितो मे त्वया सह ॥ १४ ॥
कृतकृत्योऽसि भद्रं ते गमनं प्रति राघव ।
पुण्या हि वनचर्येयं त्वया मे सह कांक्षिता ॥ १५ ॥
पूताऽनया भविष्यामि पुण्यया वनचर्यया ।
विहरन्ती त्वया सार्धं हृदयोत्सवभूतया ॥ १६ ॥
स्पृहणीया भविष्यामि लोकेऽमुष्मिन्निहैव च ।
भर्त्तारमनुगच्छन्ती भर्त्ता स्त्रीणां हि दैवतम् ॥ १७ ॥
त्वयैव सह संयोगः प्रेत्यभावेऽपि मे भवेत् ।
इति चानुगमिष्यामि त्वामहं कृतनिश्चया ॥ १८ ॥
मया कथयतां पूर्वं श्रुतं प्रत्यक्षदर्शिनाम् ।
ब्राह्मणानां निसर्गेण धर्मनिश्चयवादिनाम् ॥ १९ ॥
भर्तारं किल या नारी छायेवानुगता सदा ।
अनुगच्छति गच्छन्तं तिष्ठन्तमनुतिष्ठति ॥ २० ॥
तद्भावनिरता नित्यं तत्संयोगपरायणा ।
तमेव भूयो भर्त्तारं सा प्रेत्याप्यनुगच्छति ॥ २१ ॥

अनुरक्तां प्रियां भार्यां सुव्रतां पतिदेवताम् ।
न त्वं रोचयसे नेतुं मामितः केन हेतुना ॥ २२ ॥
तुल्यशीलव्रताचारां छायामनुगतामिव ।
नेतुमर्हसि मां वीर वनं मुनिजनप्रियम् । २३ ॥
यदि मां निश्चितां गच्छन्न नेतुं त्वमिहेच्छसि ।
सत्येनालभ्य ते पादौ न भविष्याम्यसंशयम् ॥ ॥ २४ ॥
इत्युक्त्वा प्ररुरोदाथ मैथिली शोककर्षिता ।
शोकोष्णैरभिवर्षन्ती दुःखजैरश्रुबिन्दुभिः ॥ २५ ॥
पीनोन्नतावपतितौ स्नपयन्ती[3] पयोधरौ ।
दुःखामर्षपरीताङ्गी सुस्वरं कलभाषिणी ॥ २६ ॥
एवमार्त्तामपि तु तां विलपन्तीं सुदुःखिताम् ।
रामः प्रियामनुगतां नेतुं नैव व्यवस्यति ॥ २७ ॥
दध्यौ चाधोमुखः किंचिद्विप्लुतामभिवीक्ष्य ताम् ।
वनवासगतान् दोषान् बहुधाऽपि विचारयन् ॥ २८ ॥
विमनसमभिवीक्ष्य चिन्तयन्तं जनकसुता पतिमप्रतीतरूपम् ।
भृशतरमभिरोषताम्रनेत्रा वचनमुवाच पुनर्निगृह्य बाष्पम् ॥ २९ ॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे सीतानुनयो
नाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

[3] म—स्नापयंती ।

[त्रयस्त्रिंशः सर्गः]

रामस्य तां मतिं बुद्ध्वा मैथिली कृतनिश्चया ।
रोषात्प्रस्फुरमाणोष्ठी पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
उन्मत्तेवातिपश्यन्ती भर्त्तारं विपुलेक्षणा ।
रोषावेशात् क्षिपन्तीव प्रणयादभिमानिनी ॥ २ ॥
कृतार्थं मन्यते मूढः स आत्मानं पिता मम ।
रामं जामातरं लब्ध्वा क्लीवं पुरुषमानिनम् ॥ ३ ॥
अनृतं वत लोको ऽयमज्ञानादनुपश्यति ।
तेजस्वी राम एवैकः सूर्यो वा द्युतिमानिति ॥ ४ ॥
किं वा पश्यन् विषण्णस्त्वं कुतो वा भयमस्ति ते ।
त्यक्तुमिच्छसि मां येन प्रियां नान्यपरायणाम्[1] ॥ ५ ॥
द्युमत्सेनसुतं धीरं सत्यवन्तमनुव्रताम् ।
सावित्रीमिव मां विद्धि भर्त्तृगतिपरायणाम् ॥ ६ ॥
त्वत्तो ऽन्यां हि गतिं गन्तुं मनसा ऽपि न कामये ।
त्वया नाथ परित्यक्ता नेच्छामि भरताद् भृतिम् ॥ ७ ॥
कौमारीं दयितां भार्यां स्वयमाहृत्य मां कथम् ।
शैलूषीमिव योषार्थमन्यस्मै दातुमिच्छसि ॥ ८ ॥
न ते ऽहमपराध्यामि कर्मणा मनसा ऽपि वा ।
वाचा वा स कथं मां त्वं त्यक्तुमिच्छस्यकारणात् ॥ ९ ॥
यदि वाप्यपराधस्ते मया कश्चित्पुरा कृतः ।
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात् क्षामये त्वां प्रसीद मे ॥ १० ॥

---

1 ल —वानन्यपरायणाम् ।

आर्यपुत्र परित्यज्य न मां त्वं गन्तुमर्हसि[2] ।
वासः स मे स्वर्गभूतस्त्वया सह भविष्यति ॥ ११ ॥
पृष्ठतस्तव गच्छन्त्या विहारे शयनेऽपि वा ।
न भविष्यति मे नाथ मार्गेऽप्यध्वपरिश्रमः ॥ १२ ॥
कुशकाशशरेषीकास्तथैव द्रुमकण्टकाः ।
मार्गे मम भविष्यन्ति स्पर्शे[3] कौशेयसन्निभाः ॥ १३ ॥
शय्याश्च वनवासे मे वन्यपर्णतृणास्तृताः ।
रांकवाजिनसंस्पर्शा भविष्यन्ति सह त्वया ॥ १४ ॥
महावातसमुद्भूतं यन्मामवकरिष्यति ।
रजो रमण तन्मेऽङ्गे परार्ध्यमिव चन्दनम् ॥ १५ ॥
शाद्वलेषु यदा शेष्ये विविक्तेषु च राघव ।
कुशास्तरणतल्पेषु किं मे सुखतरं ततः ॥ १६ ॥
यन्मे मूलफलं वन्यं वने दास्यसि राघव ।
स्वादु वा यदि वाऽस्वादु तद्भवत्यमृतोपमम् ॥ १७ ॥
न बन्धूनां स्मरिष्यामि न मातु र्न पितुर्वने ।
वसन्ती भवता सार्धं स्वादुमूलफलाशना ॥ १८ ॥
न[4] मत्कृतं[4] व्यलीकं ते तत्र किंचिद् भविष्यति ।
भविष्यामि न चैवाहं तत्र भारस्तवानघ ॥ १९ ॥
यस्त्वया सह स स्वर्गो नरकश्च त्वया विना ।
कुरु मे दयितं कामं गच्छेयं सहिता त्वया ॥ २० ॥
त्वया त्यक्ता हि नेच्छामि जीवितुं रघुनन्दन ।

---

2 कै—गंतुमिच्छसि । 3 कै—स्पर्शे— । 4 ल—नमस्कृत्यं ।

त्वद्वियोगभयोद्विग्नां त्रायस्व शरणागताम् ॥ २१ ॥
अथ नेच्छसि चेन्नेतुं मामेवं समनुव्रताम् ।
विषमद्यैव भोक्ष्येऽहं पश्यतस्ते नृपात्मज ॥ २२ ॥
इदं हि दुःखं संसोढुं मुहूर्त्तमपि नोत्सहे ।
किं पुनर्दशवर्षाणि त्रीणि चैकं च राघव ॥ २३ ॥
इति शोकाग्निसन्तप्ता विलप्य जनकात्मजा ।
पादयो निपपाताथ भर्त्तुर्गमनलालसा ॥ २४ ॥
उक्त्वा वाक्यं सकरुणं त्रायस्व नृप मामिति ।
रुरोद पतिता तत्र मुखरं मृदुभाषिणी ॥ २५ ॥
स तस्याः करुणैर्वाक्यैः हृदि क्षत इवातुरः ।
मुमोच बाष्पं शोकोष्णं बाष्पसंरुद्धलोचनः ॥ २६ ॥
तस्य शोकाश्रुपूर्णाभ्यां प्रियाकारुण्यजं तदा ।
सुस्राव वारि नेत्राभ्यां पङ्कजाभ्यामिवोदकम् ॥ २७ ॥
स तामुत्थाप्य शनकैः पादयोः पतितां प्रियाम् ।
उवाच वचनं रामो मधुरं परिसान्त्वयन् ॥ २८ ॥
न कामये स्वर्गमपि त्वदृते ऽहमपि प्रिये ।
न च मे ऽस्ति भयं किंचिदपि साक्षात् स्वयंभुवः ॥ २९ ॥
धर्मं तु वर्त्तितं भीरु सद्भिराचरितं जनैः ।
नातिवर्तितुमिच्छामि वेलामिव महोदधिः ॥ ३० ॥
तथा गुरुनियोगं च परं धर्मं विदुर्बुधाः ।
तं चातिक्रमितुं नालमहं शक्तः कदाचन ॥ ३१ ॥
स यथैवानुशिष्टो ऽस्मि पित्राऽऽहूय महात्मना ।

तथा वर्तितुमिच्छामि स हि धर्मः सनातनः ॥ ३२ ॥
तथा तव च जिज्ञासु र्निश्चयं शुभनिश्चये ।
उक्तवान्न नयिष्ये ऽहमिति शक्तो ऽपि रक्षितुम् ॥ ३३ ॥
यदर्थं चैव सीते त्वां नेच्छामि शुभदर्शने ।
वनवासभवैर्दुःखैर्योक्तुं त्वां सुखभागिनीम् ॥ ३४ ॥
कृतनिश्चया महाभागा वनाय मदपेक्षया ।
न त्यक्तुं त्वं मया शक्या कीर्त्तिरात्मवता यथा ॥ ३५ ॥
एहि गच्छ मया सार्धं यथा ते रुचितं प्रिये ।
इच्छामि हि प्रियं कर्तुं नित्यं ते ऽहमनिन्दिते ॥ ३६ ॥
ब्राह्मणेभ्यस्तु साधुभ्यो वासांस्याभरणानि च ।
संश्रितेभ्यस्तथाऽन्येभ्यो[*] देहि दानानि जानकि ॥ ३७ ॥
गुरुं चामन्त्रय शुभे ततो व्रज मया सह ।
इति भर्त्राऽभ्यनुज्ञाता मत्वा गमनमात्मनः ॥ ३८ ॥
क्षिप्रमेव च सा देवी दातुमेवोपचक्रमे ।
ततः प्रहृष्टा परिपूर्णमानसा यशस्विनी भर्तुरवेक्ष्य मानसम् ।
प्रचक्रमे दातुमथो मनीषिणां धनानि वासांसि च भूषणानि च ।३९।

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे सीताऽभिप्राय-
जिज्ञासा नाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

---

* कें, ल—संश्रितेभ्य० । म—संशितेभ्य०

[चतुस्त्रिंशः सर्गः]

इत्युक्त्वा राघवः सीतां समाहूय च लक्ष्मणम् ।
उवाचेदं वचः श्रीमानवेक्ष्य प्रश्रयानतम् ॥ १ ॥
प्रियः प्राणसमो भ्राता सहायश्च सखा च मे ।
तस्मात्प्रणयतो ऽहं त्वां यद्‌ब्रवीमि कुरुष्व तत् ॥ २ ॥
वनं त्वया न गन्तव्यं मया सह कथञ्चन ।
इहैव हि महाभागे[1] वोढव्यो भवताऽनघ ॥ ३ ॥
इति रामवचः श्रुत्वा लक्ष्मणो दीनमानसः ।
बाष्पपर्याकुलमुखः शोकं सोढुमशक्नुवन् ॥ ४ ॥
प्रणम्य चरणौ भ्रातुः परिरभ्य च पीडितम् ।
सीतायाश्च महाप्राज्ञस्ततो राघवमब्रवीत् ॥ ५ ॥
अनुज्ञातो ऽस्मि भवता पूर्वमेव वनं प्रति ।
वनं गन्तुमितः कस्मान्निवर्तयसि मां पुनः ॥ ६ ॥
न निवर्त्तयितव्यो ऽहं जीवन्तं मां यदीच्छसि ।
शरणं त्वां प्रपन्नो ऽस्मि प्रसीदार्य क्षमस्व माम् ॥ ७ ॥
इति ब्रुवन्तं तं रामस्ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
प्रह्वं नतेन शिरसा वेपमानं कृताञ्जलिम् ॥ ८ ॥
गते त्वयि मया सार्धं यथा ते ऽत्युचितं[2] प्रियम् ।
को भरिष्यति कौशल्यां सुमित्रां च यशस्विनीम् ॥ ९ ॥
अभिवर्षति कामैर्यो मातरौ नौ नराधिपः ।
स कामवशगो व्यक्तं न द्रक्ष्यति यथा पुरा ॥ १० ॥
स कामवशमापन्नो महाराजः पिताऽऽवयोः ।

---

[1] कं—महान् भागे । [2] म—प्युच्चितं ।

भरत राज्यमासज्य कैकेय्या वशमागतः ॥ ११ ॥
राज्यैश्वर्यमदान्धा हि कदाचिदपि कैकयी ।
असाधु प्रतिपद्येत सपत्नीनामचेतना ॥ १२ ॥
ते मातराविहस्थेन समाश्वास्य विशेषतः ।
परिपाल्ये च सौमित्रे यावदागमनं मम ॥ १३ ॥
यथैवाहं तथैव त्वं तयोरिह भविष्यसि ।
बंधुरत्तायनं चैव दुःखेभ्यश्चैव रक्षिता ॥ १४ ॥
इति रामवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः श्रीमतां वरः ।
कृताञ्जलिरिदं भूयो रामं वचनमब्रवीत् ॥ १५ ॥
मद्विधानां सहस्राणि कौशल्या विभृयाद्विभो ।
यस्याः सहस्रं ग्रामाणां निसृष्टमुपजीवनम् ॥ १६ ॥
त्वदपेक्षश्च भरतः पूजयिष्यत्यसंशयम् ।
कौशल्यां च सुमित्रां च परमं यत्नमास्थितः ॥ १७ ॥
नय मामनपेक्षस्त्वं वनवासकृतोद्यमम् ।
शिष्यः प्रेष्यः सहायश्च भविष्यामि वने तव ॥ १८ ॥
खनित्रपिटके गृह्य खड्गपाणिधनुर्धरः ।
अग्रतस्ते गमिष्यामि पन्थानं परिशोधयन् ॥ १९ ॥
वन्यानि चाहरिष्यामि पुष्पमूलफलानि च ।
शय्योपकरणार्थं च द्रुमपर्णतृणानि च ॥ २० ॥
त्वमार्य सह वैदेह्या वनवासे ऽभिरंस्यसे ।
रक्षतस्त्वां गमिष्यन्ति जाग्रतो मम रात्रयः ॥ २१ ॥
आर्य शिष्यो ऽस्मि दासो ऽस्मि भक्तो ऽस्म्यनुगतस्तथा
तवाहं सर्वदा साधो प्रसीद नय मामपि ॥ २२ ॥

वाक्येनानेन तु प्रीतो रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
आगच्छ व्रज सौमित्रे आपृच्छस्व सुहृज्जनम् ॥ २३
ये च राज्ञे ददौ दिव्ये महात्मा वरुणः स्वयम् ।
धनुषी ते गृहाण त्वमक्षय्यानिषुधींश्च तान् ॥ २४ ॥
अभेद्ये च तनुत्राणे गृहाण लघुनी शुभे ।
खड्गौ च विमलाकाशसदृशौ विमलच्छदौ ॥ २५ ॥
यच्चाचार्यगृहे नित्यं धनुस्तिष्ठति मे ऽर्चितम् ।
तदानयाथ गत्वा त्वं त्वरावानिह लक्ष्मण ॥ २५ ॥
इत्युक्तो लक्ष्मणः शीघ्रं स्वमापृच्छ्य सुहृज्जनम् ।
आचार्यकुलमागम्य ते जग्राहायुधोत्तमे ॥ २७ ॥
स ते आदाय धनुषी स खड्गे शुचिबन्धने ।
दर्शयामास रामाय निर्बबन्ध च यत्नवान् ॥ २८ ॥
तमुवाचागतं रामो लक्ष्मणं प्रियदर्शनम् ।
काले त्वमागतः शीघ्रं कांक्षिते मम लक्ष्मण ॥ २९ ॥
दातुमिच्छामि विप्रेभ्यो धनरत्नार्थसञ्चयम् ।
बहुभृत्यानल्पधनांस्तस्मादानय मे द्विजान् ॥ ३१ ॥
ये चास्मत्सुहृदो भक्ता निवसन्तीह लक्ष्मण ।
तेषां चापि प्रदास्यामि सर्वेषामुपजीवनम् ॥ ३१ ॥
वासिष्ठपुत्रं च सुयज्ञमार्यं तमानयाशु प्रवरं द्विजानाम् ।
प्रियं सखायं मम वीर्यवन्तं तं तर्पयिष्ये प्रथमं प्रदानैः ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे लक्ष्मणसन्देशो
नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

[पञ्चत्रिंशः सर्गः]

भ्रातुः शासनमाज्ञाय लक्ष्मणस्त्वरितः स्वयम् ।
सुयज्ञगृहमागम्य प्रविश्य च विनीतवत् ॥ १ ॥
अग्न्यागारमभ्येत्य सुयज्ञं लक्ष्मणोऽब्रवीत् ।
हे सुयज्ञ द्विजश्रेष्ठ सखा ते द्रष्टुमिच्छति ॥ २ ॥
श्रुत्वैतल्लक्ष्मणवचः सुयज्ञोऽतित्वरान्वितः ।
प्रविवेशाभ्युपागम्य रामवेश्म सलक्ष्मणः ॥ ३ ॥
तमागतं वेदविदं सीतया सह राघवः ।
अभ्युत्थायार्चयामास प्रदानैरभिकांक्षितैः ॥ ४ ॥
कुण्डलांगदकेयूरमुक्ताहारविभूषणैः ।
सुमहार्हैश्च वासोभि र्धनधान्यैश्च पुष्कलैः ॥ ५ ॥
तमुवाच ततो रामः सीतयाभिप्रचोदितः ।
सखायं दयितं काले सुयज्ञं वेदपारगम् ॥ ६ ॥
हारं च ते हेमसूत्रं शुभान्याभरणानि च ।
वासांसि चैव दिव्यानि ब्राह्मणैतान् प्रयच्छति ॥ ७ ॥
रांकवास्तरणं चैव पर्यंकं सर्वकाञ्चनम् ।
सपादपीठं भार्यायै सखे सीता ददाति च ॥ ८ ॥
नागं शत्रुंजयं नाम यं मह्यं मातुलो ददौ ।
तं ते ददाम्यलंकृत्य सहस्रेण गवां सह ॥ ९ ॥
प्रतिगृह्य च तत्सर्वं सुयज्ञो मन्त्रविद्धनम् ।
रामाय सह वैदेह्या संप्रायुंक्ताशिषः शुभाः ॥ १० ॥
सुयज्ञं संविभज्यैवमन्यांश्चैव हितान् द्विजान् ।

अन्येभ्यो ऽपि ददौ रामः सुहृद्भ्यःकामतो धनम् ॥ ११ ॥
भृत्यप्रेष्यजनेभ्यश्च विभवस्यानुरूपतः ।
शिल्पिभ्यश्चोपकारिभ्यो ददौ रामो महायशाः ॥ १२ ॥
ततो भ्रातरमाभाष्य लक्ष्मणं राघवो ऽब्रवीत् ।
ददस्व त्वमपि क्षिप्रं द्विजाग्रेभ्यो ऽर्हतो धनम् ॥ १३ ॥
सुहृद्भ्यश्चात्मना कामानीप्सितानपवर्जय ।
गोभिर्धनैश्च धान्यैश्च भोजनाच्छादनेन च ॥ १४ ॥
इष्टांस्तर्पय सौमित्रे ब्राह्मणान् वेदपारगान् ।
सुहृदश्चार्हतः सर्वान् कामैः संविभजेप्सितैः ॥ १५ ॥
अगस्त्यं कौशिकं चैव गार्ग्यं शाण्डिल्यमेव च ।
समाहूयाभिवर्ष त्वं धनरत्नौघवृष्टिभिः ॥ १६ ॥
*सुहृन्मां परया भक्त्या य उपास्ते सदैव सः ।
*आचार्यस्तैत्तिरीयाणां तमानय यतव्रतम् ॥ १७ ॥
*तस्मै दानानि दास्यामि रत्नानि विविधानि च ।
*रुचिराणि च वासांसि यावन्मत्तो ऽभिकांक्षति ॥ १८ ॥
सूतं चित्ररथं नाम सखायं मे त्वमानय ।
तस्मै दास्यामि विभवान् यथार्हानभिकांक्षितान् ॥ १९ ॥
ये च मे वन्दिनः सन्ति ये चान्ये परिचारिकाः ।
सर्वांस्तर्पय कामैस्तान् समाहूयाशु लक्ष्मण ॥ २० ॥
चैलप्रक्षालका ये च ये च नः श्मश्रुयोजकाः ।
अनुलेपकाः सेवकाश्च हासकाः स्नापकाश्च ये ॥ २१ ॥

* कै नास्ति ।

संवाहकाः सलिलदाः पुरतोवाचकाश्च ये ।⁰
तेषां निष्कसहस्रं त्वं वृत्त्यर्थमुपकल्पय ॥ २२ ॥
भोजनार्थं दशशतं शालीनां पृथगुत्सृज ।
व्यञ्जनार्थं च सौमित्रे गोसहस्रमुपाकुरु ॥ २३ ॥
मल्लानां योधकानां च रथोद्वर्त्तनशालिनाम् ।
क्रीडकानां च निष्कानां सहस्रमपवर्जय ॥ २४ ॥
कौशल्यां प्रेष्यवर्गश्च यः शुश्रूषति लक्ष्मण ।
सुमित्रां चैव तस्मै त्वं सहस्रे द्वे समुत्सृज ॥ २५ ॥
भिक्षाभुजो द्विजा ये च कौशल्यां मातरं मम ।
पर्युपासन्ति ये तेभ्यो द्वे सहस्रे समुत्सृज ॥ २६ ॥
तथैव च सुमित्रां ये भिक्षवः समुपासते ।
तेभ्यश्चैव द्विजातिभ्यः सहस्रमपवर्जय ॥ २७ ॥
न सीदति यथा कश्चिन्मयि विप्रोषिते वनम् ।
अनुजीविजनः सौम्य तथा त्वं कर्तुमर्हसि ॥ २८ ॥
न मे ऽस्त्यदेयं साधुभ्यो मन्त्रविद्भ्यो हि लक्ष्मण ।
यो मे ऽस्ति विभवः कश्चित्तं विश्राणय सर्वशः ॥ २९ ॥
यथोद्दिष्टं ददौ तेभ्यः क्रमवित्क्रमजीवितम् ।
संविभज्य ततो रामः सर्वानाहूय सो ऽब्रवीत् ॥ ३० ॥
कार्या भवद्भिर्नोत्कण्ठा रक्ष्यं चेदं गृहं मम ।
लक्ष्मणस्य च यत्नेन यावदागमनं मम ॥°३१ ॥
अनुजीविजनं राम इत्युक्त्वा शोककर्षितम्¹ ।

⁰ ल । ° ल । 1 ल—कोशवर्धितम् ।

धनाध्यक्षानुवाचेदं समाहूय पुनर्वचः ॥ ३२ ॥
यदस्ति वित्तशेषं मे सर्वमेवावशेषतः ।
आनयध्वं प्रदास्यामि तदप्यहमशेषतः ॥ ⁰३३ ॥
इत्युक्ताः समुपाजह्रुर्धनशेषमशेषतः ।
रामाज्ञया धनाध्यक्षाः समुपादाय सर्वतः ॥ ३४ ॥
तद्धनं विकलानाथकृपणेभ्यश्च राघवः ।
दरिद्रेभ्यश्च साधुभ्यो ददौ सर्वमशेषतः ॥ ३५ ॥
अथ वृद्धो दरिद्रश्च बहुभृत्यजनो द्विजः ।
उपायाद्भिक्षितुं रामं त्रिजटो नाम विश्रुतः ॥ ३६ ॥
स रामभवनं प्राप्य प्रविश्याथानिवारितः ।
उवाच राममासाद्य वेपमान इदं वचः ॥ ३७ ॥
दरिद्रोऽस्म्यसमर्थश्च बालपुत्रश्च राघव ।
मामाप्यर्हसि वित्तेन संविभक्तुं यथार्हतः ॥ ३८ ॥
तमुवाच ततो रामो वृद्धं परिहसन्निव ।
विप्रमाङ्गिरसं दीनं वित्तार्थिनमुपागतम् ॥ ३९ ॥
गवां सहस्रमस्त्येव यदविश्राणितं मया ।
ततो गृहाण यावत्त्वं स्वयं शक्नोषि रक्षितुम् ॥ ४० ॥
इति रामवचः श्रुत्वा त्रिजटो रामसन्निधौ ।
स ह्यात्मनो दृढां कक्ष्यां बद्ध्वा संभ्रान्तमानसः ॥ ४१ ॥
दण्डमुद्यम्य सहसा प्रतस्थे गोधनं प्रति ।
वृद्धभावाद्वेपमानो गाः स कालयितुं स्वयम् ॥ ४२ ॥
तमुवाच ततो रामस्त्रिजटं द्विजसत्तमम् ।

⁰ ळ ।

परिहासः कृतो ब्रह्मन् निवर्त्तस्व किमिच्छसि ।
एतच्चैव सहस्रं ते गवां गोपैरहं सह ॥ ४४ ॥
धनं दास्यामि भूयश्च यावदिच्छसि शाधि माम् ।
इत्युक्तस्त्रिजटो वव्रे यजेयमिति राघव ॥ ४५ ॥
तस्मै रामो ददौ द्रव्यं प्रभूतं यज्ञसिद्धये ।
स तं सभार्यस्त्रिजटो यथेप्सितं प्रतिग्रहं प्राप्य समृद्धमानसः ।
प्रशस्य रामं मुदितो जगाम ह प्रजासु रामस्य यशः प्रकाशयन् ॥४६॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे वित्तविश्राणनं नाम पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

[षट्त्रिंशः सर्गः]

दत्त्वा तु सह वैदेह्या ब्राह्मणेभ्यो धनानि सः ।
जगाम पितरं द्रष्टुं सीतया सह राघवः ॥ १ ॥
आयुधानि गृहीत्वाऽसौ सर्वोपकरणानि च ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा तस्मान्निष्क्रम्य वेश्मनः ॥ २ ॥
तौ गृहीताऽऽयुधौ वीरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
राजमार्गं समेयातां सीतयाऽनुगतौ तदा ॥ ३ ॥
ततश्च वेश्मशृंगाणि हर्म्याणि च समन्ततः ।
ददृशुस्तौ तदारुह्य पौरजानपदास्त्रियः ॥ ४ ॥
अन्तरं राजमार्गे च नासीज्जनपदावृते ।
तदातुरास्ते प्रस्थाने रामस्यामिततेजसः ॥ ५ ॥
पदातिं तं समायातं सभार्यं सहलक्ष्मणम् ।
ऊचुर्दृष्ट्वा बहुविधा वाचो दुःखसमन्विताः ॥ ६ ॥
अनुप्रयाति यं यान्तं चतुरङ्गं महद्बलम् ।
तमिमं सीतया सार्धमनुगच्छति लक्ष्मणः ॥ ७ ॥
सुखैश्वर्यरसज्ञोऽपि भक्तिमानतिवीर्यवान् ।
अनृतं पितरं कर्तुं धर्मात्मा नायमिच्छति ॥ ८ ॥
या न शक्या पुरा द्रष्टुं देवैराकाशगैरपि ।
सीतां तामद्य पश्यन्ति राजमार्गे पृथग्जनाः ॥ ९ ॥
सहजेनांगरागेण भूषितां वरवर्णिनीम् ।
विवर्णतां नयिष्यन्ति सीतां शीतोष्णवायवः ॥ १० ॥

नूनं दशरथो ऽन्येन भूतेनाविष्टचेतनः ।
यथा विवासयेदद्य प्रियं पुत्रमकारणम् ॥० ११ ॥
यदि हि स्यादनाविष्टः सत्त्वेनान्येन केनचित् ।०
कथं विवासयेदेनमकस्माद्गुणसागरम् ॥०१२ ॥
को ह्यार्यो निर्गुणमपि त्यजेत्पुत्रमचेतनः ।०
किमु यस्य गुणैः कृत्स्नैर्लोकोऽयमनुरञ्जितः ॥ १३ ॥
आनृशंस्यं क्षमा शीलं श्रुतं सत्यं पराक्रमः ।
शोभयन्ति गुणा राममेते सुप्रस्थिता भुवि ॥ १४ ॥
विवासेनाद्य[1] तेनास्य[1] दुःखितोऽद्य महाजनः ।
औदकानीव सत्त्वानि सलिलस्य परिक्षयात् ॥ १५ ॥
लोकनाथस्य रामस्य पीडया पीडितं जगत् ।
अपर्वणीव सोमस्य राहुग्रहनिपीडया ॥ १६ ॥
परिभोगप्रसादानां परित्राणसुखस्य च ।
तथाऽभयप्रदानस्य दाता गच्छति नो वनम् ।ः १७ ॥
साधुलक्ष्मणवत्सर्वे त्यक्तभोगपरिग्रहाः ।
राममेवानुगच्छामः किं नो दारैर्धनेन वा ॥ १८ ॥
सपुत्रधनदाराश्च सपशुद्रव्यसंचयाः ।
गच्छामस्तत्र यत्रायं साधु गच्छति राघवः ॥ ११ ॥
विहारोद्यानशयनं सवरासनसाधनम् ।
परित्यज्यानुगच्छामस्तुल्यदुःखा नृपात्मजम् ॥ २० ॥
समुद्धृतनिधानानि शीर्णध्वस्तोच्छ्रयाणि च ।
प्रक्षीणधान्यकोषाणि हीनसंमार्जनानि च ॥ २१ ॥

---

0 कै । 1 म—०सेनास्य तेनद्य ।

पिशाचप्रेतरक्षोभि र्जुष्टान्युच्छिष्टभोजनैः ।
अलक्ष्मीन्यमनोज्ञानि परित्यक्तानि दैवतैः ॥ २२ ॥
अस्मत्त्यक्तानि वेश्मानि कैकेयी प्रतिपद्यताम् ।
वनं नगरमेवास्तु यत्र गच्छति राघवः ॥ २३ ॥
अस्माभिस्तु परित्यक्तं पुरं संपद्यतां वनम् ।
यत्र वत्स्यति रामोऽयं पुरं तत्र भविष्यति ॥ २४ ॥
विलानि दंष्ट्रिणः सर्पा वनानि मृगपक्षिणः ।
अस्मत्त्यक्तं प्रपद्यन्तां सेव्यमानं त्यजन्तु च ॥ २५ ॥
एताश्चान्याश्च विविधा वाचः पौरजनेरिताः ।
शृण्वन् रामो ययौ मार्गे वनवासकृतोद्यमः ॥ २६ ॥
अवेक्षमाणोऽपिजनं तदाऽऽर्त्तमनार्त्तरूपः प्रहसन्निवाथ ।
जगाम रामः पितरं दिदृक्षुः सत्यप्रतिज्ञं पितरं चिकीर्षुः ॥२७॥
आसाद्य चेक्ष्वाकुकुलप्रदीपो रामः पितुर्वेश्म तथाऽऽर्यवृत्तः ।
व्यतिष्टत प्रेक्ष्य ततो नियोगे स्थितं सुमन्त्रं प्रतिहारमिष्टम् ॥२८॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे पौरवाक्यं नाम षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

[सप्तत्रिंशः सर्गः]

प्रागेवानागते रामे सभार्ये सहलक्ष्मणे ।
अनन्तरमतीवार्तो विललापाकुलो नृपः ॥ १ ॥
हन्तानार्ये ममामित्रे सकामा भव कैकयि ।
मृते मयि गते रामे वनं मनुजकुञ्जरे ॥ २ ॥
त्यजामि भरतं त्वां च जीवितं चेदमात्मनः ।
प्रशाधि विधवा राज्यं निर्घृणे रहिता मया ॥() ३ ॥
अहं हिनोमि रामेण त्यक्तो जीवितमात्मान्नः ।
न भविष्यामि ते पापे भूयो ऽप्येवं वशानुगः ॥ ४ ॥()
केन मन्त्रयसे मूढे किं समर्थयसे शुभम् ।
मम जीवितनाशाय कस्येदं मतमीदृशम् ॥ ५ ॥()
अरण्यं व्रजतां रामो भरतश्चाभिषिच्यताम् ।
इति कस्य मतं पापं मन्नाशाय दुरात्मनः ॥ ६ ॥()
बालो ऽप्यसौ कथं राज्यं भरतः कारयिष्यति ।
ज्येष्ठे तिष्ठति राज्यार्हे रामे राजीवलोचने ॥ ७ ॥
अज्ञाता कालरात्रीव भार्यारूपेण कैकयि ।
कथं त्वं क्षीणपुण्येन मयोढा मन्दबुद्धिना ॥ ८ ॥
व्याली घोरविषेव त्वं मयाऽबुद्ध्वा निषेविता ।
त्वया दष्टो वियुज्येऽहं प्राणैरिष्टैः सुतेन[1] च[1] ॥ ९ ॥
स्त्रीणां धिगस्त्वनार्याणां कृतघ्नानां विशेषतः ।
त्यजन्ति वशगान् भर्तॄन् या लुब्धा राज्यकाम्यया ॥ १० ॥

() म । 1 ल—सुनेः सुते ।

निर्घृणे निरनुक्रोशे कीदृशं हृदयं तव ।
शरणागतं[2] याचमानं यस्मान्मां त्यक्तुमिच्छसि ॥ ११ ॥
माऽयं नृशंसे ते लोकः परो वाऽस्तु सुखावहः ।
यन्मां प्रियेण पुत्रेण वियोजयसि दुःखितम् ॥ १२ ॥
उचितः शिविका-यानं रथयानं च मे सुतः ।
कान्तारवनदुर्गाणि कथं पद्भ्यां गमिष्यति ॥ १३ ॥
स्वादूनामन्नपानानामुचितो ऽयं ममात्मजः ।
सुकुमारो विलासी च मृष्टाभरणभूषितः ॥ १४ ॥
कषायाणि च वन्यानि मूलानि च फलानि च ।
वल्कलाजिनसंवीतः स कथं भक्षयिष्यति ॥ १५ ॥
अपि नाम स धर्मात्मा विनीतो गुरुवत्सलः ।
मयाऽसि पितृमान् पुत्र स्त्रीवशेनाकृतात्मना ॥ १६ ॥
शीलवृत्तगुणज्येष्ठं प्राणेभ्यो ऽपि प्रियं सुतम् ।
कथं त्यक्तुं गुणारामं रामं ध्यायेत मे मनः ॥ १७ ॥
नृशंसो ऽहमनार्यो ऽहं सर्वथैव धिगस्तु माम् ।
शुश्रूषुं स्त्रीजितः पुत्रं दयितं यस्त्यजाम्यहम् ॥ १८ ॥
किं मां वक्ष्यति लोको ऽयं नृशंसं पापकारिणम् ।
वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिः कश्यपस्तथा ॥ १९ ॥
किं मां वक्ष्यन्ति श्रुत्वेदं तथा ऽन्ये ब्रह्मवादिनः ।
विश्वामित्रादयः सिद्धास्तपोवननिवासिनः ॥ २० ॥
पृथिव्यां पृथिवीपालाः किं मां वक्ष्यन्ति साधवः ।

---

[2] ल—चरणागतं ।

युक्तो ऽस्म्ययशसा लोके पतितश्चास्मि सर्वथा ॥ २१ ॥
कैकेय्यै राज्यलुब्धायै अतिसृज्य वरद्वयम् ।
हा हतोऽस्मि विनष्टोऽस्मि दग्धोऽस्मि चपलेन्द्रियैः ॥ २२ ॥
कैकेय्या वशमापन्नः पापायाः पापमोहितः ।
गुरुभिर्ब्रह्मचर्यैश्च कृच्छ्रैर्बालो ऽपि कर्षितः ॥ २३ ॥
सुखकाले ऽद्य पुत्रो मे दुःखमेवोपभोक्ष्यते ।
अनियोज्यैव दुःखेषु रामं राजीवलोचनम् ॥ २४ ॥
तदैव मरणं[3] मे स्याद्यदि पापं च[4] नाप्नुयाम्[4] ।
इति राजा दशरथः पुत्रशोकाकुलेन्द्रियः ॥ २५ ॥
अनिन्ददात्मनाऽऽत्मानं सुरां पीत्वेव वेदवित् ।
एवं विलपतस्तस्य दुःखार्तस्य महीपतेः ॥ २६ ॥
उपेत्यावेदयामास सुमन्त्रो राममागतम् ।
ततः स राजा समुपागतं सुतं सुमन्त्रतो वेत्य भृशार्तमानसः ।
प्रवेश्यतामाश्विति तं तदा वचः सुमन्त्रमुद्वीक्ष्य तदाऽभ्यधात्प्रभुः॥२७

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे दशरथविलापो

नाम सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

3 ब—शरणं । ल—सरणं । 4 म—न चाप्नुयाम् ।

[अष्टात्रिंशः सर्गः]

प्रवेश्यतां राम इति वाक्यमुक्त्वा नराधिपः ।
तीव्रशोकसमाविष्टो भूयो मोहमुपागमत्[1] ॥ १ ॥
मुहूर्त्तमिव निश्चेष्टो भूत्वा मोहपरायणः ।
प्रतिलेभे ततः संज्ञां सिंहासनगतो नृपः ॥ २ ॥
लब्धसंज्ञं च तं भूयः सुमन्त्रः पृथिवीपतिम् ।
उपेत्य प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाचेदं सुदुःखितः ॥ ३ ॥
दत्त्वा धनानि विप्रेभ्यो भृत्येभ्यश्चोपजीवनम् ।
स्वरश्मिभिरिवादित्यः ख्यातो लोके गुणांशुभिः ॥ ४ ॥
आज्ञां ते शिरसाऽऽदाय वनं गन्तुं कृतक्षणः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च नराधिप ॥ ५ ॥
द्रष्टुं ते ऽभ्यागतः पादौ तं पश्य यदि मन्यसे ।
इति राजा सुमन्त्रस्य श्रुत्वा वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
आकाश इव शुद्धात्मा निश्चयो ऽयं सुदुःखितः ।
सुमन्त्रानय मे क्षिप्रं यावन्तो हि परिग्रहाः ॥ ७ ॥
दारैः परिवृतस्तं हि द्रष्टुमिच्छामि राघवम् ।
इत्युक्तो ऽन्तःपुरं गत्वा सुमन्त्रो वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥
आर्याः[2] क्रन्दति राजा नश्चिरं[3] तत्र हि गम्यताम् ।
एवमुक्ताः स्त्रियः सर्वाः सुमन्त्रेण त्वराऽन्विताः ॥ ९ ॥
तत्राजग्मुर्नृपं द्रष्टुं भर्तुराज्ञाय शासनम् ।

---

1 कै. म. ल. ब—०मुपागतम् । ०मुपागमत् इति कै कोषे विभिन्न- मस्यां संशोधितम । 2 ब. म—आर्या । 3 ल—न चिरं ।

अर्द्धसप्तशता नार्यो रूपवत्यः स्वलंकृताः ॥ १० ॥
उपयुस्ताः पतिं द्रष्टुं कैकेय्या सहितं तदा ।
समवेक्ष्यागतान् दारानशेषेण ततो नृपः ॥ ११ ॥
सुमन्त्रानय मे क्षिप्रं पुत्रमित्यभ्यभाषत ।
ततः सुमन्त्रस्त्वरितो रामं लक्ष्मणमेव च ॥ १२ ॥
प्रवेशयामास गृहं राज्ञस्तां चैव मैथिलीम् ।
दृष्ट्वैव च तमायान्तं दूराद्रामं कृताञ्जलिम् ॥ १३ ॥
उत्पपातासनादार्त्तो राजा स्त्रीसंवृतस्तदा ।
आगच्छ पुत्र रामेति परिष्वक्तुमुपागतम् ॥ १४ ॥
अप्राप्यैव च संभ्रान्तः पपात नृपतिः सुतम् ।
सीदन्तं तं समभ्येत्य रामः संभ्रान्तमानसः ॥ १५ ॥
अप्राप्तमेव धरणीं परिगृह्याङ्कमास्थितम् ।
शनैरुत्थाप्य संमूढं तस्मिन्नेवासने पुनः ॥ १६ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च न्यवेशयत् ।
वीजनेनोपवेश्यैनं वीजयामास मूर्च्छितम् ॥ १७ ॥
ततः स्त्रीणां महान्नादः[1] संजज्ञे राजवेश्मनि ।
मुहूर्तादिव तं रामो लब्धसंज्ञं महीपतिम् ॥ १८ ॥
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा शोकार्णवपरिप्लुतम् ।
आपृच्छे त्वां महाराज सर्वेषामीश्वरो ऽसि नः ॥ १९ ॥
प्रस्थितं वनवासाय संपश्य कुशलेन माम् ।
लक्ष्मणं चानुजानीहि वैदेहीं च महीपते ॥ २० ॥

[1] म, ल—महानादः

निवर्त्यमानावपि हि न निवर्त्याविमौ मया ।
अतो नो वनवासाय गमने कृतनिश्चयान् ॥ २१ ॥
लक्ष्मणं मां च सीतां च समनुज्ञातुमर्हसि ।
अनुज्ञाकांक्षिणं राममिति मत्वा महीपतिः ॥ २२ ॥
उवाच प्रेक्ष्य दीनात्मा बाष्पपर्याकुलेक्षणः ।
वरप्रदानात्कैकेय्या पुराऽहं राम वंचितः ॥ २३ ॥
तस्मान्निगृह्य मां मूढं राजा भवितुमर्हसि ।
एवमुक्तो नृपतिना रामो धर्मभृतां वरः ॥ २४ ॥
पितरं प्रणिपत्येदं प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ।
भवान्पिता गुरुश्चैव राजा भर्ता प्रभुश्च मे ॥ २५ ॥
दैवतं पूजनीयश्च गरीयान् धर्मएव च ।
भवन्नियोगे स्थातव्यं मया राजन् प्रसीद मे ॥ २६ ॥
न निवर्तयितव्योऽहं भव सत्यप्रतिश्रवः ।
राजा वर्षसहस्राय भवानेवास्तु नः प्रभो ॥ २७ ॥
यथा त्वया प्रतिज्ञातं कैकेय्यास्तत्तथा कुरु ।
त्वां चेत्कृत्वाऽहमनृतं राज्यमिच्छेयमित्युत ॥ २८ ॥
त्रैलोक्यस्यापि कृत्स्नस्य न तत्काले भविष्यति ।
श्रुत्वा तु वचनं रामात्सत्यपाशगतो नृपः ॥ २९ ॥
उवाच करुणं वाक्यं बाष्पगद्गदया गिरा ।
निश्चितं यदि ते राम मत्प्रियार्थमितो वनम् ॥ ३० ॥
गन्तुं पुरादितः पुत्र ततो गच्छ मया सह ।
न हि त्वया विरहितो राम जीवितुमुत्सहे ॥ ३१ ॥

मया त्वया च रहिते राजाऽस्तु भरतः पुरे ।
इति ब्रुवाणं नृपतिं रामो वचनमब्रवीत् ॥ ३२ ॥
नार्हसि त्वमितो गन्तुं मया सह वनं प्रभो ।
नानुवृत्तिस्त्वया कार्या मम राजन् कथंचन ॥ ३३ ॥
प्रसीद तात धर्मेण योक्तुमर्हसि नो भवान् ।
सत्यप्रतिज्ञमात्मानं कर्तुमर्हसि मानद ॥ ३४ ॥
स्वधर्मं स्मारयामि त्वां राजन्नोपदिशामि ते ।
स्वधर्मतोऽद्य मत्स्नेहाच्च्यवितुं न त्वमर्हसि ॥ ३५ ॥
एवमुक्तो दशरथो रामं वचनमब्रवीत् ।
कीर्तिमायुर्बलं शौर्यं धर्मं चाप्नुहि शाश्वतम् ॥ ३६ ॥
यशसो वृद्धये भूयः पुनरागमनाय च ।
अरिष्टं गच्छ पन्थानं मत्सत्यं परिपालयन् ॥ ३७ ॥
इमां तु रजनीमेकामिह त्वं वस्तुमर्हसि ।
अद्य भुक्त्वा मया सार्धं भोगानिष्टान्धनानि च ॥ ३८ ॥
समाश्वास्य सुदुःखार्तां मातरं वै गमिष्यसि ।
इति रामो वचः श्रुत्वा पितुरार्तस्य धीमतः ॥ ३९ ॥
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा राजानं शोकविह्वलम् ।
समुत्सृज्य सुखं भूयो न निवर्त्तितुमुत्सहे ॥ ४० ॥
यानद्य भोगान् प्राप्स्यामि को मे श्वस्तान् प्रदास्यति[5] ।
तस्माद्गमनमेवाहं वृणोमि न निवर्तितुम् ॥ ४१ ॥
धन-रत्न-चिता भूमिरियं सद्रव्यसञ्चया ।

---

5 कै—प्रशाम्यति ।

सहस्त्यश्वरथग्रामा भरताय प्रदीयताम् ॥ ४२ ॥
त्यजेयं दयितान् प्राणानिष्टान् भोगान् धनानि च ।
भवन्तमनृतं कर्तुं न त्विच्छेयं कदाचन ॥ ४३ ॥
अपगच्छतु ते दुःखं नृपते मद्वियोगजम् ।
क्षुभ्यन्ति त्वद्विधा नैवं साधवः सागरोपमाः ॥ ४४ ॥
न राज्यप्राप्तिमिच्छामि न सुखानि महीपते ।
त्वत्प्रतिज्ञातमिच्छामि सत्यं कर्तुं प्रशाधि माम् ॥ ४५ ॥
अनुजानीहि मां शीघ्रं वनवासकृतोद्यमम् ।
अनुग्रहं परं मन्ये त्वत्सत्यपरिपालनम् ॥ ४६ ॥

इयं सराष्ट्रा सपुरा च मेदिनी मया विसृष्टा भरताय दीयताम् ।
अहं च सत्यं भवतोऽनुपालयन् वनं गमिष्यामि तपो निषेवितुम् ४७
मयाविसृष्टां भरतो महीमिमां सहाद्रिशैलां सपुरां सकाननाम् ।
शिवां सुसीमामनुशास्तु वीर्यवांस्त्वया यदुक्तं नृपते तथास्तु तत् ४८
तथा न मे पार्थिव धीयते मनो महत्स्वपि प्रीतिसुखेषु वर्तितुम् ।
यथा निदेशे तव शिष्टसम्मते व्यपेतु दुःखं तव मद्वियोगजम् ॥४९॥
इदं हि नैवानघ राज्यमव्ययं न चापि भोगानि सुखानि कामये ।
न जीवितं त्वामनृतेन योजयन् वृणोमि राजन् सुकृतेन ते शपे ॥५०॥
फलानि मूलानि च भक्षयन् वने गिरींश्च पश्यन् सरितः सरांसि च ।
वने निवत्स्यामि सुखी गतज्वरो व्यपेतु[^1] दुःखं तव मद्वियोगजम् ५१

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे दशरथसमाश्वासनं
नामाष्टात्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

[^1]: व—व्यपैतु ।

[एकोनचत्वारिंशः सर्गः]

ततः सुमन्त्रं नृपतिः पीडितः स्वप्रतिज्ञया ।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य शशासाहूय मन्त्रिणम् ॥ १ ॥
चतुरङ्गं बलं भूरि शस्त्राभरणभूषितम् ।
राघवस्यानुयात्रार्थं क्षिप्रमेवोपकल्प्यताम् ॥ २ ॥
रूपयौवनशालिन्यो विलासिन्यो महाधनाः ।
अनुयान्तु कुमारस्य रत्यर्थं रुचिराननाः ॥ ३ ॥
सुहृदो ये ऽनुरक्ताश्च रामं राजीवलोचनम् ।
ते चैनमनुगच्छन्तु संविभक्ता महाधनैः ॥ ४ ॥
कोशाध्यक्षाश्च ते सर्वे कोशमादाय सर्वशः ।
गच्छन्तमनुगच्छन्तु रामं राजीवलोचनम् ॥ ५ ॥
मृगयां विहरन् भोगान् भुञ्जंश्चायमभीप्सितान् ।
वनेष्वपि वसन् रामो मुक्त्वा राज्यं सुखानि च ॥ ६ ॥
यावान्मद्विभवः कश्चिद् यावदस्त्युपजीवनम् ।
अशेषेणैव तत्सर्वं राममेवानुगच्छतु ॥ ७ ॥
ददद्दानानि तीर्थेषु विसृजंश्च धनानि मे ।
रामो ऽयं वनवासे ऽपि राज्यधर्मं समश्नुताम् ॥ ८ ॥
भरतो ऽप्युद्धृतधनामयोध्यां पालयिष्यति ।
सर्वकामैः पुनः श्रीमान् रामः संपद्यतां वनम् ॥ ९ ॥
ब्रुवत्येवं दशरथे कैकेय्या भयमस्पृशत् ।
आस्यं शुशोष चैवास्याः स्वरश्चैव व्यभिद्यत ॥ १० ॥
सा विवर्णमुखा दीना राजानमिदमब्रवीत् ।

संरंभामर्षताम्राक्षी क्रोधपर्याकुलेक्षणा ॥ ११ ॥
हृतसारमिदं राष्ट्रं पीतमण्डां सुरां यथा ।
दत्त्वाऽप्यश्रद्धया मे त्वं भविष्यस्यनृती नृप ॥ १२ ॥
एवं नृशंसया भूयो वाक्शरैरभिपीडितः ।
कैकेय्या दुःखितो राजा तामिदं वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥
वहन्तां त्रै धुरं गुर्वीमसह्यां साधुगर्हिताम् ।
नृशंसे किं तुदसि मां वाक्प्रतोदैः पुनः पुनः ॥ १४ ॥
एवं ब्रुवन्तं राजानं कैकेयी पुनरब्रवीत् ।
पापस्वभावा वचनं परुषं घोरनिश्चया ॥ १५ ॥
तवैव पूर्वः सगरो ज्येष्ठं पुत्रं किलात्यजत् ।
असमञ्जसमत्युग्रं तथा त्वं राघवं त्यज ॥ १६ ॥
एवमुक्तो धिगित्युक्त्वा राजा दशरथस्तदा ।
दध्यौ व्रीडाऽन्वितः किञ्चिच्छिरः संकंपयन्निव ॥ १७ ॥
ततो वृद्धो महामात्यः सिद्धार्थो नाम विश्रुतः ।
भृशं बहुमतो राज्ञः कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥ १८ ॥
पुरा ऽसमंजसं देवि सगरः पृथिवीपतिः ।
हेतुना त्यक्तवान् येन ब्रुवतस्तन्निबोध मे ॥ १९ ॥
असमञ्जाः समादाय पौराणां दारकान् गले ।
सरय्वामाशु चिक्षेप दौःशील्यादिति मे श्रुतम् ॥ २० ॥
तेन विप्रकृताः क्रुद्धाः पौराः सगरमब्रुवन् ।
असमञ्जमसेकं वा त्यजास्मान्वा महीपते ॥ २१ ॥

---

1 कै. म—तथैव ।

तानुवाच ततो राजा किं कारणमिति प्रभुः ।
तं तथा रुषिताः सर्वे पौरा राजानमब्रुवन् ॥ २२ ॥
पुत्रस्तवैष दौःशील्यादेवं किल स दारकान् ।
गले क्रोशत आदाय सरय्वां क्षिपति प्रभो ॥ २३ ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा पौराणां सगरो नृपः ।
तत्याज दयितं पुत्रं तेषां स प्रियकाम्यया ॥ २४ ॥
अविनीतमेवं नृपतिः सगरस्त्यक्तवान् सुतम् ।
गुणवन्तं सुतं राजा रामं त्यक्ष्यत्ययं कथम् ॥ २५ ॥
इति सिद्धार्थवचनं श्रुत्वा दशरथो नृपः ।
शोकव्याकुलया वाचा कैकेयीमिदमब्रवीत् ॥ २६ ॥
अनुव्रजामि स्वयमेव रामं राज्यं परित्यज्य सुखानि चैव ।
त्वमप्यनार्ये भरतेन सार्धं यथा सुखं भुङ्क्ष्व चिराय राज्यम् ॥२७॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे सिद्धार्थवाक्यं नामैकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

[चत्वारिंशः सर्गः]

कैकेय्या वचनं श्रुत्वा पितुर्दशरथस्य च ।
अन्वभाषत धर्मात्मा रामस्तत्र महामनाः ॥ १ ॥
त्यक्तसर्वस्वभोगस्य[1] वन्याहारनिषेविणः[2] ।
अनुयात्रेण मे कार्यं किं राजन्[3] विजने वने ॥ २ ॥
यो हि हित्वा द्विपश्रेष्ठं गजकक्ष्यां वहेन्नृप ।
किं कार्यमृडया तस्य त्यजतः कुञ्जरोत्तमम् ॥ ३ ॥
तथा मम वियुक्तस्य ध्वजिन्या किं प्रयोजनम् ।
सर्वमेवानुजानामि चीराण्येव तु केवलम् ॥ ४ ॥
खनित्रपिटके चोभे मशिक्के वरये नृप ।
चतुर्दश हि वर्षाणि वने वत्स्यामि निर्जने ॥ ५ ॥
अथ चीराणि कैकेयी स्वयमादाय राघवम् ।
उवाच परिधत्स्वेति निर्लज्जं[4] जनसंसदि[4] ॥ ६ ॥
परिगृह्य तु[5] ते चीरे कैकेय्या हस्ततस्ततः ।
विहाय वाससी सूक्ष्मे रामः परिदधे स्वयम् ॥ ७ ॥
अन्वेव लक्ष्मणश्चापि विहाय वसने शुभे ।
चीरे परिदधे वीरस्तथैव पितुरग्रतः ॥ ८ ॥
अथात्मपरिधानाय पीते[6] कौशेयवाससी ।
दृष्ट्वा समुद्यते चीरे कैकेय्या जनकात्मजा ॥ ९ ॥
लज्जमाना स्थिता पार्श्वे रामस्य शुभदर्शना ।

---

1 म—०सर्वस्व०। 2 कै, व—०निवासिनः। 3 म—राजन् किं कार्यं। 4 म—निर्लज्जा जनसंसदि। 5 म—च। 6 म—पीत—।

जग्राह भृशमुद्विग्ना मृगी दृष्ट्वेव वागुराम् ॥ १० ॥
परिगृह्य च ते चीरे सीता बाष्पाभिलक्षणा ।
गन्धर्वराजप्रतिमं भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ ११ ॥
आर्यपुत्र कथं चीरमहं बध्नामि शंस मे ।
इत्युक्त्वा चीरमेकं सा स्वस्मिन् स्कन्धे समासजत्[१] ॥ १२ ॥
द्वितीयं वै परिदधे चीरमादाय मैथिली ।
तां चीरवसनां दृष्ट्वा भर्तृनाथामनाथवत् ॥ १३ ॥
प्रचुक्रुशुः स्त्रियः सर्वा धिग्धिगित्येव चाब्रुवन् ।
तं विक्रन्दं नृपः श्रुत्वा स्वस्त्रीभिः समुदीरितम् ॥ १४ ॥
चिच्छेद जीवितश्रद्धां सुखश्रद्धां च दुःखितः ।
स निःश्वस्योष्णमिक्ष्वाकुर्भार्यां तामिदमब्रवीत् ॥ १५ ॥
रामस्यैकस्य गमने वरं याचितवत्यसि ।
न सौमित्रेर्न जानक्या नृशंसे दुष्टचारिणि ॥ १६ ॥
किमर्थमनयोश्चीरे ददास्यशुभदर्शने ।
पापे पापसमाचारे नृशंसे कुलपांसनि[२] ॥ १७ ॥
कैकेयि न च सौमित्रिर्न सीता गन्तुमर्हति ।
ननु पर्याप्तमेतावत् पापे रामविवासनम् ॥ १८ ॥
किं ते भूय इदं कर्तुं मति निरयगामिनि ।
इति ब्रुवाणं पितरं रामः संप्रस्थितो वनम् ॥ १९ ॥
अवाक्शिरसमासीनमिदं वचनमब्रवीत् ।
इयं धर्मज्ञ कौशल्या माता मम तपस्विनी ॥ २० ॥

[१] ब—समासृजत् । [२] ल —०पांसिनि ।

वृद्धा चाक्षुद्रशीला च सुभृशं त्वामनुव्रता ।
मद्वियोगाद् भृशं राजन्निमग्ना शोकसागरे ॥ २१ ॥
मदनुग्रहार्थं कृपणा त्वत्तो रक्षणमर्हति ।
यथा न दुःखितेयं स्यात्त्वया नाथेन नाथिनी ॥ २२ ॥
मदपेक्षया तथा राजन् सदेमां द्रष्टुमर्हसि ।
इमां महेन्द्रोपम तात दुःखितामवेक्षितुं[9] त्वं जननीं ममर्हसि ।
यथा वनस्थे मयि शोककर्षिता न जीवहीना यमसादनं व्रजेत् ॥ २३ ॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे रामस्य[10] चीरपरिग्रहो नाम चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

9 कै, ब, ल—दुःखितां अवेक्षितुं । 10 म—राम— ।

[एकचत्वारिंशः सर्गः]

मुनिवेशधरं रामं दृष्ट्वैवंवादिनं नृपः ।
भार्याभिः सह सर्वाभिः शुशोच च रुरोद च ॥ १ ॥
न चैनं शोकदुःखार्तः शशाकाभिनिरीक्षितुम् ।
न चाभिभाषितुं[1] राजा शशाकैनं सुदुःखितः ॥ २ ॥
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा दुःखमीलितलोचनः ।
विललापातुरो दीनो राममेवानुचिन्तयन् ॥ ३ ॥
नूनं मया कृताः पूर्वं विपुत्राः पुत्रवत्सलाः ।
यथा पुत्र वियुज्ये ऽहं त्वयाऽतिकृपणो ऽवशः ॥ ४ ॥
अकाले देहिनां मृत्युर्नूनं तावन्न विद्यते ।
वियुज्यमानो यन्मृत्युं नाधिगच्छाम्यहं त्वया ॥ ५ ॥
लोककान्तं प्रियं पुत्रं कुशचीरधरं वनम् ।
प्रस्थितं पश्यतो मे ऽद्य हृदयं किं न दीर्यते ॥ ६ ॥
यत्र पुत्र मया काले लालनीयो ऽसि सर्वदा ।
दुःखे महति तत्र त्वां योजयामि धिगस्तु माम् ॥ ७ ॥
एकस्याः खलु कैकेय्याः कृते ऽयं दुःखितो जनः ।
इत्युक्त्वा निपपातोर्व्यां राजा मूर्च्छां जगाम च ॥ ८ ॥
संज्ञां च प्रतिलभ्याथ मुहूर्तात् स महीपतिः ।
अश्रुपूर्णेक्षणो वाक्यं सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥
युक्त्वा रथं मदीयं त्वं शीघ्रमानय वाजिभिः ।
तेन प्रापय मे पुत्रं वनं मुनिजनप्रियम् ॥ १० ॥

---

1 ब, म, ल—०भाषितं ।

एतन्मन्ये गुणवतां गुणानां फलमुच्यते ।
पित्रा मात्रा च यः साधुरेवं निर्वास्यते सुतः ॥ ११ ॥
इति राज्ञा समादिष्टः सुमन्त्रस्त्वरयन्निव ।
आजगाम रथं राज्ञो युक्त्वा परमवाजिभिः ॥ १२ ॥
उपनीय च संयुक्तं रथं रत्नविभूषितम् ।
राज्ञो निवेदयामास युक्त इत्यभितोषितः ॥ १३ ॥
कोशाध्यक्षमथाहूय स्वममात्यं नराधिपः ।
उवाचेदं वचो धर्म्यं शोकव्याकुलिताक्षरम् ॥ १४ ॥
वासांसि त्वं महार्हाणि भूषणानि वराणि च ।
वर्षाण्येतानि संख्याय वैदेह्यै प्रतिपादय ॥ १५ ॥
इति राज्ञा समादिष्टो गत्वा कोशगृहं तु सः ।
प्रायच्छच्छीघ्रमानीय वैदेह्यै सर्वमेव तत् ॥ १६ ॥
ततो निवासयामास तानि वासांसि मैथिली ।
भूषयामास चात्मानं भूषणैस्तैर्वरानना ॥ १७ ॥
ततो विराजयामास तद्वेश्म सुविभूषिता ।
विमलेव प्रभा सौरी व्यभ्रं वितिमिरं नभः ॥ १८ ॥
तथा तु सा मैथिलपार्थिवात्मजा विभूषिता प्रीतिकरैर्विभूषणैः ।
विदिद्युते द्यौरिव तोयदागमे शतह्रदा पत्रशतैरलंकृता ॥ १९ ॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे सीतालंकारिको
नामैकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

[द्विचत्वारिंशः सर्गः]

अलंकृतां तु वैदेहीं द्योतमानामिव श्रियम् ।
विभूषितां परिष्वज्य श्वश्रूर्वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
स्नेहान्मूर्धन्युपाघ्राय माता दुहितरं यथा ।
गच्छन्तं वनवासाय त्वं राममनुगच्छसि ॥ २ ॥
त्वामतोऽनुसमाधास्ये कार्यं ते हृदि मद्वचः ।
सत्कृता लालिताश्चापि वैदेहि प्राकृताः स्त्रियः ॥ ३ ॥
न स्मरन्त्युपकारं हि न प्रीतिं न च सौहृदम् ।
रूपयौवनसंसर्गात् सुभावेन च दर्पिताः ॥ ४ ॥
तत्त्वया नावमन्तव्यः पुत्रो मम धनच्युतः ।
दैवतं हि पतिः स्त्रीणां सधनो निर्धनोऽपि वा ॥ ५ ॥
मद्वियोगकृतं दुःखं वनवासकृतं तथा ।
न संस्मरेद्यथा रामस्तथा कार्यं हि मैथिलि ॥ ६ ॥
इति श्वश्र्वा समादिष्टा सीता भर्तृपरायणा ।
कृताञ्जलिः स्थिता प्रह्वा कौशल्यामिदमब्रवीत् ॥ ७ ॥
आर्ये करिष्येऽभ्यधिकं शासनं ते यथाऽऽत्थ माम् ।
अभिज्ञा ह्यस्मि[1] सत्स्त्रीणां धर्माचारस्य सर्वशः ॥ ८ ॥
न मां पृथग्जनसमामार्ये त्वं मन्तुमर्हसि ।
रामाद्विचलिता नालमहं सूर्यादिव प्रभा ॥ ९ ॥
नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचक्रो वर्तते रथः ।
नापतिः सुखमाप्नोति[2] नारी यद्यपि सुप्रजा ॥ १० ॥

---

1 कै—हृदि । 2 कै, व—०प्नापि ।

मितं ददाति हि पिता मितं माता मितं सुतः ।
अमितस्य तु दातारं भर्त्तारं का न पूजयेत् ॥ ११ ॥
साऽहं सुखानां सर्वेषां दातारं दैवतं पतिम् ।
कथमार्ये ऽवमन्येयं[3] यथाऽन्याः प्राकृताः स्त्रियः ॥ १२ ॥
किं च मन्ये देवतानामनुग्राह्याऽस्मि[4] साम्प्रतम् ।
यन्मे प्रकृतिकल्याणीं श्रद्धां वर्धयसे पुनः ॥ १३ ॥
भर्तुः प्रियनिमित्तं हि त्यजेयमपि जीवितम् ।
पाणिप्रदानसमयात्प्रभृत्येवं व्रतं मम ॥ १४ ॥
विप्रयुक्ता हि रामेण कन्दर्पेणेव रूपिणा ।
पतेयं पर्वताग्राद्वा विशेयं वा हुताशनम् ॥ १५ ॥
प्रमाणं तन्मया कार्यं यदग्निगुरुसन्निधौ ।
सलाजकुसुमः पाणिः पीडितो राघवेण मे ॥ १६ ॥
इतरा लघुसत्त्वा हि स्त्रियो यौवनविभ्रमात् ।
भर्त्तारमवमन्यन्ते संश्लिष्टाश्च कुबान्धवैः ॥ १७ ॥
स्वयं कामान्न वक्तव्यमार्ये ऽहं पतिदेवता ।
यथा भर्त्तरि वर्त्तिष्ये तथा श्रोष्यसि सज्जनात् ॥ १८ ॥
राज्यनाशं वने वासं त्वद्वियोगं च राघवः ।
प्रयतिष्ये तथा कर्त्तुं यथा नातिस्मरिष्यति ॥ १९ ॥
सीतायास्तद्वचः श्रुत्वा कौशल्या हृदयंगमम् ।
शुद्धसत्त्वा मुमोचाश्रु सहसा दुःखहर्षजम् ॥ २० ॥
परिष्वज्य च कौशल्या मैथिलीं जनकात्मजाम् ।

3 ब—वमन्येहं । 4 ल, म—दैवता० ।

उवाच परमप्रीता गद्गदस्खलिताक्षरम् ॥ २१ ॥
अनाश्चर्यमिदं पुत्रि वचनं तव मैथिलि ।
या त्वं विदार्य वसुधां सीते सस्यमिवोदिता ॥ २२ ॥
जनकस्य नरेन्द्रस्य मैथिलस्य महात्मनः ।
यशसश्च गुणानां च सीते त्वमसि भूषणम् ॥ २३ ॥
अहं यशस्या धन्या च यस्यास्त्वं समुपस्थिता ।
गुणज्ञा च कृतज्ञा च धर्मज्ञा च यशस्विनी ॥ २४ ॥
निर्वृत्ताऽहं भविष्यामि त्वया सह वनं गते ।
रामे राजीवपत्राक्षे ह्ययोध्यां पुनरागते ॥ २५ ॥
वनेषु खलु ते पुत्रि भाव्यमस्याप्रमत्तया ।
लक्ष्मणस्य च वीरस्य देवरस्य विशेषतः ॥ २६ ॥
एवं सन्दिश्य सीतां तु प्रशस्य च यशस्विनीम् ।
मूर्ध्न्युपाघ्राय सस्नेहं कौशल्या राममब्रवीत् ॥ २७ ॥
नित्यं राघव सीताया भवितव्यं समीपतः ।
लक्ष्मणस्य च भक्तस्य त्वया वीरस्य मानद ॥ २८ ॥
कर्तव्यश्चाप्रमादस्ते वने प्रचुरपादपे ।
तां प्राञ्जलिरभिक्रम्य मातृमध्ये व्यवस्थिताम् ॥ २९ ॥
रामोऽपि धर्म्यं धर्मज्ञो मातरं वाक्यमब्रवीत् ।
अम्ब सीतां समाश्रित्य यत्त्वं मामनुशाससि ॥ ३० ॥
लक्ष्मणो दक्षिणो बाहुश्छायेव मम मैथिली ।
नेयं त्यक्तुं मया शक्या कीर्त्तिरात्मवता यथा ॥ ३१ ॥
गृहीतशरचापस्य कुतोऽस्ति हि भयं मम ।

अपि त्रयाणां लोकानामीश्वरो वा शतक्रतोः ॥ ३२ ॥
अम्ब मा दुःखिनी भूस्त्वं पश्यातं पितरं मम ।
क्षयो ऽस्य वनवासस्य भविष्यत्यचिरेण मे ॥ ३३ ॥
अस्य राज्ञः प्रसादेन वर्षाण्येतानि मे शुभे ।
शिवेनैव गमिष्यन्ति यथैकदिवसं तथा ॥ ३४ ॥
स्वस्तिमन्तमरोगं मां पुनरभ्यागतं वनात् ।
स्वैरेव सुकृतैः पुण्यैर्ध्रुवं द्रक्ष्यसि मा शुचः ॥ ३५ ॥
एतावदभिनीतार्थमुक्त्वा स जननीं वचः ।
अर्धसप्तशतानास्तत्र ददर्शान्या विमातरः ॥ ३६ ॥
समुपेत्य च मातॄस्ताः कृताञ्जलिरिदं वचः ।
उवाच रामो धर्मात्मा प्रश्रयावनतस्तदा ॥ ३७ ॥
संवासात्पुरुषः कश्चिद्विश्वासाद्वा ऽपराध्यति ।
क्षन्तव्यमपराद्धं मे सर्वाश्चामन्त्रयामि वः ॥ ३८ ॥
अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा यदन्यदपि किञ्चन ।
अपराद्धं तदद्याहं सर्वशः क्षमयामि वः ॥ ३९ ॥
अथ जज्ञे महांस्तत्र तासां नृपतियोषिताम् ।
क्रौञ्चीनामिव संक्रन्द एवं ब्रुवति राघवे ॥ ४० ॥

मुरज-पणव-वेणु-नादितं दशरथवेश्म बभूव यत्पुरा ।
विलपितपरिदेवितस्वनं व्यसनभवैस्तदभूद्विनादितम् ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे दशरथस्त्रीविलापो नाम द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

[त्रिचत्वारिंश सर्गः]

कृताञ्जलिस्ततो रामो लक्ष्मणश्च महायशाः ।
वैदेही चैव राजानं प्रतिजग्मुः प्रदक्षिणम् ॥ १ ॥
कृत्वा प्रदक्षिणं चैनं प्रणिपत्यानुमान्य च ।
रामः शोकपरिम्लानां जननीमभ्यवादयत् ॥ २ ॥
अन्वेव लक्ष्मणश्चैनां रुदतीमभ्यवादयत् ।
ततो मातुः सुमित्रायाः पादौ जग्राह लक्ष्मणः ॥ ३ ॥
तं वन्दमानं रुदती परिष्वज्य च पीडितम् ।
स्नेहान्मूर्धन्युपाघ्राय सुमित्रा पुत्रमब्रवीत् ॥ ४ ॥
अरिष्टं गच्छ पन्थानं सह रामेण लक्ष्मण ।
शुश्रूष भ्रातरं ज्येष्ठं रामं लोकहिते रतम् ॥ ५ ॥
मत्पुत्रेण त्वया पुत्र तारिताऽहं सबांधवा ।
यस्त्वं त्यक्त्वा प्रियान् दारान् मां च राममनुव्रतः ॥ ६ ॥
समस्थो विषमस्थो वा रामस्ते परमा गतिः ।
प्राणैरपि प्रियतरो ज्येष्ठो भ्राता गुरुश्च ते ॥ ७ ॥
तस्मादस्याप्रमत्तस्त्वं शरीरं परिपालय ।
विजने वसतो ऽरण्ये सीतया रमतः सह ॥ ८ ॥
एष पुत्र सतां धर्मो यं त्वमिच्छसि सेवितुम् ।
उचितं वः कुले पुत्र भ्रातृज्येष्ठानुपालनम् ॥ ९ ॥
भ्राता ज्येष्ठो ऽप्रमत्तेन रामो राजीवलोचनः ।
त्वया पुत्र वने सेव्यः परिपाल्यश्च सर्वथा ॥ १० ॥
दानं दीक्षा तपश्चैव तनुत्यागो मृधे ऽपि वा ।

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ॥ ११ ॥
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं पुत्रं सुमित्रा राममब्रवीत् ॥ १२ ॥
त्वया ऽपि पुत्र रक्ष्यो ऽयं लक्ष्मणः शत्रुकर्षण ।
भक्तो ऽनुरक्तो ऽनुगतो भ्राता भृत्यः सुहृच्च ते ॥ १३ ॥
त्वया ऽयं सर्वथा रक्ष्यस्त्वं चैवानेन राघव ॥
एवमस्त्विति रामस्तां सुमित्रां प्रत्यभाषत ॥ १४ ॥
चक्रे कृताञ्जलिश्चैनामभिवाद्य प्रदक्षिणम् ।
ततः सुमन्त्रः काकुत्स्थं प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १५ ॥
विनीतवदुपागम्य मातलिर्वासवं यथा ।
राजपुत्र नमस्ते ऽस्तु युक्तो ऽयं ते महारथः ॥ १६ ॥
अनेन त्वां हि नेष्यामि यत्र मां राम वक्ष्यसि ।
चतुर्दश हि वर्षाणि वस्तव्यानि त्वया वने ॥ १७ ॥
राज्यार्थिन्या पिता ते ऽयं कैकेय्या यानि याचितः ।
तं वराहं रथं युक्तं सीता हृष्टेन चेतसा ॥ १८ ॥
आरोह वरारोहा कृत्वाऽलंकारमात्मनः ।
वनवासं हि संख्याय वासांस्याभरणानि च ॥ १९ ॥
भर्तारमनुगच्छन्त्यै सीतायै श्वशुरो ददौ ।
तथैवायुधजातानि तूणांश्च कवचानि च ॥ २० ॥
रथोपस्थमभिन्यस्य खनित्रपिटकं च तत् ।
अथ ज्वलनसंकाशं चामीकरविभूषितम् ॥ २१ ॥
तमारुरुहतुः क्षिप्रं भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।

सीतातृतीयावारूढौ दृष्ट्वा तूर्णमनोदयन् ॥ २२ ॥
सुमन्त्रः संहितानश्वान् वायुवेगसमाञ्जवे ।
प्रयाते तु महारण्यं चिररात्राय राघवे ॥ २३ ॥
बभूव नगरं सर्वं क्रोधपूर्णं बलं च तत् ।
तत्समाकुलसंभ्रान्तं मत्तसंकुपितद्विपम् ॥ २४ ॥
हयशिंजितनिर्घोषं पुरमासीन्महास्वनम् ।
ततः सबृद्धबाला हि पुरी परमपीडिता ॥ २५ ॥
राममेवाभिदुद्राव घर्मार्त्तः सलिलं यथा ।
पार्श्वतः पृष्ठतश्चैव जनाः पुरनिवासिनः ॥ २६ ॥
अश्रुपूर्णमुखाः सर्वे तमूचुर्भृशदुःखिता ।
संयच्छ वाजिनः सूत शनैर्याह्यथवा पुनः ॥ २७ ॥
रामस्य द्रष्टुमिच्छामो मुखचन्द्रं महात्मनः ।
हृदयाणि हरत्येष सर्वेषां नरचन्द्रमाः ॥ २८ ॥
पश्यामस्तावदेवैनं कदा द्रक्ष्यामहे पुनः ।
प्रस्थितो दुर्गमध्वानं नाथो नो भक्तवत्सलः ॥ २९ ॥
कदैनं वनकान्ताराद्द्रक्ष्यामः पुनरागतम् ।
आयसं हृदयं नूनं राममातुः सुसंहतम् ॥ ३० ॥
यन्न दीर्णं प्रिये पुत्रे वनवासाय निर्गते ।
एकैव कृतपुण्येयं वैदेही तनुमध्यमा ॥ ३१ ॥
या ऽनुगच्छति गच्छन्तं छायेवानुपमं पतिम् ।
त्वं च लक्ष्मण सिद्धार्थः कृतपुण्यश्च यः प्रियम् ॥ ३२ ॥
भक्त्याऽनुगच्छसि ज्येष्ठं भ्रातरं धर्मवत्सलम् ।

एषा ते महती सिद्धिरेष तेऽभ्युदयो महान् ॥ ३३ ॥
एष स्वर्गस्य ते पन्था यद्राममनुगच्छसि ।
एवं ब्रुवंतस्ते पौरा बाष्पवेगमुपागतम् ॥ ३४ ॥
यदा न शेकुः संरोद्धुं दुःखार्त्ता रुरुदुस्ततः ।
क नु गन्तासि दुःखार्तानस्मानुत्सृज्य राघव ॥ ३५ ॥
नयास्मानपि यत्र त्वं गन्तुं राम समुद्यतः ।
अथ राजा वृतः स्त्रीभिर्दीनाभिर्दीनमानसः ॥ ३६ ॥
निर्जगाम प्रियं पुत्रं द्रष्टुमिच्छन् स्वयं गृहात् ।
क्रंदन्तीनां ततः स्त्रीणां शुश्रुवे तत्र निस्वनः ॥ ३७ ॥
करेणूनामिवाक्रन्दो वृद्धे गताशिशौ वने ।
स च राजा दशरथो गतश्रीर्न बभौ तदा ॥ ३८ ॥
यथा पूर्णः शशी काले ग्रहेणोपहतद्युतिः ।
ततो हा हेति करुणः शब्दः समभवन्महान् ॥ ३९ ॥
दुःखितं प्रेक्ष्य राजानं सदारं निर्गतं गृहात्
हा रामेति जना केचिद्धा राजन्निति चापरे ॥ ४० ॥
क्रोशमाना नृपं तत्र परिवव्रुः समन्ततः ।
तमवेक्ष्य ततो रामः पितरं शोकविह्वलम् ॥ ४१ ॥
पदातिमनुगच्छन्तं दारैः स्वैः परिवारितम् ।
देव्या कौशल्यया सार्धं विह्वलं तं पदे पदे ॥ ४२ ॥
धर्मपाशस्थितो दीनो नाशक्नोदभिभाषितुम्[१] ।
पदाती तौ तु दुःखार्त्तौ दृष्ट्वा शोकसमन्वितौ ॥ ४३ ॥

[१] म. ल.—अभिवीक्षितुम् ।

पितरौ नोदयामास शीघ्रं याहीति सारथिम् ।
न हि सन्दर्शनं रामस्तयोर्दुःखपरीतयोः ॥ ४४ ॥
शशाक सोढुं दुःखार्तः स्तोत्रार्दित इव द्विपः ।
हा पुत्र राम हा सीते हा हा लक्ष्मण पश्य माम् ॥ ४५ ॥
इति राजा च[5] देवी च क्रोशन्तावभ्यधावताम् ।
रामलक्ष्मणसीताश्च मृजन्तो वारि नेत्रजम् ॥ ४६ ॥
असकृत्तामवैक्षन्त नृत्यन्तीमिव मातरम् ।
तिष्ठ तिष्ठेति राजा हि याहि याहीति राघवः ॥ ४७ ॥
सुमंत्रस्य बभूवात्मा गोचक्रान्तरितो यथा ।
नाश्रौषमिति राजानं सूत[6] वक्ष्यसि सङ्गमे[7] ॥ ४८ ॥
चिरं दुःखस्य जातोऽयमिति रामस्तमब्रवीत् ।
स रामस्य मतं बुद्ध्वा सुमन्त्रो दीनमानसः ॥ ४९ ॥
अञ्जलिं नृपतेर्बद्ध्वा नोदयामास तान् हयान् ।
शीघ्रं प्रजवितैरश्वैः प्रयान्तमथ राघवम् ॥ ५० ॥
यदा न शेकुरन्वेतुं पौराणां ताः स्त्रियस्तदा ।
न्यवर्त्तन्त सुदुःखार्त्ता निराशा रामदर्शने ॥ ५१ ॥
मनोभिराशुवेगैश्च न न्यवर्तन्त सर्वशः ।
यमिच्छेच्च पुनर्द्रष्टुं न तं दूरमनुव्रजेत् ॥ ५२ ॥
वसिष्ठप्रमुखा विप्रा इत्यूचुस्तं नृपं तदा ।
तेषां तदा तद्वचनं स राजा श्रुत्वा गुरूणां परिगृह्य बाष्पम् ।
तस्थौ प्रयान्तं सुतमीक्षमाणो विषादमोहव्यथितान्तरात्मा ॥५३॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे रामनिर्याणं
नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

---

5 ब—थ । 6 ब—पूर्व वक्ष्यसि० । ल—वक्ष्यसि संगमेपि वा ।

[चतुश्चत्वारिंशः सर्गः]

तस्मिन्प्रयाते त्वरितं पुराद्रामे कृताञ्जलौ ।
आर्त्तशब्दो हि संजज्ञे स्त्रीणामन्तःपुरे तदा ॥ १ ॥
अनाथस्य जनस्यास्य दुर्बलस्य तपस्विनः ।
यो गतिः शरणं चासीत्स नाथः क नु गच्छति ॥ २ ॥
न क्रुध्यत्यभिशस्तोऽपि क्रोधनीयानि वर्जयन् ।
क्रुद्धान् प्रसादयन् सर्वान् स नाथः क नु गच्छति ॥ ३ ॥
कौशल्यायां महातेजा यथा मातरि वर्तते ।
तथा सर्वासु वर्त्तेत महात्मा क नु गच्छति ॥ ४ ॥
कैकेय्या क्लिश्यमानानां राज्ञा च कुपितेन यः ।
परित्राता च गोप्ता च रक्षिता क नु गच्छति ॥ ५ ॥
अबुद्धिर्वत किं राजा विपरीतमतिर्नु किम् ।
यो नाथं सर्वभूतानां परित्यजति राघवम् ॥ ६ ॥
इति राजमहिष्यस्ता विवत्सा इव धेनवः ।
अन्योन्यं संपरिष्वज्य बाहुभ्यां संप्रचुक्रुशुः ॥ ७ ॥
स तमन्तःपुरे घोरमार्तशब्दं महीपतिः ।
श्रुत्वा पुत्रवियुक्तात्मा विषसाद सुदुःखितः ॥ ८ ॥
नाग्निहोत्राण्याहूयन्त सूर्यश्चान्तरधीयत ।
व्यसृजन्कवलान्नागा गावो वत्सान्न चाददुः ॥ ९ ॥
बृहस्पतिर्बुधार्केन्दुशुक्रांगारकराहवः ।
दारुणाः सोममासाद्य ग्रहाः सर्वेऽव्रतास्थिरे ॥ १० ॥
नक्षत्राणि हतार्चींषि ग्रहाश्चोपहतार्चिषः ।

विशिखाश्च सधूमाश्च नाग्नयश्च प्रकाशिरे ॥ ११ ॥
अकालानिलवेगेन महोदधिरिवोद्धतः ।
रामे वनं प्रव्रजिते नगरं प्रचचाल च ॥ १२ ॥
दिशः पर्याकुलीभूतास्तिमिरेण समावृताः ।
नागरश्च जनः सर्वो दुःखशोकपरायणः ॥ १३ ॥
आहारे व्यवहारे च न कश्चित्कुरुते मनः ।
बाष्पपर्याकुलमुखो राजमार्गगतो जनः ॥ १४ ॥
न हृष्टो लक्ष्यते कश्चित्सर्वः शोकपरायणः ।⁰
न ववौ पवनः शीतो न तताप दिवाकरः ॥ १५ ॥
न रराज शशी चापि सर्वमासीत्समाकुलम् ।
सर्वे सर्वं परित्यज्य राममेवान्वचिन्तयन् ॥ १६ ॥
ये तु रामस्य सुहृदस्ते सर्वे मूढचेतसः ।
शोकभारसमाक्रान्ताः शयनं न जहुस्तदा ॥ १७ ॥
गर्हयन्तश्च कैकेयीं निन्दन्तश्च महीपतिम् ।
आत्मभाग्यान्यसूयन्तः परं दैन्यमुपागताः ॥ १८ ॥
ततस्त्वयोध्या रहिता महात्मना पुरन्दरेणेव यथा ऽमरावती ।
चचाल सर्वा भयभारपीडिता सनागयोधाश्वरथाकुला तदा ॥१९॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे ऽन्तःपुर विलापो
नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

⁰ ळ

[पञ्चचत्वारिंशः सर्गः]

यावत्तु गच्छतस्तस्य राजा रूपं व्यलोकयत् ।
नैवेक्ष्वाकुवरस्तावच्चक्षुर्षी समुपाहरत् ॥ १ ॥
यावद्राजा प्रियं पुत्रं ददर्शात्यन्तधार्मिकम् ।
तावत्प्रववर्धते चास्य चक्षुः पुत्रदिदृक्षया ॥ २ ॥
नापश्यत्तु रजो ऽप्यस्य यदा रामस्य भूमिपः ।
तदाऽऽर्तश्च विषण्णश्च पपात धरणीतले ॥ ३ ॥
तस्य दक्षिणमङ्गं तु कौशल्याऽन्वहदङ्गना ।
वामं च साभ्यगात्पापा कैकेयी भरतप्रिया ॥ ४ ॥
तां नयेन च संपन्नो धर्मेण विनयेन च ।
उवाच राजा कैकेयीं समीक्ष्य व्यथितेन्द्रियः ॥ ५ ॥
कैकेयि मा ममाङ्गानि स्प्राक्षीस्त्वं दुष्टचारिणि ।
न हि त्वां स्प्रष्टुमिच्छामि न भार्या त्वं न मे प्रिया ॥ ६ ॥
ये च त्वामनुजीवन्ति नाहं तेषां न ते मम ।
केवलार्थपरां हि त्वां त्यक्तधर्मां त्यजाम्यहम् ॥ ७ ॥
अगृह्णां यच्च ते पाणिमग्निपर्ययणं च यत् ।
अनुजानामि तत्सर्वमिह लोके परत्र च ॥ ८ ॥
भरतश्चेत्प्रतीतः स्याद्राज्यं प्राप्येदमुत्तमम् ।
यन्मे स दद्यात्प्रीत्यर्थं मम तन्ममुपागतम् ॥ ९ ॥
अथ रेणुपरिष्वक्तं समुत्थाप्य महीपतिम् ।
न्यवर्तत तदा देवी कौशल्या शोककर्षिता ॥ १० ॥

के. म—पर्यायणं

हत्वेव ब्राह्मणं राजा पदा स्पृष्ट्वेव पन्नगम् ।
अन्वतप्यत धर्मात्मा पुत्रं संत्यज्य राघवम् ॥ ११ ॥
निवर्तित्वा निवर्तित्वा सीदतो रथवर्त्मसु ।
राज्ञस्तस्य बभौ रूपं ग्रस्तस्यांशुमतो यथा ॥ १२ ॥
विललाप च दुःखार्तः प्रियं पुत्रमनुस्मरन् ।
नगरीं तामनुप्राप्तस्त्यक्त्वा पुत्रमनाथवत् ॥ १३ ॥
इमानि हयमुख्यानां वहतां तं ममात्मजम् ।
पदानि भुवि दृश्यन्ते स महात्मा न दृश्यते ॥ १४ ॥
स नूनं क्विचदेवाद्य वृक्षमूलमुपाश्रितः ।
काष्ठं वा यदि वाऽश्मानमुपधाय स्वपिष्यति ॥ १५ ॥
उत्थास्यति च मेदिन्याः कृपणः पांसुगुण्ठितः ।
विनिश्वसन्प्रस्रवणे करेणूनामिव द्विपः ॥ १६ ॥
द्रक्ष्यन्ति पुरुषाश्चेमं दीर्घबाहुं वनेचराः ।
राममुत्थाय गच्छन्तं लोकनाथमनाथवत् ॥ १७ ॥
श्यामावदातं रक्ताक्षं चन्द्राननमनिन्दितम् ।
पृथूरस्कं महाबाहुं शार्दूलसमगामिनम् ॥ १८ ॥
सिंहोरस्कं वृषस्कंधं चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।
यदृच्छया देवलोकात्संप्राप्तमिव वासवम् ॥ १९ ॥
सकामा भव कैकेयि विधवा राज्यमाप्स्यसि ।
न ह्यहं तं नरव्याघ्रमृते जीवितुमुत्सहे ॥ २० ॥
इत्येवं विलपन् राजा जनौघेनाभिसंवृतः ।
अपस्मारैरिवाविष्टः स विवेश पुरीं तदा[१] ॥ २१ ॥

१ म—अपस्मारैरिवाविष्टो विवेशपुरमुत्तमम् ।

शून्यचत्वरवेश्मान्तां संवृतापणदेवताम् ।
जनैर्दुःखागमक्रान्तैर्नात्याकीर्णमहापथाम् ॥ २२ ॥

तां स पश्यन्[3] पुरीं राजा राममेवानुचिन्तयन् ।
विलपन् प्राविशद्राजा गृहं सूर्य इवांबुदम् ॥ २३ ॥

कौशल्याया गृहं शीघ्रं राममातुर्नयन्तु माम् ।
इति ब्रुवन्तं राजानमन्वयु[4] र्मार्गदर्शिनः ॥ २४ ॥

तत्र चास्य प्रविष्टस्य कौशल्याया निवेशने ।
अधिरुह्यापि शयनं बभूव लुलितं मनः ॥ २५ ॥

स तच्छुष्कं ह्रदमिव सुपर्णेन हतोरगम् ।
रामेण रहितं वेश्म वैदेह्या लक्ष्मणेन च ॥ २६ ॥

तच्च दृष्ट्वा महाराजो भुजावुद्यम्य दुःखितः ।
उच्चैः स्वरेण चुक्रोश हा राघव जहासि माम् ॥ २७ ॥

सुखिताः किल तत् काले जीविष्यन्ति नरोत्तमाः ।
प्रतिश्रवन्ते ये रामं द्रक्ष्यन्ति पुनरागतम् ॥ २८ ॥

अथ रात्र्यां प्रपन्नायां कालरात्र्यां विशेषतः ।
अर्धरात्रे दशरथः कौशल्यामिदमब्रवीत् ॥ २९ ॥

न त्वां पश्यामि कौशल्ये साधु मां पाणिना स्पृश ।
रामे मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते ॥ ३० ॥

तं राममेवानुविचिंतयानं समीक्ष्य देवी शयने नरेन्द्रम् ।
उपोपविश्याधिकमार्त्तरूपा विनिःश्वसन्ती विललाप कृच्छ्रात् ॥३१॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे दशरथविलापो
नाम पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

[3] सोपश्यन् । [4] कै, म—मन्वयन् ।

[षट्चत्वारिंशः सर्गः]

ततः समीक्ष्य शयने सन्नं शोकेन कर्षितम् ।
कौशल्या पुत्रशोकार्त्ता तमुवाच महीपतिम् ॥ १ ॥
राघवे नृपशार्दूल विषं मुक्त्वा द्विजिह्ववत् ।
विहरिष्यति कैकेयी सुखं प्राप्तमनोरथा ॥ २ ॥
विवास्य रामं सुभगा लब्धकामा मनस्विनी ।
त्रासयिष्यति मां भूयः कृष्णाहिरिव वेश्मनि ॥ ३ ॥
अस्मिंस्तु नगरे रामश्चरन् भैक्ष्यं गृहे वसन् ।
कामकारो वरं दातुमपि रामं ममात्मजम् ॥ ४ ॥
पातितः स तु कैकेय्या स्थानादिष्टाद्यथेष्टतः ।
प्रदिष्टो रक्षसां भागः पर्वणीवाहिताग्निना ॥ ५ ॥
गजराजगति वीरो महाबाहु महाधनुः ।
विशत्यरण्यं नूनं स सभार्यो लक्ष्मणान्वितः ॥ ६ ॥
वनेष्वदृष्टदुःखानां कैकेय्या वचनात्त्वया ।
त्यक्तानां वनवासाय का न्ववस्था भविष्यति ॥ ७ ॥
ते भोगहीनास्तरुणाः फलकाले विवासिताः ।
वने वत्स्यन्ति कृपणा मम वत्साः सुदुःखिताः ॥ ८ ॥
अपीदानीं स कालः स्यान्मम शोकापहारकः ।
सभार्यं सहितं भ्रात्रा पश्येयमिह यत्सुतम् ॥ ९ ॥
कदाऽयोध्यां महाबाहुः पुरीं रामः प्रवेक्ष्यति ।
पुरस्कृत्य रथे सीतां पौलोमीमिव वृत्रहा ॥ १० ॥
श्रुत्वैवोपस्थितं रामं कदाऽयोध्या भविष्यति ।
यशस्विनी हृष्टजना पताकाध्वजमालिनी ॥ ११ ॥

कदा प्रेक्ष्य नरव्याघ्रमरण्यात्पुनरागतम् ।
नन्दिष्यति पुरी रम्या समुद्र इव पर्वणि ॥ १२ ॥
कदा प्राणिसहस्राणि राघवौ पुनरागतौ ।
लाजैरवकरिष्यन्ति प्रविशन्तावरिन्दमौ ॥ १३ ॥
कदा परिणतो बुद्ध्या वयसा चामरप्रभः ।
मामुपैष्यति धर्मज्ञः सवत्सामिव मातरम् ॥ १४ ॥
कदा सुमनसः कन्या द्विजा गावश्च फलानि च ।
प्रविशन्तौ पुरीं हृष्टाः करिष्यन्ति प्रदक्षिणम् ॥ १५ ॥
प्रविशन्तौ कदाऽयोध्यां द्रक्ष्यामि शुभलक्षणौ ।
उदग्राभरणौ वीरौ निस्त्रिंशवरधारिणौ ॥ १६ ॥
आशासितानि देवेभ्यः कदा तं प्रतिमानदम् ।
रामं दृष्ट्वा प्रदास्यामि देवताभ्यः प्रहर्षिता ॥ १७ ॥
निःसंशयमहं मन्ये मया पूर्वं कदर्यया ।
पातुकामेषु वत्सेषु मातॄणां वारिताः स्तनाः ॥ १८ ॥
साऽहं गौरिव वत्सेन विवत्सा विह्वली कृता ।
कैकेय्या पुरुषव्याघ्र बालवत्सेव गौर्बलात् ॥ १९ ॥
तमहं सद्गुणैर्युक्तं सर्वशास्त्रविशारदम् ।
एकपुत्रा विना पुत्रं जीवितुं नोत्सहे चिरम् ॥ २० ॥
न हि मे जीवितुं किञ्चित्सामर्थ्यमिह विद्यते ।
अपश्यन्त्याः प्रियं पुत्रं महाबाहुं महाबलम् ॥ २१ ॥
अयं हि मां तापयते सुदारुण स्तनूजशोकप्रभवो हुताशनः ।
महीमिमां रश्मिभिरुत्तमप्रभो यथा निदाघे भगवान् दिवाकरः ॥ २२ ॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे कौशल्याविलापो नाम
षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

AN APPEAL FROM THE GENERAL EDITOR OF THE SERIES.

The D.A.V. College Sanskrit series has already placed six important works before the public. This is the first fasciculus of the seventh. It is a huge work and unattempted before. We have taken our best care to entrust it to a scholar who has spent over six years in studying the various recensions of the Rāmāyaṇa under Dr. A. Venis and Principal A. C. Woolner, and who officiated as a University Professor in the University of the Panjab, Lahore. Moreover the fine collection of the Rāmāyaṇa Mss. of our Library, which is increasing every day, is costing us a good deal. Thus a large sum of money is needed to bring the work to a successful ending. Will generous readers help us with money, and ask their friends to buy our publications.

॥ दयानन्द महाविद्यालय संस्कृत ग्रन्थमाला, सं० ७ ॥

ओ३म्

वाल्मीकीय-रामायणम्

(पश्चिमोत्तरशाखीयम्)

अयोध्या-काण्डम्

THE RAMAYANA

OF

VALMIKI

(NORTH-WESTERN RECENSION)

CRITICALLY EDITED WITH VARIOUS READINGS FOR THE FIRST TIME FROM ORIGINAL MSS.

BY

PANDIT RAM LABHAYA M. A.

FORMERLY RESEARCH SCHOLAR AND PROFESSOR IN SANSKRIT, UNIVERSITY OF THE PANJAB, LAHORE.

NOW IN SERVICE WITH THE RESEARCH DEPT. D. A. V. COLLEGE, LAHORE.

AYODHYA KANDA. FASC. III.

PUBLISHED BY THE RESEARCH DEPARTMENT D. A. V. COLLEGE, LAHORE.

Printed by Lalji Dass, Manager Hindi Press, Lahore.

NOV. 1923.

First Edition 1000 Copies. | मार्गशीर्ष १९८० | Price 1—8—0

ABBREVIATIONS.

N=Nill (=नास्ति)

O=Omission (Psychological).=(त्यक्तम्)

from 2nd. fasciculus onwords. (द्वितीयभागादारभ्य)।

पू=पूर्वार्ध=(1st. half of a verse).

उ=उत्तरार्ध=(2nd. half of a verse).

ब=वङ्गशाखीयं वाल्मीकीय-रामायणम्।

(Gorresio's Edition).

दा=दाक्षिणात्यशाखीयं वाल्मीकीय-रामायणम्।

(Gujrati Press Edition Bombay, 1913)

DESCRIPTION of ब MS.

This Ms. has been recently purchased for the Research Library D. A. V. College Lahore.

It is written on country paper; in Devanāgarī script; is generally correct; agrees with कै: about 100 years old; obtained from Bahāvalpur state.

[वं-४३]=[सप्तचत्वारिंशः सर्गः]=[दा-४५]

अनुरक्ता[1] महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्।
अनुजग्मुः प्रयान्तं तं वनवासाय मानवाः॥ १॥
निवर्त्यमानाः सुभृशं सुहृद्वर्गेण राघवात्।
न स्म ते विनिवर्तन्ते रामस्यानुगता रथम्॥ २॥
अयोध्यानिलयानां हि पुरुषाणां महायशाः।
बभूव गुणसंपन्नः पूर्णचंद्र इव प्रियः॥ ३॥
स याच्यमानः काकुत्स्थः स्वाभिः प्रकृतिभिर्वशी[2]।
कुर्वाणः पितरं सत्यं वनमेवान्वपद्यत॥ ४॥
अवेक्षमाणः सस्नेहं चक्षुषा प्रपिबन्निव।
उवाच रामो धर्मात्मा ताः प्रजाः सन्निवर्तयन्॥ ५॥
या प्रीतिर्बहुमानश्च मय्ययोध्यानिवासिनः।
मत्प्रियार्थमशेषेण भरते सा निवेश्यताम्॥ ६॥
स हि कल्याणचारित्रैः कैकेय्यानन्दवर्धनः।
करिष्यति यथावद्वः[3] प्रियाणि च हितानि च॥ ७॥
ज्ञानविज्ञानविनयैर्वृद्धः शीलगुणान्वितः।
अनुरूपः स वो भर्त्ता भविष्यति सुखावहः॥ ८॥
स हि राजगुणैर्युक्तो युवराजः समाहितः।
विनीतश्च सदा यत्तैः कर्त्तव्यं तस्य शासनम्॥ ९॥
ज्ञानवृद्धो वयोवृद्धो मृदुर्वीरो गुणान्वितः।
प्रगल्भः प्रियवादी च नित्यं बंधुजनप्रियः॥ १०॥

---

1 ब—अनुरक्तं। 2 ब—०बलो। 3 कै—यथावयं।

सतप्यत यथाऽसौ न वनवास गत माय ।
महाराजस्तथा कार्यं मम प्रियचिकीर्षुभिः ॥ ११ ॥
यथा यथा दाशरथिर्धर्ममेवान्वकांतयत् ।
तथा तथा प्रकृतयो राममेवानुवव्रिरे ॥ १२ ॥[O1]
वाष्पेण पिहितो वीरो रामः सौमित्रिणा सह ।
आचकर्ष गुणै र्बद्ध्वा पौरजानपदं जनम् ॥ १३ ॥
अथ द्विजातयः शीलवृत्तश्रुतगुणान्विताः ।
तपसा भावितात्मानो वचसा च महौजसः ॥ १४ ॥
वयःप्रकंपशिरसो दूरादूचुरिदं वचः ।
वहन्ते जवना रामं भो भो जात्यास्तुरंगमाः ॥ १५ ॥
न गंतव्यं निवर्तध्वं हिता भवत भर्त्तरि ।
कर्णवन्ति[4] हि भूतानि विशेषेण तुरंगमाः ॥ १६ ॥[O1]
उपवाह्यो हि वो भर्त्ता नापवाह्यः पुराद्वनम् ।
एवमार्त्तप्रलापानां ब्राह्मणानां निशम्य सः ॥ १७ ॥
अवेक्ष्य सहसा रामो रथादवततार ह ।
पद्भ्यामेव जगामाशु ससीतः सहलक्ष्मणः ॥ १८ ॥
सन्निकृष्टपदन्यासो रामो वनपरायणः ।
द्विजाती[न्]हि पदं(दा)ती(तीं)स्तान् रामश्चारित्रभूषणः ॥[O2]
न शशाकाग्रणीश्चक्षुः परिमोक्तुमवस्थितः ॥ १९ ॥
गच्छन्तमेव तं दृष्ट्वा वनं संभ्रांतमानसाः ।
ऊचुः परमसंतप्ता रामं वाक्यमिदं द्विजाः ॥ २० ॥

4 ब—कर्णयन्ति । O 1 म । O 2 कै, ब, ल ।

अयं ब्राह्मणसंघश्च[5] भवंतमनुगच्छति।
द्विजाः *स्कंधाधिरूढास्त्वामग्रतो*ऽप्यनुयान्ति हि॥२१॥
वाजिन[6]–सपुछानि[7] छत्राण्येतानि यास्यतः।
पृष्ठतोऽनुप्रयांति त्वां हंसानामिव पंक्तयः॥२२॥
अनवाप्तातपत्रस्य रश्मिसन्तापितस्य त।
पथि छायां करिष्यामः स्वैश्छत्रैर्वाजपेयिकैः॥२३॥
या हि नः सततं बुद्धि र्वेदमंत्रानुसारिणी।
त्वत्कृते सा स्मृताऽस्माभिर्वनवासानुसारिणी॥२४॥
हृदयेष्ववतिष्ठन्ति वेदा ये नः परं धनम्।
ते यास्यन्ति वनं त्वद्य त्वद्बाहुबलमाश्रिताः॥२५॥
न पुनर्निश्चयः कार्यस्त्वत्कृते निश्चिता वयम्।
वमिष्यन्ति गृहेष्वेव दाराश्चारित्ररक्षिताः॥२६॥
त्वयि धर्मव्यपेक्षे तु न्याय्यं धर्ममवेक्षितुम्।
यदि धर्मं न जानासि प्रजानां रक्षणोद्भवम्॥२७॥
ब्राह्मणा माननीयास्ते प्रजानां हितकाम्यया।
याचितो ऽसि निवर्त्तस्व हंसशुक्लशिरोरुहैः॥२८॥
शिरोभि र्विनयाचारमहीपतनपांसुलैः।
बहूनां वितता यज्ञा द्विजानां य इहागताः॥२९॥
तेषां समाप्तिरापन्ना तव वत्स निवर्त्तने।
भक्तिमन्ति हि भूतानि जंगमाजंगमानि च॥३०॥

---

5 ल—हि ब्राह्मसंघश्च। *(द्विज–?)*(॰मग्नयो?) 6 ल–वाजिनां। म—वाजि। (वाजपेय?)। 7 ल—समुच्छानि। (समुत्थानि)।

याचन्ते त्वां भृशार्त्तानि कुरु तेषां प्रभो हितम् ।
याचमानेषु तेषु त्वं भक्तिं भक्तेषु दर्शय ॥ ३१ ॥
भक्तानां हि परित्यागस्तवैव विदितो यथा ।
अनुगन्तुं न शक्ता हिं मूलैरुर्वीनिबन्धनैः ॥ ३२ ॥
ऊर्ध्वशाखाः सकरुणं विक्रोशन्तीव पादपाः ।
निश्चेष्टाहारसंचारा वृक्षसकन्धेष्वधिष्ठिताः ॥ ३३ ॥
त्वां पक्षिणोऽपि याचन्ते सर्वभूतानुकम्पितम् ।
एवं विक्रोशतामेव द्विजानां न न्यवर्त्तत ॥ ३४ ॥
तूष्णीमेव ययौ रामो वाग्मी सौमित्रिणा सह ।
गच्छन्नेवाथ सहसा राघवो धर्मवत्सलः ।
ददर्श तमसां तत्र वारयन्तीमिवाग्रतः ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे रामायण ऽयोध्याकाण्डे ब्राह्मणवाक्यं नाम
सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

[वं-४४]=[अष्टचत्वारिंशः सर्गः]=[दा-४६]

ततः स तमसातीरे वासमाश्रित्य राघवः ।
सीतामुद्दिश्य सौमित्रिमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
प्रथमेयं निशा सौम्य सौमित्रे समुपस्थिता ।
वनवासस्य भद्रं ते नोत्कण्ठितुमिहार्हसि ॥ २ ॥
पश्य शून्यान्यरण्यानि रुदन्तीव समन्ततः ।
यथा निलयसंलीनैर् हीनानि मृगपक्षिभिः ॥ ३ ॥
अयोध्या नगरी शून्या राजधानी पितुर्मम ।
सबालवृद्धा निर्यातानस्मान् शोचति लक्ष्मण[1] ॥ ४ ॥
भरतः खलु धर्मात्मा पितरं मातरं च मे ।
धर्मकामार्थसहितैर् वाक्यैराश्वसयिष्यति ॥ ५ ॥
भरतस्यानृशंस्यात्वं संचिन्त्याहं पुनः पुनः ।
नानुशोचामि पितरं मातरं चापि लक्ष्मण ॥ ६ ॥
त्वया युक्तं नरव्याघ्र माननुव्रजता कृतम् ।
ईप्सितव्या हि वैदेह्या रक्षणार्थं सहायता ॥ ७ ॥
अद्भिरेव हि सौमित्रे वसामोऽद्य निशामिमाम् ।
एतद्धि रोचते मह्यं वन्येऽपि विविधे सति ॥ ८ ॥
एवमुक्त्वा तु सौमित्रिं सुमन्त्रमपि राघवः ।
अप्रमत्तस्त्वमश्वेषु भव सूतेत्युवाच ह ॥ ९ ॥
सोऽश्वान् सुमन्त्रः संयम्य भूयस्तं प्रत्युपस्थितः ।
प्रभूतं यवसं दत्त्वा बभूव प्रत्यनन्तरः ॥ १० ॥

1 ब—राघव ।

उपास्य तु शिवां सन्ध्यां दृष्ट्वा रात्रिमुपस्थिताम् ।
रामस्य शय्यां संचक्रे सूतः सौमित्रिणा सह ॥ ११ ॥
तां शय्यां तमसातीरे वृक्षपर्णैः कृतां तदा ।
रामः सौमित्रिमामन्त्र्य सभार्यः संविवेश ह ॥ १२ ॥
प्रक्षालयामास तदा पादौ रामस्य लक्ष्मणः ।
स्वयं सलिलमादाय सीतायाश्चप्यनन्तरम् ॥ ०१३ ॥
सभार्यं संप्रसुप्तं तं भ्रातरं वीक्ष्य लक्ष्मणः ।०
कथयामास सूताय रामस्य विविधान् गुणान् ॥ १४ ॥
गोकुलाकुलतां नीतं तमसातीरमाश्रितः ।
अत्रसन्तत्र तां रात्रिं रामः प्रकृतिभिः सह ॥ १५ ॥
जाग्रतोरेव सा रात्रिः सारथेर्लक्ष्मणस्य च ।
जगाम तमसातीरे रामस्य ब्रुवतो गुणान् ॥ १६ ॥
उत्थाय चिररात्रे स प्रजाः सुप्ता निशम्य च ।
अब्रवीद्भ्रातरं रामो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ १७ ॥
अस्मद्व्यपेक्षया तात निर्व्यपेक्षांस्सुखेष्विमान् ।
वृक्षमूलेषु संसुप्तान् पश्य पौरान् गृहेष्विव ॥ १८ ॥
यथैते निश्चिताः सर्वे यतन्ते ऽस्मन्निवर्त्तने ।
अपि देहांस्त्यजिष्यन्ति न त्यजिष्यन्ति निश्चयम् ॥ १९ ॥
यावदेव तु संसुप्तास्तावदेव वयं लघु ।
रथमारुह्य गच्छामः पथाऽनेन तपोवनम् ॥ २० ॥
एवमेते विमोक्ष्यन्ति मतिमस्मद्व्यपेक्षणे ।

० म ।

अतोऽन्यथाकृते ऽस्माभिर्न तु मोक्ष्यन्ति निश्चयम् ॥ २१ ॥
तात भूयोऽपि नेदानीमिक्ष्वाकुपुरवासिनः ।
स्वपेयुरनुरक्ता मे वृक्षमूलान्युपाश्रिताः ॥ २२ ॥
पौरा ह्यनुगता दुःखाद्विप्रमोच्या नराधिपैः ।
न तु खल्वात्मनो योज्या दुःखेषु पुरवासिनः ॥ २३ ॥
अथाह लक्ष्मणो रामं साक्षाद्धर्ममिव स्थितम् ।
रोचते मे महाप्राज्ञ क्षिप्रमारुह्यतामिति ॥ २४ ॥
ततस्तु सूतस्त्वरितः स्यन्दनेन हयोत्तमान् ।
योजयित्वा तु रामाय प्राञ्जलिः प्रत्यवेदयत् ॥ २५ ॥
मोहनार्थं तु पौराणां सूतं रामोऽब्रवीद्वचः ।
उदङ्मुखः प्रयाहि त्वं रथमादाय सारथे ॥ २६ ॥
मुहूर्त्तं त्वरितं गत्वा निवर्तय रथं पुनः ।
यथा च न विदुः पौरास्तथा कुरु समाहितः ॥ २७ ॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा तथा चक्रे स सारथिः ।
प्रत्यागम्य तु रामाय स्यन्दनं प्रत्यवेदयत् ॥ २८ ॥
स स्यन्दनमधिष्ठाय राघवः सपरिच्छदः ।
शीघ्रगामाकुलावर्तां तमसामतरन्नदीम् ॥ २९ ॥
संतीर्य च महाबाहुः श्रीमच्छिवमकण्टकम् ।
प्रपेदे तमसामार्गमभयं शुभदर्शनम् ॥ ३० ॥
प्रबुध्य पौरास्तु ततो निशाक्षये रथस्य तत्संददृशुर्निवर्त्तनम् ।
नृपात्मजः सोऽनुगतः पुरीमिति व्यपेक्षया ते नगरं पुनर्ययुः ॥३१॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे तमसातीरनिवासो
नाम अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

[वं-४५]=[एकोनपञ्चाशः सर्गः]=[दा-४८।२]

अनुगम्य निवृत्तानां रामं नगरवासिनाम् ।
तद्गतानीव सत्त्वानि बभूवुर्गतचेतसाम् ॥ १ ॥
स्वं स्वं ते गृहमासाद्य पुत्रदारैः समागताः ।
अश्रूणि मुमुचुः सर्वे सुस्वरं बाष्पविह्वलाः ॥ २ ॥
न स्म सद्योमृतान् कश्चित् सुप्रियानपि बान्धवान् ।
तथा शोचत्ययोध्यायां यथा रामविवासने ॥ ३ ॥
न च श्रीराविशत्कश्चिन्न चैव जुहुवुर्द्विजाः ।
ब्रह्म न प्राभवत्किञ्चिन्न च धर्मोऽभ्यवर्त्तत ॥ ४ ॥
व्यनदन्बाष्पमुत्सृज्य केचित्तत्र सुदुःखिताः ।
शयनेष्वपतंश्चान्ये निकृत्ता इव पादपाः ॥ ५ ॥
इष्टं दृष्ट्वा च नाहृष्यन् विपुलं वा धनागमम् ।
पुत्रं प्रथमजं दृष्ट्वा जननी नाभ्यनन्दत ॥ ६ ॥
कुले कुले रुदन्त्यश्च भर्त्तारं गृहमागतम् ।
वितुदन्ति सुदुःखार्त्ता वाग्भिस्तोत्रैरिव द्विपम् ॥ ७ ॥
किं नु तेषां गृहैः कार्यं किं दारैः किं धनेन वा ।
प्राणैर्वा किं सुखैर्वापि ये न पश्यन्ति राघवम् ॥ ८ ॥
स एकः पुरुषो लोके लक्ष्मणः सह सीतया ।
यो ऽनुगच्छति काकुत्स्थं रामं परिचरन्वने ॥ ९ ॥
आपगाः कृतपुण्याश्च पद्मिन्यश्च वने शुभाः ।
यासु पास्यति काकुत्स्थो विगाह्य सलिलं शुचि ॥ १० ॥
विचित्रकुसुमापीडा मञ्जरीमधुधारिणः

पादपाः पर्वताग्रस्था रमयिष्यन्ति राघवम् ॥ ११ ॥
अकाले ह्यपि मुख्यानि मूलानि च फलानि च ।
दर्शयिष्यन्ति वृक्षेषु गिरीणां राममागतम् ॥ १२ ॥
काननं वापि शैलं वा यं रामोऽधिगमिष्यति ।
प्रियातिथिमिव प्राप्तं नैनं शक्ष्यति नार्चितुम् ॥ १३ ॥
विचित्रकुसुमैर्वृक्षैर्लम्बमञ्जरीधारिभिः ।
विदर्शयन्तो विविधान् धातूंश्चित्रांश्च निर्झरान् ॥ १४ ॥
रमयिष्यन्ति काकुत्स्थमटव्यश्चित्रकाननाः ।
आपगाश्च तथारूपाः सानुमन्तश्च पर्वताः ॥ १५ ॥
स हि भर्त्ता सशैलाया वसुमत्या महायशाः ।
धर्मपालश्च लोकस्य वीरो दशरथात्मजः ॥ १६ ॥
यत्र रामो भवेद्भर्त्ता नास्ति तत्र पराभवः ।
स हि नाथोऽस्य जगतः स गतिः स परायणम् ॥ १७ ॥
युष्माकं राघवोऽत्यर्थं योगक्षेमं करिष्यति ।
तूर्णं तमनुगच्छामो यावद्दूरं न गच्छति ॥ १८ ॥
पादच्छायासुखं तस्य संश्रयामाकुतोभयाः ।
वयं परिचरिष्यामः सीतां यूयं च राघवम् ॥ १९ ॥
इति पौरस्त्रियो भर्त्तॄन् दुःखार्त्तास्तांस्तदाऽब्रुवन्[1] ।
युष्माकं राघवो रक्षन् योगक्षेमं करिष्यति ॥ २० ॥
सीता नारीजनस्यास्य योगक्षेमं करिष्यति ।[0]
स हि शूरो महाबाहुः पुत्रो दशरथस्य वै ॥ २१ ॥
को न[2] तेन प्रतीयेत वासं नोद्विग्नमानसः ।

---

1 ल—दुःखार्तास्तास्समब्रुवन् । ब—सुदुःखार्तास्तदाऽब्रुवन् । 0 ल ।

संप्रीयेतामनोज्ञेन सोत्कण्ठितजनेन च ॥ २२ ॥
कैकेय्या यदिदं राज्यं स्यादधर्म्यमनाथवत् ।
नात्र नो जीवितेनार्थः कुतः पुत्रैः कुतो धनैः ॥ २३ ॥
या पुत्रं पार्थिवेन्द्रस्य प्रव्राजयति निर्घृणा ।
इच्छेद्यदि महाराजस्तं राज्येनाभिषेचितुम् ॥ २४ ॥
न हि जातु चिरं जीवेद्राजा परमदुःखितः ।
गते दशरथे स्वर्गमधर्मं प्रतिपत्स्यते ॥ २५ ॥
यया[3] पुत्रश्च भर्ता च त्यक्तावैश्वर्यकारणात् ।
न सा संरक्षितुं शक्ता कैकेयी कुलपांसनी ॥ २६ ॥
कैकेय्या न वयं राज्ये भृतका निवसेम हि ।
जीवन्त्यां साधु जीवामः पुत्रैरपि शपामहे ॥ २७ ॥
न हि प्रव्राजिते[4] रामे जीविष्यति महीपतिः ।
मृते दशरथे व्यक्तं विलापस्तदनन्तरम् ॥ २८ ॥
मिथ्या प्रव्राजितो रामः सीता लक्ष्मण एव च ।
भरताय विसृष्टाः[5] स्म[6] क्षुद्राय (रुद्राय) पशवो यथा ॥ २९ ॥
ते विषं पिबतालोड्य क्षीणपुण्याः सुदुर्गताः[7] ।
राघवं चानुगच्छध्वं प्रणाशं मा ऽनुगच्छत[8] ॥ ३० ॥
विलेपुरेवमार्त्तास्ता नगरे नगरस्त्रियः ।
इति स्म ता रामनिमित्तमातुरा यथा पितुर्भ्रातरि वा विवासिते ।
विलप्य दीना रुरुदुः सुदुःखिताः सुतैर्हि तासामधिकः स राघवः ३१

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे नगरस्त्रीविलापो नाम एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

---

2 ब, म-नु । 3 ब, ल, म-यथा । 4 ब, म-प्रव्राजिते । 5 ल-विदिष्टाः ।
6 कै-स । म-सो । 7 ब—सुदुर्गमाः । 8 म—सा (मा?) धिगच्छत ।

[वं-४६]=[पञ्चाशः सर्गः]=[दा-४९]

रामोऽपि रात्रिशेषेण तेनैव महदन्तरम् ।
जगाम पुरुषव्याघ्रः पितुराज्ञामनुस्मरन् ॥ १ ॥
तथैव गच्छतस्तस्य प्रभाता रजनी शुभा ।
उपस्थाय ततः सन्ध्यां तथैवाभ्युदिते रवौ ॥ २ ॥
तं स्यन्दनमधिष्ठाय प्रतस्थे राघवस्तदा ।
गोमती माकुलावर्तामतरद्वै महानदीम् ॥ ३ ॥
तामुत्तीर्य महाबाहुः श्रीमच्छिवमकर्दमम् ।
प्रतिपेदे तमसामार्गमनुरूपं शिवं शुभम् ॥ ४ ॥
ग्रामान्सुकृष्टसीम्नश्च पुष्पितानि वनानि च ।
पश्यन्नेव ययौ शीघ्रैः श्वेतैरेव हयोत्तमैः ॥ ५ ॥
शृण्वन्वाचो मनुष्याणां ग्रामसंवासवासिनाम् ।
राजानं धिग् दशरथं कामस्य वशवर्त्तिनम् ॥ ६ ॥
नृशंसा बतकैकेयी पापा पापानुबन्धिनी ।
तीक्ष्णा सा भिन्नमर्यादा क्रूरे कर्मणि वर्तते ॥ ७ ॥
या पुत्रमीदृशं राज्ञः प्रवासयति धार्मिकम् ।
अरण्याय महात्मानं सानुक्रोशं जितेन्द्रियम् ॥ ८ ॥
एता[1] वाचो मनुष्याणां पथि ग्रामेषु राघवः ।
शृण्वन्नपि ययौ वीरः कौशल्यानन्दवर्धनः ॥ ९ ॥
गोमतीं चाप्यतिक्रम्य राघवः शीघ्रगैर्हयैः ।
मयूरहंसाभिरुतां सस्मार सरयूं नदीम् ॥ १० ॥

1 म—एवं

स महीं मनुना राज्ञा दत्तां चेक्ष्वाकवे पुरा ।
स्फीतराष्ट्रवर्ती रामो वैदेह्यै समदर्शयत् ॥ ११ ॥
सूत इत्येवमाभाष्य सारथिं तमभीक्ष्णशः ।
मत्तहंसस्वनः श्रीमानुवाच पुरुषर्षभः ॥ १२ ॥
कदाऽहं पुनरागत्य सरय्वाः सलिले शुभे ।
मृगयां पर्यटिष्यामि पित्रा मात्रा च सङ्गतः[2] ॥ १३ ॥
इत्येवमभिकांक्षामि मृगयां सरयू तटे ।
गतिर्ह्येषा परा लोके राजर्षिगणसेविता ॥ १४ ॥
स तमध्वान मिक्ष्वाकुः सर्वं मधुरजल्पकः ।
तं तमर्थमभिप्रेत्य ययौ वाक्यमुदीरयन् ॥ १५ ॥
गत्वा च देवसङ्काशः शीघ्रं शीघ्रपराक्रमः ।
अथाससाद सायाह्ने शृङ्गवीरपुरं महत् ॥ १६ ॥
विगाह्य सरयूं रम्यां वीरो लक्ष्मणपूर्वजः ।
अयोध्याभिमुखो रामः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १७ ॥
सोच्छ्वासहृदयः पश्यन्सीतां लक्ष्मणमेव च ।
आपृच्छामि-पुरी[3] श्रेष्ठ काकुत्स्थपरिपालिते ॥ १८ ॥
देवता भवनानि त्वं पालयाना[4] वसन्तिनः* ।
निवृत्तवनवासस्त्वां कृतज्ञो जगतीपतिः ॥ १९ ॥
पुनर्द्रक्ष्यामि पित्रा च मात्रा च सह संगतः ।
ततो रुधिरताम्राक्षो भुजमुद्यम्य दक्षिणम् ॥ २० ॥

---

2 म—संकृता । 3 ब, म—पुरे । ल—पुरि । 4 कै, ब—"पालय · " । म—"पाल · " ।

उवाचास्रुमुखो दीनो रामो जानपदान्[5] वचः ।
अनुक्रोशो दया चैव युष्माभिर्दर्शितो मयि ॥ २१ ॥
चिराद्दुःखेन पापी[6]-गम्यतामर्थसिद्धये ।
ते प्रणम्य महात्मानं कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ॥ २२ ॥[O]
विनदन्तो[7] जना घोरं न्यवर्तन्त क्वचित् क्वचित् ।
तथा विलपतां तेषामतृप्तानां च राघवः ॥ २३ ॥
अचक्षुर्विषयं प्रागाद्यथार्कः क्षणदागमे ।
ततो धान्यधनोपेतां दानशीलजनावृताम्[8] ॥ २४ ॥
अकुतश्चिद्भयां क्षेमां चैत्ययूपशतांकिताम् ।
उद्यानोपवनोपेतां संपन्नतरगोरसाम् ॥ २५ ॥
तुष्टपुष्टजनाकीर्णां गोकुलाकुलशोभिताम् ।
प्रेक्षणीयां नरेन्द्राणां ब्रह्मघोषविनादिताम् ॥ २६ ॥
रथेन मनुजव्याघ्रः कोसलामत्यवर्तत[9] ।
संबद्धनिस्त्रिंशमुदारसत्त्वं चीरोत्तरासङ्गधरं युवानम् ।
दृष्ट्वा ऽभिजग्मुर्मुदिता निषादा गुहं पुरस्कृत्य सुकृष्णवर्णाः[10] ॥२७॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे शृङ्गवेरपुरोपगमनं
नाम पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥

5 ब, ल—जनपदान् । 6 ल—पापेन । O म । 7 ब—विरु० । 8 कै—०र्दताम् । 9 कै, ल—कौसल्यां० । म—कोसल्यां० । 10 ब—सकर्ण० ।

[वं-४७]=[एकपञ्चाशः सर्गः]=[दा-५० । १२]

ततस्त्रिपथगां गङ्गां शीततोयामशैवलाम् ।
ददर्श राघवः पुण्यां दिव्यामृषिनिषेविताम् ॥ १ ॥
पवित्रसलिलस्पर्शां हिमवच्छैलसंभवाम् ।()
स्वर्गारोहणनिःश्रेणिं महर्षिगणसेविताम् ॥ २ ॥
समुद्रमहिषीं मिष्टां सारसक्रौञ्चनादिताम् ।
मृगयूथैः पिबद्भिश्च वारणैश्चाभिनादिताम् ॥()३ ॥
तामूर्मिकलिलावर्तामन्ववेक्ष्य[1] स राघवः ।
सुमन्त्रमब्रवीत्सूतमिहैवाद्य वसामहे ॥ ४ ॥
अविदूरे ह्ययं नद्या बहुपुष्पप्रवालवान् ।
सुमहानिङ्गुदीवृक्षो वसामात्रैव सारथे ॥ ५ ॥
लक्ष्मणश्च सुमन्त्रश्च बाढमित्येव राघवम् ।
उक्त्वा तमिङ्गुदीवृक्षं सुमन्त्रोऽभिययौ हयैः ॥ ६ ॥
रामोऽपि यात्वा तं वृक्षं रम्य मिक्ष्वाकुनन्दनः ।
रथादवातरत्[2] तस्मात्ससीतः सहलक्ष्मणः ॥ ७ ॥
सुमन्त्रो ऽप्यवतीर्यैव स्नापयित्वा हयोत्तमान् ।
वृक्षमूलगतं राममुपतस्थे कृताञ्जलिः ॥ ८ ॥
तत्र राजा निषादानां रामस्य दयितः सखा ।
धार्मिकः सत्यसन्धश्च गुहो नाम महाबलः ॥ ९ ॥
स श्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं रामं विषयमागतम् ।
वृद्धैः परिवृतोऽमात्यैर्ज्ञातिभिश्चाभ्युपागमत् ॥ ()१० ॥

() म । 1 ब—०वर्ता समन्वेक्ष्य । 2 ब—०दवतरत् । ()म ।

ततो निषादाधिपतिं दृष्ट्वा दूरादवस्थितम् ।[01]
सह सौमित्रिणा रामः समागच्छद्गुहंप्रति ॥ ११ ॥
तमार्तं संपरिष्वज्य गुहो वचनमब्रवीत् ।
यथा ऽयोध्या तथेदं ते राम किं करवामहे ॥ १२ ॥
स शुचीन्यन्नपानानि गुणवन्ति च राघवे ।
अर्घ्यं चोपानयत्क्षिप्रं वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ १३ ॥
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च लेह्यं च समुपस्थितम् ।
शयनानि च मुख्यानि वाजिनां यवसं तथा ॥ १४ ॥
स्वागतं ते महाबाहो तवेयं[0] निखिला[0] मही[0] ।
वयं प्रेष्या भवान् भर्त्ता साधु राज्यं प्रशाधि नः ॥[0]१५ ॥
आज्ञापय[0] महाबाहो[0] यथेष्टं रघुनन्दन ।
यथा स्वकं तथैवेदं पुरं किं करवाणि ते ॥ १६ ॥
गुहमेवं ब्रुवाणं तु राघवः प्रत्युवाच ह ।
अर्चिता मानिताश्चैव सर्वथा भवता वयम् ॥ १७ ॥
पद्भ्यामभिगतं[3] चैव स्नेहादाघ्राय मूर्धनि ।
भुजाभ्यां साधुपीनाभ्यां पीडयन् वाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥
दिष्ट्येह गुह पश्यामि त्वामरोगं सबान्धवम् ।
अपि ते कुशलं राष्ट्रे मित्रेषु च धनेषु च ॥ १९ ॥
यदिदं भवता किञ्चित्प्रीत्यर्थमुपकल्पितम् ।
सर्वं तदनुजानामि न कालो मे प्रतिग्रहे ॥ २० ॥
चतुर्दशसमाः सौम्य वत्स्यन्तं पितुराज्ञया ।

---

01 म । 0ब । 3 ब—०मवगतं ।

कुशचीराम्बरधरं फलमूलाशनं च माम् ॥ २१ ॥
विद्धि प्राणिहितं धर्मे तापसं वनगोचरम् ।
अश्वानां यवसेनार्थी नाहमन्येन केनचित् ॥ २२ ॥
एतावताऽहं भवता भविष्यामि सुपूजितः ।
एते हि दयिता राज्ञः पितुर्दशरथस्य मे ॥ २३ ॥
एतैः सुपूजितैरश्वैर्भविष्याम्यहमर्चितः ।
स एवमुक्तो रामेण गुहो गहनगोचरः ॥ २४ ॥
अश्वानां प्रतिपानं[4] च यवसं चैव सोऽन्वशात् ।
गुहस्तत्रैव पुरुषान् दीयता मिति सत्वरम् ॥ २५ ॥
ततश्चीरोत्तरासङ्गः सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम् ।
जलमेवाददे रामो लक्ष्मणेनाहृतं स्वयम् ॥ २६ ॥
तस्य भूमौ शयानस्य पादौ प्रक्षाल्य लक्ष्मणः ।
सभार्यस्य ततः पश्चात्तस्थौ वृक्षमुपाश्रितः[5] ॥ २७ ॥
गुहोऽपि सह सूतेन सौमित्रिमनुभाष्य च[6] ।
अन्वजाग्रत्ततो राममप्रमत्तो धनुर्धरः ॥ २८ ॥
तथा शयानस्य च तस्य धीमतो यशस्विनो दाशरथेर्महात्मनः ।
अदृष्टदुःखस्य सुखैधितस्य[7] तदा व्यतीयाय सुखेन शर्वरी ॥२९॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे गुहाश्रमनिवासो
नाम एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

---

4 के–प्रतिमानां । ब, ल–प्रतिमानं । म–प्रतिमानश्च । 5 म—॰मुपागतं ।
6 म—ह । 7 म—तथाधितस्य ।

[वं-४८]=[द्विपञ्चाशः सर्गः]=[दा-५१]

तं जाग्रतमसंभ्रान्तं भ्रातुरर्थे महात्मनः ।
गुहः परमसन्तप्तो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
इयं तात सुखा शय्या त्वदर्थमुपकल्पिता ।
प्रत्याश्वसिहि साध्वस्यां राजपुत्र निशामिमाम् ॥ २ ॥
न हि रामात्प्रियतरो ममास्ति भुवि कश्चन ।
ब्रवीम्येतदहं सत्यं वीर सत्येन ते शपे ॥ ३ ॥
अस्य प्रसादादाशंसे लोकेऽस्मिन्सुमहद्यशः ।
धर्मावाप्तिं च विपुलामर्थसिद्धिं च केवलाम् ॥ ४ ॥
सोऽहं प्रियतमं[1] रामं शयानं सह सीतया ।
रक्षिष्यामि धनुष्पाणिः सर्वतो ज्ञातिभिर्वृतः ॥ ५ ॥
न मे ह्यविदितं किञ्चिद्वनेऽस्मिंश्चरतः[2] सदा[2] ।
चतुरङ्गं ह्यपि बलं सुमहत्प्रसहाम्यहम् ॥ ६ ॥
लक्ष्मणस्तमुवाचेदं रक्ष्यमाणास्त्वयाऽनघ ।
अनुनीता वयं सर्वे धर्ममेवानुपश्यता[3] ॥ ७ ॥
कथं हि राघवं* भूमौ शयानं* सह सीतया ।
शक्या निद्रा मया लब्धुं जीवितं वा सुखानि वा ॥ ८ ॥
यो न देवासुरैः सर्वैः शक्यः प्रसहितुं युधि ।
तं पश्य गुह संविष्टं तृणेषु सह भार्यया ॥ ९ ॥
यो मात्रा तपसा लब्धो विविधैश्चापि याचितैः ।

1 म—०तरं । 2 म—०तरस्तदा । 3 म—०पश्यत । *(राघवे ?) ।
* (शयाने ?) ।

एको दशरथस्यैष पुत्रः सदृशलक्षणः[4] ॥ १० ॥
अस्मिन् प्रव्राजिते राजा न चिरं वर्तयिष्यति ।
विधवा मेदिनी नूनं क्षिप्रमेव भविष्यति ॥ ११ ॥
विनद्य च महानादं श्रमेण च युताः स्त्रियः ।
मूका इव स्थिता नूनमद्य राजनिवेशने ॥ १२ ॥
कौशल्या चैव राजा च तथैव जननी मम ।
नाशासे[5] यदि जीवन्ति सर्वे ते शर्वरीमिमाम् ॥ १३ ॥
जीवेदपि हि मे माता शत्रुघ्नस्यान्ववेक्षया ।
एतद्दुःखं तु कौशल्या विवत्सा न सहिष्यति ॥ १४ ॥
अनुरक्तजनाकीर्णा शोकदुःखसमन्विता ।
रामव्यसनसन्तप्ता सा पुरी विनशिष्यति ॥ १५ ॥
चिरसंकल्पितं नूनमनवाप्य मनोरथम् ।
रामे राज्यमनिक्षिप्य पिता मे विनशिष्यति ॥ १६ ॥
सिद्धार्थः पितरं वृद्धं तस्मिन्काले ह्युपस्थिते ।
प्रेतकार्येषु सर्वेषु संस्मरिष्यति राघवः ॥ १७ ॥
रम्यचत्वरसंस्थानां सुविभक्तचतुष्पथाम् ।
हर्म्यप्रासादसंबद्धां गणिकागणशोभिताम् ॥ १८ ॥
रथाश्वगजसंबाधां तूर्यनादनिनादिताम्[6] ।
सर्वकल्याणसंपन्नां हृष्टपुष्टजनाकुलाम् ॥ १९ ॥
आरामोद्यानसंपन्नां समाजोत्सवशालिनीम् ।
सुखिनो विचरिष्यन्ति राजधानीं पितुर्मम ॥ २० ॥

4 कै, म—०लक्ष्मणः । 5 कै, म, ल—नाशा मे । 6 म—विना० ।

अपि सत्यप्रतिज्ञेन सार्द्धं कुशलिनो वयम् ।
निवृत्ते वनवासेऽस्मिन्नयोध्यां प्रविशेम हि ॥ २१ ॥
परिदेवयमानस्य दुःखार्तस्य महात्मनः ।
तिष्ठतो राजपुत्रस्य शर्वरी साऽत्यवर्तत[7] ॥ २२ ॥
चिन्ता[8]-प्राप्तस्तु सौमित्रि र्निद्रया परिवर्जितः ।
सपत्न्या वेश्म ' कान्तः संकेतप्रतिलब्धया ॥ २३ ॥
रामोपि सह वैदेह्या भार्यया ह्यनुरूपया ।
एकस्मिन्संस्तरे सुप्तः परिणामायितुं निशाम् ॥ २४ ॥
उपधाय बृहन्मूलं पादपस्य यदृच्छया ।
न त्वेवास्य प्रसुप्तस्य निद्रा नेत्रे ह्युपारुधन् ॥ २५ ॥
विप्रलंबश्च राज्यस्य गृहत्यागो वनाश्रयः ।
सममेव त्रयं तद्धि निद्रां तस्य जहार ह ॥ २६ ॥
तथा तु तस्मिन्ब्रुवति प्रजाहितं नरेन्द्रपुत्रे गुरुसौहृदाद्गुहः ।
मुमोच बाष्पं व्यथयाऽभिपीडितो जरातुरो नाग इव श्वसन्बली ।२७।
इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्काण्डे लक्ष्मणविलापो
नाम द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

7 म—सा न्यवर्तत । ल—साभ्यवर्तत । 8 म—चिन्त्या । ल- चिंतां ।

[वं-४९]=[द्विपञ्चाशः सर्गः]=[दा-५२]

प्रभातायां तु शर्वर्यां पृथुवक्षा महाभुजः ।
उवाच रामः सौमित्रिं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ १ ॥
भास्करोदयकालोऽयं गता भगवती निशा ।
असौ सुकृष्णो विहगः कोकिलस्तात कूजति ॥ २ ॥
बर्हिणां चैव निर्घोषः श्रूयते नदतां वने ।
तरामो जाह्नवीं सौम्य शीघ्रगां सागरङ्गमाम् ॥ ३ ॥
विज्ञाय रामस्य मतं सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ।
गुहमामन्त्र्य सूतं च सोऽतिष्ठद्भ्रातुरग्रतः ॥ ४ ॥
वस्तस्नायुसमायुक्तां[1] कर्णधारवतीं दृढाम् ।
सुप्रतारां मम तीर्थे क्षिप्रं नावमुपाहर ॥ ५ ॥
तं निशम्य समादेशं सन्निवृत्य गणो महान् ।
उपोह्य नावं रुचिरां गुहाय प्रत्यवेदयत् ॥ ६ ॥
ततः स प्रांजलिर्भूत्वा गुहो वचनमब्रवीत् ।
उपस्थितेयं नौर्देव भूयः किं करवाणि ते ॥ ७ ॥
ततः कलापौ[2] सन्नह्य खड्गौ बध्वा च धन्विनौ ।
जग्मतुर्येन वै गङ्गां सीतया सह राघवौ ॥ ८ ॥
राममेव तु धर्मज्ञमभिगम्य विनीतवत् ।
किमहं करवाणीति सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ९ ॥
अथाब्रवीद्दाशरथिः[3] सुमंत्रं मंत्रिसत्तमम् ।

---

1 ल—वप्रास्त्रा० । ब—व . स्त्रा० । म—यथास्त्रा० । 2 ल—कपालौ ।
3 कै, ब—०शरथः ।

स्पृशन्करेण धर्मज्ञो दक्षिणं दक्षिणेन तम् ॥ १० ॥
गच्छ सौम्य निवर्तस्व कृतमेतावता मम ।
पद्भ्यामेव गमिष्यामि सीतया सहितो वनम् ॥ ११ ॥
आत्मानं त्वभ्यनुज्ञातमथाज्ञाय स सारथिः ।
सुमन्त्रः पुरुषव्याघ्रमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥
अतर्कितोऽयं लोकेषु पुरुषेणेह केनचित् ।
तव सभ्रातृभार्यस्य वासः प्राकृतवद्वने ॥ १३ ॥
न मन्ये ब्रह्मचर्येऽस्ति स्वधीते वा फलं भुवि ।
मार्दवार्जवयोर्वापि[1] त्वां चेद्व्यसनमागतम् ॥ १४ ॥
सह राघववैदेह्या भ्रात्रा च त्वं वने वसन् ।
रतिं संप्राप्स्यसे वीर त्रींल्लोकान्विजयन्निव ॥ १५ ॥
वयं खलु हता वीर ये त्वया नित्यसान्त्विताः ।
कैकेय्या वशमेष्याम पापाया दुःखभागिनः ॥ १६ ॥
इति ब्रुवन्नात्मसमः सुमन्त्रः सारथिस्तदा ।
दृष्ट्वा वनगतं रामं रुरोद भृशदुःखितः ॥ १७ ॥
ततस्तं विगते बाष्पे सूतं स्पृष्टोदकं शुचिम् ।
रामः सुमधुरं वाक्यं पुनः पुनरुवाच ह ॥ १८ ॥
इक्ष्वाकूणां त्वया तुल्यः सुहृदन्यो न विद्यते ।
यथा दशरथो राजा नानुशोचेत्तथा कुरु ॥ १९ ॥
कामोपहतचेता हि वृद्धश्च जगतीपतिः ।
मद्वियोगाच्च सन्तप्तस्तस्मादेतद्ब्रवीमि ते ॥ २० ॥

---

[1] ब, म, ल—मातृचा ।

यद्यदाज्ञापयेत् किञ्चित् स महात्मा महाद्युतिः ।
कैकेय्याः प्रियकामार्थं तत्कार्यमविशङ्कया ॥ २१ ॥
एतदर्थं हि राज्यानि प्रशंसन्ति नराधिपाः ।
यदेषां सर्वकालेषु[5] वचो न प्रतिहन्यते ॥ २२ ॥
तद्यथा स महाराजो नालीकमधिगच्छति ।
न चानुचिन्तयति मां[6] सुमन्त्र कुरु तत्तथा ॥ २३ ॥
सूत मद्वचनात्तातं वसिष्ठं च तपस्विनम् ।
उपाध्यायांश्च संप्राप्य ब्रूयास्त्वमभिवादनम् ॥ २४ ॥
कैकेयीं च सुमित्रां च याश्चान्या मातरो मम ।
तां चाल्पभाग्यां कौशल्यां यदि जीवति मां विना ॥ २५ ॥
अदृष्टदुःखं राजानं वृद्धमार्यं जितेन्द्रियम् ।
ब्रूयास्त्वमभिवाद्यैनं मम हेतोरिदं वचः ॥ २६ ॥
न विषादो न सन्तापः कर्तव्यो रामकारणात् ।
लक्ष्मणे वा नरव्याघ्रे सीतायां वा नराधिप ॥ २७ ॥
अपि वर्षसहस्राणि तातस्य वचनाद्वने ।
विहरेम स्थिता धर्मे स्वर्गलोक इवामराः ॥ २८ ॥
व्यसनं हि पितुः पुत्रात् कोऽन्यो व्यपनयिष्यति ।
अणु वा यदि वा स्थूलं धान्वन्तरिरिव व्रणम् ॥ २९ ॥
यस्तु पुत्रो न वचनं पितुः कुर्यादतन्द्रितः ।
आत्मानं पातयेच्चासौ द्रव्यवानिव निष्क्रियः ॥ ३० ॥
नरके वा पतेद्रामो ज्वलन्तं वा हुताशनम् ।

---

5 ब. ल—सर्वकामेषु । म—सर्वकार्येषु । 6 ल ननु (न) चिंतयति मां कार्ये ।

न तु कुर्वीत तत्कर्म येन वाच्यः पिता भवेत्[7] ॥ ३१ ॥
नैवाहं शोचितव्यस्ते न सीता न च लक्ष्मणः ।
अयोध्यायाश्च्युताः स्मेति निवत्स्यामोऽपि वा वने ॥३२॥
चतुर्दशसु वर्षेषु व्यतीतेषु पुनः पुनः ।
लक्ष्मणं मां च सीतां च द्रक्ष्यसे क्षिप्रमागतान् ॥ ३३ ॥
एवमुक्त्वा महाराजं कौशल्यां मातरं मम ।
अन्याश्च देवीः सहिताः कैकेयीं च पुनः पुनः ॥ ३४ ॥
ब्रूयाः सर्वं त्वमारोग्यमथ पादाभिवन्दनम् ।
सूत मद्वचनादेव सीताया लक्ष्मणस्य च ॥ ३५ ॥
विज्ञाप्यश्च महाराजो भरतं शीघ्रमानय ।
राज्ये चैवाभिषेक्तव्यः क्षिप्रमेव नरर्षभः ॥ ३६ ॥
अभिषिक्ते च भरते यौवराज्याय धार्मिके ।
स्वात्मसन्तापजं दुःखं न त्वामभिभविष्यति ॥ ३७ ॥
भरतश्चापि वक्तव्यो यथा राजनि वर्तसे ।
तथा मातृषु वर्त्तेथाः सर्वास्वेवाविशेषतः ॥ ३८ ॥
यथैव तव कैकेयी सुमित्रापि तथैव ते ।
तथैव तव कौशल्या मम माता विशेषतः ॥ ३९ ॥[0]
प्रशास्त्विमां गां भरतस्य माता प्रीता सपुत्रा[8] नृपतेः प्रनीता ।
संप्रीयते केकयराजपुत्री महावने नो विनियोज्य वासम् ॥ ४० ॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे सूतसमादेशो
नाम त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

---

7 कै, ब, ल—पितुर्भवेत् । 0 म । 8 म, ल—सुपुत्र ।

[वं ५०]=[चतुःपञ्चाशः सर्गः]

एवं सन्दिशतस्तस्य राघवस्य महात्मनः ।
लक्ष्मणोऽन्तरमासाद्य सूतं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
कैकेय्यां प्रतिसंरब्धो निःश्वसन् भ्रुकुटीमुखः ।
अमर्षारक्तया दृष्ट्या वसुधामवलोकयन् ॥ २ ॥
ममापि वचनात् सूत वक्तव्यो भवता[1] नृपः ।
प्रणामं शिरसा कृत्वा बहुमानात्पुनः पुनः ॥ ३ ॥
केनायमपराधेन राघवो धर्मवत्सलः ।
गुणज्येष्ठो[2] मम ज्येष्ठो मम भ्राता विवासितः ॥ ४ ॥
सर्वथा भवता राजन् कैकेय्यां[4] परिरक्षता[3] ।
नृशंसं च यशोघ्नं च सुमहद्दुष्कृतं कृतम् ॥ ५ ॥
कैकेय्या वचनं श्रुत्वा नृशंसायाः सुदारुणम् ।
पक्षिवद्यदयं क्षिप्तः पुत्रः किं नाम तत्कृतम् ॥ ६ ॥()
प्रशान्तश्चार्यशीलश्च सर्वभूतप्रियंवदः ।
रामः किमकरोत्पापं त्यक्तोऽयं यत्त्वया वने ॥ ७ ॥
पितृपैतामहं राज्यं प्रतिज्ञां परिरक्षता[5] ।
भयाद् वा यदि वा[6] दत्तमत्र स्वार्थे भवान् प्रभुः ॥ ८ ॥
न तु प्रभवसि त्यक्तुमपराधं विना सुतम् ।
स्त्रीविधेयतया राजन् गुणवन्तं विशेषतः ॥ ९ ॥
यदपत्येन कर्त्तव्यं यशो धर्मं च रक्षता ।

---

1 कै, ब, ल—भवतो। 2 म—गुणश्रेष्ठो। 3 कै, ब, ०रक्षिना। 4 ब, ल—कैकेयी। 5 कै, म—०रक्षिता। 6 म—ते। ()ब।

तदकर्त्तव्यमप्येतद्राघवेनोपपादितम् ॥⁰ १० ॥
पित्रा यदपि कर्त्तव्यं यशो धर्मं च रक्षता ।⁰
अनुरूपं च युक्तं च न त्वया तदनुष्ठितम् ॥ ११ ॥
तदस्मान् स्वयमुत्सृज्य स्नेहेन सह पार्थिव ।
शोचितुं नार्हसि पुनः स्वयं पीत्वेव वारुणीम् ॥ १२ ॥
त्वद्विधा हि महात्मानो महाभागा नरर्षभाः ।
परितापेन युज्यन्ते चिन्त्य कार्यमनुष्ठितम् ॥ १३ ॥
लक्ष्मणं त्वभिसंक्रुद्धं ब्रुवाणं परुषं वचः ।
विनिवार्याब्रवीद्रामः सूतं दीनमधोमुखम् ॥ १४ ॥
लक्ष्मणो ऽयमभिक्रुद्धः सुमन्त्र यदभाषत ।
परुषं तन्न संश्राव्यो भवता वसुधाधिपः ॥ १५ ॥
वृद्धः करुणवेदी च मत्प्रवासाच्च शोकवान् ।
सहसा परुषं श्रुत्वा सन्त्यजेदपि जीवितम् ॥ १६ ॥
सुमन्त्र परुषं तस्मान्न वक्तव्यो जनाधिपः ।
विप्रियाण्यनुजीव्याणि न पश्यन्ति भवद्विधाः ॥ १७ ॥
न चास्मासु गतं स्नेहं त्यक्तवान् पृथिवीपतिः ।
सत्यपाशेन संबद्धः स्नेहस्त्वस्य न लुप्यते ॥ १८ ॥
कैकेय्या वरदानेन पिता मे ननु मोहितः ।
मां वने त्यक्तवान् पुत्रमवशः सत्ययन्त्रितः ॥ १९ ॥
मुनिवेशधरः क्रुद्धो लक्ष्मणोऽयममर्षितः ।
क्रूरं किमिव न ब्रूयात्परिहार्यं त्वया तु तत् ॥ २० ॥

⁰ म ।

सर्वदैव प्रियं वाच्यः प्रियार्हो नृपतिस्त्वया ।
अभिवादनपूर्वं च कुशलं कुशलो ह्यसि ॥ २१ ॥
नैतत्संभाव्यते सूत पिता पुत्रं यदौरसम् ।
त्यजेन्निरपराधं हि भाविनोऽर्थवशादृते ॥ २२ ॥
इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे लक्ष्मणसन्देशो ना
चतुष्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

[वं-५१]=[पंचपंचाशः सर्गः]=[दा-५२।३७]

निवर्त्यमानो[1] रामेण सुमन्त्रः शोककर्पितः ।
तत्सर्वं वचनं श्रुत्वा स्नेहात्काकुत्स्थमब्रवीत् ॥ १ ॥
उपचारेण यद्वीर ब्रूयां स्नेहेन विक्लवः ।
भक्तिमानिति मद्वाक्यं तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ २ ॥
कथं तु[2] त्वद्विहीनो[2]ऽहं प्रतियास्यामि तां पुरीम् ।
तव तात वियोगेन पुत्रशोकातुरामिव[3] ॥ ३ ॥
सराममिति तावद्धि रथं दृष्ट्वा पुरं तु तत् ।
त्वया विहीनं दृष्ट्वा तु विदीर्यत्येव सा पुरी ॥ ४ ॥
दैन्यं हि नगरी गच्छेद् दृष्ट्वा शून्यमिमं रथम् ।
हतावशेषं स्वं सैन्यं हतवीरमिवाहवे ॥ ५ ॥
दूरेऽपि निवसन्तं त्वां विन्यस्येवाग्रतः स्थितम् ।
चिन्तयन्त्येव तावत्त्वां निराहाराः कृशाः प्रजाः ॥ ६ ॥
आर्तनादो हि यः पौरैर्मुक्तः पूर्वं विवासने ।
रथस्थं मां निशम्यैकं कुर्युः शतगुणं ततः ॥ ७ ॥
अहं किं वाऽपि वक्ष्यामि देवीं तव सुतो मया ।
नीतोऽसौ मातुलकुलं सन्तापस्त्यज्यतामिति ॥ ८ ॥
सत्यं चैव प्रियं चैव ब्रूयां हि वचनं गुरुम् ।
कथमप्रियमेवाहं ब्रूयां गुरुमिदं वचः ॥ ९ ॥
मम शिष्यत्वमापन्ना इक्ष्वाकुकुलवाहिनः ।

---

1 ल—०माणो । 2 कै—तद्वद्विहीनो । ब—तु नद्विहीनो । 3 ल—०मिमाम् ।

कथं चापि त्वया हीनं रथं वक्ष्यन्ति वाजिनः ॥ १० ॥
यदि मे याचमानस्य त्यागमेवं करिष्यसि ।
सरथो ऽग्निं प्रवेक्ष्यामि त्यक्तमात्रो ह्यहं त्वया ॥ ११ ॥
भविष्यन्ति च ते यानि तपोविघ्नकराणि च ।
रथेन प्रतिबाधिष्ये तानि सर्वाणि राघव ॥ १२ ॥
त्वत्कृते न मया प्राप्तं रथचर्याकृतं सुखम् ।
आशंसे त्वत्कृतेनाहं वनवासकृतं सुखम् ॥ १३ ॥
प्रसीदेच्छामि चारण्ये भवितुं प्रत्यनन्तरः ।
वने ऽपि यद्यहं वीर निवसेयं त्वदाश्रितः ॥ १४ ॥
परिचर्यां हि ते कृत्वा प्राप्नुयां परमां गतिम् ।
तव शुश्रूषणं सर्वं गमिष्यामि[4] वने वसन् ॥ १५ ॥
अयोध्यां शक्रलोकं वा सर्वमेव त्यजाम्यहम् ।
न हि शक्या प्रवेष्टुं सा मयाऽयोध्या त्वया विना ॥ १६ ॥
राजधानी महेन्द्रस्य यथा दुष्कृतकर्मणा[5] ।
इमे ते ऽपि हया वीर यदि ते वनवासिनः ॥ १७ ॥O
परिचर्यां करिष्यन्ति प्राप्स्यन्ति परमां गतिम् ।
वनवासे क्षयं प्राप्ते ममैष हि मनोरथः ॥ १८ ॥
यदनेन रथेन त्वां प्रापयेयं पुरीमितः ।
चतुर्दश हि वर्षाणि सहितस्य वने त्वया ॥ १९ ॥
क्षणभूतानि यास्यन्ति युगवच्च[6] विपर्यये ।
भक्तवत्सल तिष्ठन्तं भर्तृभक्तगते पथि ॥ २० ॥

4 ब—भविष्यामि । म करिष्यामि । 5 कै—र्मणः । Oम । 6 ब-०पञ्च ।

भृत्यं भक्तं स्थितं सत्ये न मां त्यक्तुं त्वमर्हसि ।
एवं बहुविधं दीनं याचमानं पुनः पुनः ॥ २१ ॥
भृत्यानुकंपी काकुत्स्थ इदं वचनमब्रवीत् ।
जानामि परमां भक्तिं मयि ते भक्तवत्सल ॥ २२ ॥
शृणु चापि यदर्थं त्वां प्रेषयामि पुरीमितः ।
नगरीं त्वां गतं दृष्ट्वा जननी मे यवीयसी ॥ २३ ॥
कैकेयी प्रत्ययं गच्छेदिति रामो वनं गतः ।O
परितुष्टा हि सा देवी वनवासं गते मयि ।
राजानं नातिशङ्केत मिथ्यावादीति धार्मिकम् ॥ २४ ॥O
एष मे परमः कामो यदियं मे यवीयसी ।O
भरते रक्षितं स्फीतं पुत्रे राज्यमवाप्नुयात् ॥ २५ ॥
मम प्रियार्थं राज्ञश्च निवर्तस्व पुरीं व्रज ।
सन्दिष्टश्चापि यानर्थांस्तांस्तान् ब्रूयास्तथा तथा ॥ २६ ॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे सुमन्त्रविसर्जनं नाम पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

O ब ।

[वं-५२]=[षट्पंचाशः सर्गः]=[दा-५२।६५]

इत्युक्त्वा वचनं सूतं सान्त्वयित्वा पुनः पुनः ।
गुहं वचनमक्लीबं रामो हेतुमदब्रवीत् ॥ १ ॥
जटाः कृत्वा गमिष्यामि न्यग्रोधात् क्षीरमानय ।
स क्षिप्रं राजपुत्राय गुहः क्षीरमुपानयत् ॥ २ ॥
लक्ष्मणस्यात्मनश्चैव रामश्चक्रे जटास्ततः ।
वृत्तबाहू नरश्रेष्ठौ जटामण्डलधारिणौ ॥ ३ ॥
अशोभेतामृषिसमौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।[1]
ततो गङ्गामभिमुखः पुण्यां सरितमुत्तमाम् ॥ ४ ॥
राघवः प्रययौ मार्गमास्थितः सहलक्ष्मणः ।
तापसव्रतमाश्रित्य ततो गुहमुवाच ह ॥ ५ ॥
अप्रमादो बले[2] कोशे दुर्गे जनपदे तथा ।
कार्यस्ते गुह राज्यं स्यात् सदा रक्षितुमङ्ग तत ॥ ६ ॥
ततस्तं समनुज्ञाय गुहमिक्ष्वाकुनन्दनः ।
जगाम वनमव्यग्रः सभार्यः सहलक्ष्मणः ॥ ७ ॥
स तु दृष्ट्वा नदीतीरे नावमिक्ष्वाकुनन्दनः ।
शीघ्रं तितीर्षुर्गंगायां लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥
आरोह त्वं नरव्याघ्र स्थितां नावमिमां शनैः ।
सीतां चारोपय क्षिप्रं परिरभ्य मनस्विनीम् ॥ ९ ॥
स भ्रातुः शासनं कुर्वन् सर्वमप्रातिकूलवत ।
आरोप्य मैथिलीं पूर्वमारुरोह स्वयं ततः ॥ १० ॥

---

1 म—अतः परं आसर्गान्तं त्रुटितं भाति । 2 कै—बलकोशे ।

अथारुरोह तेजस्वी स्वयं लक्ष्मणपूर्वजः ।
ततो निषादाधिपतिं गुहो ज्ञातीनचोदयत् ॥ ११ ॥
आज्ञाय स सुमन्त्रं च सामात्यं चैव तं गुहम् ।
आस्थाय यानं काकुत्स्थश्चोदयामास नाविकान् ॥ १२ ॥
ततस्तैश्चोदिता सा नौः कर्णधारैः समाहता ।
बाहुवेगप्रतिहता गङ्गासलिलमध्यगा ॥ १३ ॥
मध्यं तु समनुप्राप्ता भागीरथ्याः सुमध्यमा ।
वैदेही प्राञ्जलिर्भूत्वा तां नदीमिदमब्रवीत् ॥ १४ ॥
पुत्रो दशरथस्यायं महाराजस्य धीमतः ।
निदेशं पालयत्वेनं गङ्गे त्वदभिरक्षितः ॥ १५ ॥
चतुर्दश हि वर्षाणि समग्राण्युष्य कानने ।
भ्रात्रा सह मया चैव पुनः प्रत्यागमिष्यति ॥ १६ ॥
ततस्त्वां देवि सुभगे क्षेमेण पुनरागता ।
यक्ष्ये प्रमुदिता गङ्गे सर्वकामसमृद्धये ॥ १७ ॥
त्वं हि त्रिपथगा देवि ब्रह्मलोकं समीक्षसे ।
भार्या चोदधिराजस्य लोकेऽस्मिन्संप्रदृश्यसे ॥ १८ ॥
सा त्वां देवि नमस्यामि प्रशंसामि च शोभने ।
प्राप्तराज्ये नरव्याघ्रे शिवेन पुनरागते ॥ १९ ॥
गवां शतसहस्राणि वस्त्राण्यन्नं च पेशलम् ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदास्यामि तव प्रियचिकीर्षया ॥ २० ॥
तथा संभाषमाणा तु सीता गङ्गामनिन्दिता ।
दक्षिणा दक्षिणं तीरं क्षिप्रमेवाभ्युपागमत् ॥ २१ ॥

प्रेपितायां ततो नावि भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
तटस्थौ गुहसूतौ तावीक्षन्तौ बाष्पविक्लवौ ॥ २२ ॥
सा वायुवेगाभिहता बाहुवीर्यप्रनोदिता ।
निगृह्या राजपुत्रौ तौ परं पारमुपागमन् ॥ २३ ॥
तीरं तु समनुप्राप्य नावं हित्वा नरर्षभौ ।
प्रणामं चक्रतुर्वीरौ गङ्गायै सुसमाहितौ ॥ २४ ॥
प्रातिष्ठत ततो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः ।[A1]
स राघवस्ततो धीमान् वनवासाय निश्चितः ॥ २५ ॥
अथाब्रवीन्महाबाहुः सुमित्रानन्दवर्द्धनम् ।
अग्रतो गच्छ सौमित्रे सीता त्वामनुगच्छतु ॥ २६ ॥
पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि त्वां च सीतां च पालयन् ।
अद्यैव दुःखं वैदेही वनवासस्य वेत्स्यति ॥ २७ ॥
सिंहव्याघ्रवराहाणां निनादं प्रसहिष्यति ।
अनालोकयमानौ तां सुमन्त्रो यत्र वै दिशि ॥ २८ ॥
जग्मतुस्तौ धनुष्पाणी सीतया सह तद्वनम् ।
अदर्शनगतौ ज्ञातौ (ज्ञात्वा ?) भ्रातरौ पार्थिवात्मजौ[3] ॥ २९ ॥
गुहः सुमन्त्रः सस्नेहं न्यवर्त्तेतां ततः पुनः ।
नानाविहगसंघुष्टं वनं तद्व्यवगाहताम् ॥ ३० ॥
सुपुष्पिताग्रैस्तरुभिर्नानाविटपसङ्कुलम् ।
अदूरमथ[4] गत्वा तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।[O] ३१ ॥

A1 ल वानप्रस्थवपु वीरो गंगाया: सुसमाहितः । 3 ल-रामलक्ष्मणौ ।
4 कं-सुदूरमेव । O ल ।

अवरोहशताकीर्णं वटमासाद्य तस्थतुः ।
तौ तत्र सुखमासीनौ नातिदूरे ऽभ्यपश्यताम्[5] ॥ ३२ ॥
सुदर्शनामितिख्यातां पद्मिनीं पद्मसङ्कुलाम् ।
हंसकारण्डवाकीर्णां चक्रवाकोपशोभिनाम् ॥ ३३ ॥
दर्शयामास काकुत्स्थो वैदेह्या लक्ष्मणस्य च ।
पश्य लक्ष्मण पद्मिन्या यथेदं शोभितं वनम् ॥ ३४ ॥
दिव्यतोयाभिवाहिन्या मन्दाकिन्या यथा दिवम् ।
इहैवाद्य निवत्स्यामः परिश्रान्ता हि मैथिली ॥ ३५ ॥
रम्ये पुष्करिणीतीरे पद्मवासितमारुते ।
अथ पुष्करिणीं शीघ्रमवतीर्य तु लक्ष्मणः ॥ ३६ ॥
पद्मानि समृणालानि[6] सुगन्धीनि बहूनि च ।
उत्पाट्य नीत्वा सीतायै प्रीत्यर्थं समुपानयत् ।
आदाय तानि वैदेही सपद्मा श्रीरिवाभवत् ॥ ३७ ॥
त्रयस्ते हि त्रिरात्राय मृणालैः प्राणधारणम् ।
कृत्वा न्यग्रोधमाश्रित्य रात्रौ वासमकल्पयन्[7] ॥ ३८ ॥
गुहेन सार्द्धं तु ततः सुमन्त्रो रामं व्रजन्तं प्रततं समीक्ष्य ।
अथ(ध्व?) प्रकर्षाद्विनिवृत्तदृष्टि र्मुमोच वाष्पं व्यथितान्तरात्मा ३९

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे गङ्गावतरणं
नाम षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

5 कै—०पद्यताम् । 6 ब—सुमृ० । 7 ब—स समकल्पयन् ।

[वं-५३]=[सप्तपंचाशः सर्गः]=[दा-५३]

तं न्यग्रोधमुपागम्य सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम् ।
रामो रमयतां श्रेष्ठः सौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
अद्य नः प्रथमा रात्रिर्निर्गतानामियं पुरात् ।
सतीनामिव मुक्तानां स्वजनेन भविष्यति ॥[1] २ ॥
मा ते भीर्मा सुखोत्कण्ठा मा व्यथा स्वजनं विना ।
अद्यप्रभृति कर्तव्यं सीताया रक्षणं त्वया ॥ ३ ॥
मया च सततं कार्यमप्रमत्तेन लक्ष्मण ।
तृणान्याहृत्य सौमित्रे मम त्वं शयनं कुरु ॥ ४ ॥
मत्त एवाविदूरे च शयनं रचयात्मनः ।
इत्युक्तो लक्ष्मणश्चक्रे भ्रातुः शय्यामथात्मनः ॥ ५ ॥
वृक्षपर्णैस्तृणैश्चैव तस्याधस्ताद्वनस्पतेः ।
तत्र संविश्य काकुत्स्थो महार्हशयनोचितः ॥ ६ ॥
चक्रे सह कथा रात्रौ सीतया लक्ष्मणेन च ।
ध्रुवमद्य महाराजः सुखं स्वपिति लक्ष्मण ॥ ७ ॥
सकामया सेव्यमानः कैकेय्या परितुष्टया ।
राज्यलुब्धा नृशंसा च कैकेयी तं नराधिपम् ॥ ८ ॥
आगते भरते प्राणैः कथं न च्यावयेदपि[2] ।
वृद्धोऽनाथश्च नृपति मया चैव विनाकृतः ॥ ९ ॥
नावेक्षते स कामात्मा प्राणांस्तस्या वशे स्थितः ।

---

1 ङ- अस्मिन् हि विजने रण्ये नानासत्वनिषेविते । 2 कै, म, ङ- द्याव० ।

इदं व्यसनमालोक्य राज्ञः स्वमतिविभ्रमम् ॥ १० ॥
काम एवार्थधर्माभ्यां गरीयानिति मे मतिः ।
को हि विद्वानपि पुमान् प्रमदायाः कृते त्यजेत् ॥ ११ ॥
छन्दानुवर्तिनं पुत्रमिष्टं मामिव लक्ष्मण ।
सुखी च स सुभागश्च[3] कैकेय्या भरतः सुतः ॥ १२ ॥
मुदितः कोशलानेतान् यो भोक्ष्यत्यधिराजवत् ।
स हि सर्वस्य राज्यस्य सुखमद्य करिष्यति ॥ १३ ॥
ताते च तमसा ग्रस्ते मयि चारण्यमाश्रिते ।
यः परित्यज्य धर्मार्थौ काममेवानुवर्त्तते ॥ १४ ॥
स कृच्छ्रं महदाप्नोति राजा दशरथो यथा ।
मन्ये दशरथान्ताय मम प्रव्रजनाय च ॥ १५ ॥
उत्पन्ना सौम्य कैकेयी राज्यार्थे भरतस्य च ।
अपि नामाद्य कैकेयी सौभाग्यमदगर्विता ॥ १६ ॥
न प्रबाधेत मद्द्वेषात् कौशल्यां मद्विनाकृताम् ।
मत्पक्षग्राहिणीं नूनं सुमित्रां च तपस्विनीम् ॥ १७ ॥
इदानीमपि तस्मात्त्वमयोध्यां गच्छ लक्ष्मण ।
अहमेको गमिष्यामि सीतया सहितो वनम् ॥ १८ ॥
अनाथायास्तु मे मातुर्गत्वा नाथो भवानघ ।
क्षुद्रा चापि नृशंसा च कैकेयी पापनिश्चया ॥ १९ ॥
असंशयं मम द्वेषात् कौशल्यां पीडयिष्यति ।
ज्ञातिषु ध्रुवमन्यास्तु स्त्रियः पुत्रैर्वियोजिताः ॥ २० ॥

3 ब, म, ल—सुभाग्यश्च ।

जनन्या मम मामत्र ततस्तादृदमागतम् ।
मया हि चिरलब्धेन दुःखसंवर्द्धितेन च ॥ २१ ॥
विप्रायुज्यत कौशल्या फलकाले धिगस्तु माम् ।
मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत्पुत्रमीदृशम् ॥ २२ ॥
सौमित्रे योऽहमम्बाया जातः⁽⁾ शोकाय⁽⁾ दुःखदः⁽⁾ ।
शोचन्त्याश्चाल्पभाग्याया न किञ्चिदुपकुर्वता ॥ ⁽⁾२३ ॥
पुत्रेण⁽⁾ किमपुत्राया⁽⁾ मया कार्यमरिन्दम ।
अल्पभाग्या हि मे माता दुःखानामेव केवलम् ॥ २४ ॥
भागिनी न तु सौमित्रे सुखानामिति मे मतः
एको योऽहमयोध्यां च पृथिवीं चापि लक्ष्मण ॥ २५ ॥
दहेयमिषुभिः क्रुद्धो नात्र वीर्यमकारणम् ।
अधर्मप्राप्तिभीतोऽहं लोकवादभयेन च ॥ २६ ॥
तेन लक्ष्मण नाद्याहमात्मानमभिषेचये ।
एतच्चान्यच्च विविधं विलप्य बहुदुःखितः ॥ २७ ॥
अश्रुपूर्णमुखो रामो निशि तूष्णीमुपाविशत् ।
विलप्योपरतं चैनं शान्तार्चिषमिवानलम् ॥ २८ ॥
समुद्रमिव निर्वेगमिति ह्योवाच लक्ष्मणः ।
महासत्त्व न शोकस्य वशमागन्तुमर्हसि ॥ २९ ॥
त्वद्विधा हि न शोचन्ति कृच्छ्रेऽपि व्यसनागमे ।
इदं हि ते न व्यसनमवगच्छामि[4] ते[4] प्रभो ॥ ३० ॥
अनुरागं तु पौराणां मन्ये तेऽभ्युदयागमम् ।

⁽⁾ल । 4 म—०गच्छाम्यहं ।

अयोध्या सा पुरी कृत्स्ना संप्रत्यद्यापि दुःखिता ॥ ३१ ॥
न राजते त्वया हीना विचन्द्रा रजनी यथा ।
नैतद्युक्तं च ते राजन् यदिदं परिदेवसे ॥ ३२ ॥
विषादयसि सीतां च मां चैव पुरुषर्षभ ।
न हि सीता त्वया हीना न चाहमपि राघव ॥ ३३ ॥
मुहूर्तमपि जीवावो जलान् मत्स्य इवोद्धृतः[5] ।
न हि तातं न शत्रुघ्नं न सुमित्रां परन्तप ।
अद्याहं द्रष्टुमिच्छामि स्वर्गं चापि विना त्वया ॥ ३४ ॥
स लक्ष्मणस्यार्थवदूर्जितं वचो निशम्य रामो हितमेव चात्मनः ।
प्रणुद्य शोकं परिरभ्य लक्ष्मणं स्थितोऽस्मि शोकादिति[6] राघवोऽब्रवीत्

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे रामविलापो

नाम सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

5 ब—मत्स्या इवोद्धताः । 6 कं—लोकादिति ।

[त्रं-५४]=[अष्टपंचाशः सर्गः]=[दा-५४]

तां तु रात्रिमुषित्वा ते तस्मिन् न्यग्रोधपादपे ।
विमले ऽभ्युदिते सूर्ये तस्माद्वासात्प्रतस्थिरे ॥ १ ॥
यत्र भागीरथी पुण्या यमुनामभिपद्यते ।
ततस्तां दिशमुद्दिश्य विगाह्य सुमहद्वनम् ॥ २ ॥
ते भूमिभागान् विविधान् देशांश्चापि मनोरमान् ।
अदृष्टपूर्वान् पश्यन्तो विचित्रकुसुमाश्रयान् ॥ ३ ॥
पन्थानं क्षेममासाद्य प्रययुः सुमनस्विनः ।
ततो निवृत्ते दिवसे रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ ४ ॥
प्रयागमभितः पश्य सौमित्रे धूममुद्गतम् ।
अग्नेर्भगवतः केतुं मन्ये सन्निहितं मुनिम् ॥ ५ ॥
नूनं प्राप्ताः स्म संयोगं गङ्गायमुनयोः शिवम् ।
तथा हि श्रूयते शब्दो वारिसंघर्षजो महान् ॥ ६ ॥
दारूणीव विशीर्णानि वनस्थैस्तरुजीविभिः ।
भरद्वाजाश्रमे चैते दृश्यन्ते विविधा द्रुमाः ॥ ७ ॥
त एवं क्रमशो गत्वा लम्बमाने दिवाकरे ।
भरद्वाजाश्रमं पुण्यमासेदुः श्रमकर्षिताः ॥ ८ ॥
तदाश्रमपदं प्राप्य रामः सौमित्रिणा सह ।
त्रासयन् सायुधः सुप्तान् विवेश मृगपक्षिणः ॥ ९ ॥
आगत्य चाश्रमद्वारं मुनेर्दर्शनकांक्षया ।
तस्थौ रामः सह श्रीमान् सीतया लक्ष्मणेन च ॥ १० ॥
तौ विदित्वाऽऽगतौ चापि भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।

प्रवेशयामास मुनिः स्वमाश्रमपदं तदा ॥ ११ ॥
हुताग्निहोत्रमासीनं महाभागं कृताञ्जलिः ।
रामः सौमित्रिणा सार्धं सीतया चाभ्यवादयत ॥ १२ ॥
मृगपक्षिभिरासीनैर्वृतो मुनिभिरेव च ।
राममागतमभ्यर्च्य सोऽभ्यभाषत वै मुनिः ॥ १३ ॥
न्यवेदयत चात्मानं तस्मै लक्ष्मणपूर्वजः ।
पुत्रौ दशरथस्यावां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १४ ॥
भार्या ममेयं कल्याणी वैदेही जनकात्मजा ।
मामनुव्रजमानेयं तपोवनमुपागता ॥ १५ ॥
पित्रा प्रव्राज्यमानं मां सौमित्रिश्चानुजः प्रियः ।
स्वयमन्वगमद् भ्राता वनमेष दृढव्रतः ॥ १६ ॥
पित्रा नियुक्तो भगवन् प्रवेक्ष्यामि महद्वनम् ।
धर्ममेव चरिष्यामि पत्रमूलफलाशनः ॥ १७ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः ।
उपानयत धर्मात्मा रामायार्घ्यमपस्ततः ॥ १८ ॥
प्रतिगृह्य च काकुत्स्थमासनेनोदकेन च ।
न्यमन्त्रयत मूलैश्च फलैश्च फलभोजनम्[1] ॥ १९ ॥
प्रतिगृह्य तु तां पूजामुपविष्टं स राघवम् ।
भरद्वाजोऽब्रवीद्वाक्यं धर्मयुक्तमिदं हितम् ॥(२० ॥
चिरस्य खलु काकुत्स्थ पश्यामि त्वामिहागतं ।
श्रुतं तव मया चेदं विवासनमकारणात् ॥ २१ ॥)

1 ल—फलभोजिनं । ()म ।

अवकाशो विविक्तोऽयं रमणीयश्च राघव ।
गङ्गायमुनयोः पुण्यः सङ्गमो लोकविश्रुतः ॥ २२ ॥
इह राम मया सार्धं वस त्वं यदि रोचते ।
वनं साधारणं हीदं तपोवननिवासिनाम् ॥ २३ ॥
इहैव रंस्यसे सार्धं सीतया लक्ष्मणेन च ।
तमेवं वादिनं रामः कृताञ्जलिरभाषत ।
यमतोऽनुग्रहो मे स्यादिह ब्रह्मंस्त्वया सह ॥ २४ ॥
इतस्तु विषयोऽस्माकमभ्याशे तपतां वर ।
सुदर्शमिव पश्यामि पौराणामिह चागमम् ॥ २५ ॥
अभ्याशे वर्तमानं मां श्रुत्वा दूराद्दिदृक्षवः ।
आगमिष्यन्ति वैदेहीं मामपि प्रेक्षका जनाः ।
अनेन कारणेनाहमिह वासं न रोचये ॥ २६ ॥
एकान्ते पश्य भगवन्नाश्रमस्थानमुत्तमम् ।
रमते यत्र वैदेही सुखेन जनकात्मजा ।
वसेयं यत्र वैदेह्या सहितो लक्ष्मणेन च ॥ २७ ॥
स्वजनेनापरिज्ञातो निरुद्वेगः सुखी मुने ।
इति रामवचः श्रुत्वा भरद्वाजो महामुनिः ॥ २८ ॥
ध्यात्वा मुहूर्तमेकाग्रो रामं वचनमब्रवीत् ।
त्रियोजनमितस्तात गिरिर्यत्र निवत्स्यसि ॥ २९ ॥
महर्षिजनसंजुष्टः[2] सर्वर्तुसुखदः शिवः ।
गोलाङ्गूलाभिनादितो[3] वानरर्क्षनिषेवितः ॥ ३० ॥

---

2 ब—०घुष्टः । 3 म—०रुदितो ।

चित्रकूट इति ख्यातो गन्धमादनसन्निभः ।
यावद्धि चित्रकूटस्य नरः शृंगाण्युदीक्षते ॥ ३१ ॥
तावत्कल्याणमाप्नोति धर्मे च कुरुते मनः ।
ऋषयस्तत्र बहवो विहृत्य शरदां शतम् ॥ ३२ ॥
तपसा दिवमारूढाः सुकृतैकनिषेवणात् ।
तं विविक्तमहं मन्ये वासं ते रघुनन्दन ॥ ३३ ॥
इह वा पुरुषव्याघ्र वस राम मया सह ।
सर्वथा रंस्यसे राम तस्मिन्नाश्रममण्डले ॥ ३४ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया[4] ।
एवमुक्त्वा ततः कामैर्भरद्वाजोऽथ राघवम् ॥ ३५ ॥
सहभार्यं सह भ्रात्रा महर्षिः प्रत्यपूजयत् ।
तस्य भुक्तवतस्तत्र तं मुनिं समुपासतः[5] ॥ ३६ ॥
जगाम रजनी पुण्या विचित्राः शृण्वतः कथाः ।
तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां सन्ध्यामन्वास्य सानुजः ॥३७॥
उपतस्थे महर्षिं तं तमुवाच ततो मुनिः ।
चित्रकूटमितो गत्वा रमस्व[6] सह सीतया ॥ ३८ ॥
लक्ष्मणेन च विस्रब्धं[7] तत्र त्वं विहरिष्यसि ।
शुचिशीताम्बुवाहिन्या मन्दाकिन्योपशोभिते ॥ ३९ ॥
मन्येऽहं तत्र ते वासं रम्ये स्वादुफलोदके ।
तत्र कुञ्जरयूथानि मृगयूथानि चाभितः ॥ ४० ॥

---

4 ब—सीतया । 5 कै, ब—समुपागतः । 6 कै, ब—रामास्व । म—रामास्व । 7 ब—संरब्धं ।

विचरन्ति वनान्तेषु तत्र द्रक्ष्यसि राघव ।

दात्यूह-कोयष्टिक-कोकिलस्वनैर्विनादितं तं वसुधाधरं शिवम् ।

मृगैश्च मत्तैर्बहुभिश्च कुञ्जरैः सुरम्यमासाद्य समावसाश्रमम् ॥४१॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे भरद्वाजाभिगमनं

नाम अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥



[वं-५५]=[एकोनषष्टितमः सर्गः]=[दा-५५]

तौ तत्र रजनीमुष्य सुखमिक्ष्वाकुनन्दनौ ।
अभिवाद्य महर्षिं तं दधतुर्गमने मनः ॥ १ ॥
प्रयातां रजनीं वीक्ष्य[1] भरद्वाजो महामुनिः ।
चित्रकूटस्य पन्थानमुपदेष्टुं प्रचक्रमे ॥ २ ॥
राघव त्वमितो देशान् पश्यन्नावसथान्वृहन् ।
नातिदूरे समासाद्य तरेथा[2] यमुनां नदीम् ॥ ३ ॥
कृत्वोडुपं ग्राहवतीं सा हि नित्यं महानदी ।[A]
तस्या नद्याः परे पारे नातिदूरे महाद्रुमः ॥ ४ ॥
सत्यापि* पावितः[3] श्रीमान् न्यग्रोधो हरितच्छदः ।
नानासत्त्वगणावासः[4] श्याम इत्यभिविश्रुतः ॥ ५ ॥
सीताऽपि तं नमस्कृत्य समभ्यर्च्य च पादपम् ।
अभियाचेत कल्याणं वरं यदभिकांक्षितम् ॥ ६ ॥
क्रोशमात्रं ततो गत्वा नीलं द्रक्ष्यथ काननम् ।
पलाशबदरीमिश्रं मधूकाम्रवनायुतम्[5] ॥ ७ ॥
स पन्थाश्चित्रकूटस्य गतः सुबहुशो मया ।
रम्यश्चाश्रमयुक्तश्च वनदोषैश्च वर्जितः ॥ ८ ॥
पन्थानमुपदिश्यैवं भरद्वाजो न्यवर्तत ।
रामेण लक्ष्मणेनापि सीतया चाभिवन्दितः ॥ ९ ॥
उपावृत्ते मुनौ तस्मिन् रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।

---

1 म-प्रेक्ष्य । 2 म-तुरीवा । A म । श्रीमते रामानुजाय नमः । शुभं । 3 ल-स चापि पावितः । (सत्याभियाचितः ?) । 4 ब. म -०गुणावासः । 5 कै. म. ल मधुका० ।

कृतपुण्योऽस्मि सौमित्रे मुनिर्यन्नमाऽनुकम्पते ॥ १० ॥

इति तौ पुरुषव्याघ्रौ कथयन्तौ यशस्विनौ ।
सीतामेवाग्रतः कृत्वा कालिन्दीं जग्मतुस्तदा ॥ ११ ॥

तत्र बद्ध्वोडुपं काष्ठैर्वेणुभिश्चापि तीरजैः ।
सीतामारोपयाञ्चक्रे रामस्तत्र स्वयं तदा ॥ १२ ॥[0]

परिगृह्य हृदा बालां कम्पमानां लतामिव ।
सीतामारोप्य रामोऽपि लक्ष्मणं चाप्यरोहयन् ॥ १३ ॥

तेन प्लवेनाऽप्सववर्तां शीघ्रगामूर्मिमालिनीम् ।
तीरजैर्गहनां वृक्षैस्ते ततो यमुनां नदीम् ॥ १४ ॥

सन्तीर्य प्लवमुत्सृज्य प्रणम्य यमुनां नदीम् ।
शीतच्छायं समासेदुः श्यामं न्यग्रोधपादपम् ॥ १५ ॥

अर्चयित्वा च तं सीताऽयाचतेदं कृताञ्जलिः ।
चिरं जीवतु मे वृक्ष श्वशुरः कोसलेश्वरः ॥ १६ ॥

भर्ता मे देवराश्चैव जीवन्तु भरतादयः ।
कौशल्यां चैव जीवन्तीं पश्येयमिति मैथिली ॥ १७ ॥

ययाचे तं ततोऽभ्येत्य न्यग्रोधं सत्ययाचनम् ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य ततस्ते प्रययुस्तदा ॥ १८ ॥

क्रोशमात्रं ततो गत्वा नीलमासाद्य तद्वनम् ।
हत्वा तत्र मृगं मेध्यं भृत्वा तमुपयोज्य[6] च ॥ १९ ॥

विहृत्य तस्मिन् बहुपक्षिनादिते वने यथेष्टं मृगयूथसेविने ।
ततो निवासार्थमुपाययुः शिवं शुभं नदीतीरसमुत्थितं द्रुमम् ॥२०॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे यमुनातीरनिवासो नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

---

[0]म [6] म तमुपयुज्य ।

[वं-५६]=[षष्टितमः सर्गः]=[दा-५६]

अथ रात्रौ व्यतीतायां सुखसुप्तं श्रमालसम् ।
राम स्तूत्थापयामास लक्ष्मणं शनकैस्तदा ॥ १ ॥
खगानां शृणु सौमित्रे वल्गु व्यवहारतां[1] वने ।
संप्रतिष्ठामहे भूयो यदि लक्ष्मण मन्यसे ॥ २ ॥
स सुप्तः ससुखं भ्रात्रा लक्ष्मणः प्रतिबोधितः ।
जहौ निद्रां क्लमं चैव तं चैवाध्वपरिश्रमम् ॥ ३ ॥
तत उत्थाय सहसा स्पृष्ट्वा च सलिलं शुचि ।
उपास्य च शुभां सन्ध्यां तत्रैवाभिप्रतस्थिरे ॥ ४ ॥
चित्रकूटस्य पन्थानमासाद्य कृतनिश्चयाः ।
तत्र वासं समुद्दिश्य ययुः शीघ्रपराक्रमाः ॥ ५ ॥
अचिरेण समासाद्य ततस्तच्चित्रपादपम् ।
चित्रकूटवनं रामः सीतां वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
पश्यैतान् पुष्पितान् सीते मालिनीं सरितं प्रति ।
शिशिरात्ययदग्धान् हि प्रदीप्तानिव किंशुकान् ॥ ७ ॥
कर्णिकारवनं चापि पश्य मन्दाकिनीमनु ।
दीपितं रुचिरैः पुष्पैः प्रदीप्तैः काञ्चनैरिव[2] ॥ ८ ॥
पश्य भल्लातकान् बिल्वान् पनसांस्तिन्दुकांस्तथा ।
फलभारनतांश्चैव तथाऽन्यान् शुभपादपान् ॥ ९ ॥
शक्यमत्र फलैरेव जीवितुं तनुमध्यमे ।
अहो स्वर्गोपमं प्राप्ताश्चित्रकूटमिमं वयम् ॥ १० ॥

1 व-व्याहरणं । 2 म-प्रदीप्तैरिव कांचनैः ।

पश्य द्रोणप्रमाणि लम्बमानानि लक्ष्मण ।
चितानि चित्रकूटेऽस्मिन् मधूनि मधुपैः खगैः ॥ ११ ॥
असौ कूजति दात्यूहस्तं शिखी प्रतिकूजति ।
तं चोपहसतीवायं कूजंश्च जलकुक्कुटः ॥ १२ ॥
परपुष्टरुतं श्रुत्वा गायन्त इव कानने ।
भ्रमरा विचरन्त्येते पुष्पपानकलम्बनाः ॥ १३ ॥
पश्य मन्दाकिनीतीरे कुसुमप्रकरैः प्रिये ।
वितानानीव शुभ्राणि शयनानि द्रुमे द्रुमे ॥ १४ ॥
शिलातलानि नीलानि विमलानि शुचिस्मिते ।
लतावृक्षाश्रितानीह पश्य रम्याणि भामिनि ॥ १५ ॥
मातङ्गयूथविचिते नानाविहगनादिते ।
नानामृगगणाकीर्णे शैलेऽस्मिन् रम्यकानने ॥ १६ ॥
वैदेहि विचरिष्यामः सुखमत्र वयं प्रिये ।
इह प्राप्स्यसि वैदेहि मया सह परां रतिं[१] ॥ १७ ॥
अवेक्षमाणा एवं ते रम्यां मन्दाकिनीं नदीम् ।
चित्रकूटं समाजग्मु र्नानाकुसुमितद्रुमम् ॥ १८ ॥
तस्य शैलस्य पादे तु विविक्ते सलिलावृते ।
आश्रमं चक्रतुश्चारु भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १९ ॥
गजभग्नान्युपाहृत्य दारूण्युपवनान्तरात् ।
लतावितानबद्धे द्वे चक्रतुः सदने पृथक् ॥ २० ॥

---

१ ब, ल गतिं ।

वृक्षपर्णैश्च बहुभिश् छादयामासतुस्ततः ।
त पर्णशाले कृत्वाऽथ शाधयामास लक्ष्मणः ॥ २१ ॥
मृदोपलेपनं चक्रे वैदेही तनुमध्यमा ।
कृत्वाऽऽश्रमपदं रामस्ततो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २२ ॥
मृगमाहृत्य सौमित्रे चरुं श्रपय मा चिरम् ।
तेन यष्टुमिहेच्छामि चरुणाऽऽश्रमदेवताः[4] ॥ २३ ॥
इत्युक्तो लक्ष्मणो भ्रात्रा हत्वा कृष्णमृगं वने ।
आहृत्य चानयित्वाऽग्निं श्रपयामास तं चरुम् ॥ २४ ॥
तं मृगं संस्कृतं कृत्वा सुष्टुपक्कं च लक्ष्मणः ।
उवाच राममभ्येत्य कृताञ्जलिरिदं वचः ॥ २५ ॥
आज्ञया ते मयाऽऽहृत्य भृतः कृष्णो मृगो[5] वनात् ।
यष्टुमर्हसि तेन त्वं देवता अभिकांक्षिताः ॥ २६ ॥
इत्युक्तो राघवः स्नात्वा जप्त्वा च विधिवत्तदा ।
इन्ध्याग्निं[6] मन्त्रवत्तत्र ततस्तु जुहुवे हविः ॥ २७ ॥
हविर्हुत्वा च देवेभ्यः पितृभ्यस्तदनन्तरम् ।
निर्ववाप पवित्रेषु निर्वापं[7] सजलाञ्जलिम् ॥ २८ ॥
न्युप्य चैव निवापं तं[8] भूतेभ्योऽपि विधानतः ।
चकार बलिनिर्वापं राघवस्तदनन्तरम् ॥ २९ ॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा हुतशेषं ततः स्वयम् ।
उपविश्योपयुयुजे कृते पर्णपुटे शुभे ॥ ३० ॥

---

4 कै, ब, ल, म—वरुणाश्रम० । 5 म—कृष्णमृगो । 6 ल इष्ट्वाऽग्निं । ब—संदीप्य । 7 ल—निवापं । 8 ल—च ।

परिवेष्य च सीताऽपि तावुभौ भर्तृदेवरौ ।
एकान्तं समुपागम्य ततः शेषमुपाददे ॥ ३१ ॥
अनेकनानाविधपक्षिनादिते विचित्रपुष्पस्तवकोपशोभिते ।
नगोत्तमे तत्र निवासमेयिवां स्तुतोष रामः सहलक्ष्मणस्तदा ॥३२॥
तं रम्यमासाद्य हि चित्रकूटं तां चैव पुण्यां सरितं सुतीर्थाम् ।
मन्दाकिनीं पुष्पफलाढ्यतीरां दुःखं जहुस्ते वनवासमूलम् ॥३३॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे चित्रकूटनिवासो
नाम षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

[वं ५७]=[एकषष्टितमः सर्गः]=[दा-५७]

स शोचित्वा तु सुचिरं सुमन्त्रेण गुहः सह ।
गङ्गापारगतं रामं जगाम स्वपुरं ततः ॥ १ ॥
अनुज्ञाप्य सुमन्त्रोऽपि योजयित्वा हयान् रथे ।
अयोध्यामेव नगरीं प्रययौ भृशदुर्मनाः ॥ २ ॥
सोऽतीत्य सुबहून् देशान् सरितश्च सरांसि च ।
कालेन नातिमहता ग्रामांश्च नगराणि च ॥ ३ ॥
अयोध्यामाजगामार्तो निवृत्तेऽहनि सारथिः ।
आर्तनारीनरगणां दीनस्वररवां तदा ॥ ४ ॥
शून्यामिव च निःशब्दां निरानन्दजनावृताम् ।
प्रम्लानपङ्कजवतीं विजलां पद्मिनीमिव ॥ ५ ॥
निशाकरपरिभ्रष्टां ताराहीनां निशामिव ।
तां दृष्ट्वा चिन्तयन्नेव सुमन्त्रो मन्त्रिसत्तमः ॥ ६ ॥
प्राविशत् तां पुरीं दीनो निर्जनां विगतत्विषम् ।
कच्चित् सरत्ननिचया सनरा सनराधिपा ॥ ७ ॥
रामशोकाग्निना कृत्स्ना न दग्धेयं पुरी भवेत् ।
इति सञ्चिन्तयन् सूतः प्रविवेश च तां पुरीम् ॥ ८ ॥
सुमन्त्रो व्यथयोपेतः स्यन्दनेन हतत्विषा ।
सुमन्त्रमभियान्तं तु दृष्ट्वा शतसहस्रशः ॥ ९ ॥
क्व राम इति पृच्छन्तो रथमभ्यद्रवन्नराः ।
तेषां शशंस गङ्गायामहमामन्त्र्य राघवम् ॥ १० ॥
अनुज्ञातो निवृत्तोऽस्मि तेनैव सुमहात्मना ।

ते तीर्णमभिसंश्रुत्य बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥ ११ ॥
अहो धिगिति निःश्वस्य हताः स्मेति विचुक्रुशुः ।
वृन्दशो जल्पतां तेषां शुश्राव स तदा गिरः ॥ १२ ॥
निर्लज्जोऽयं वने त्यक्त्वा रामं पुनरिहागतः ।
महोत्सवसमाजेषु कथं नाम सुनिर्घृणाः[1] ॥ १३ ॥
विहरेम पुनर्दृष्ट्वा विना तं नरकुञ्जरम् ।
किं स्यात् प्रियं जनस्यास्य कांक्षितं किं सुखावहम् ॥ १४ ॥
इदं रामेण नगरं पित्रेव परिपालितम् ।
तं कथं पुण्डरीकाक्षं श्यामं पद्मदलेक्षणम् ॥ १५ ॥
निर्लज्जोऽयं गृहं रामं विसृज्य पुनरागतः ।
एताश्चान्याश्च विविधाः शृण्वन्वाचः स सारथिः ॥ १६ ॥
यत्र राजा दशरथस्तदेव प्रययौ गृहम् ।
अवतीर्य रथात्स्वामी राजवेश्म विवेश तत् ॥ १७ ॥
शोकदीर्णजनाकीर्णं[2] सप्तकक्ष्यं हतत्विषम् ।
ततो दशरथस्त्रीणां शुश्राव परिदेवितम् ॥ १८ ॥
प्रासादशिखरस्थानां दुःखितानामितस्ततः ।
सह रामेण निर्यातो विना राममिहागतः ॥ १९ ॥
सूतः किं नाम कौशल्यां[3] पृष्टः संप्रति वक्ष्यति ।
यथा तु मन्ये दुर्जातं तथा न[4] मरणं ध्रुवम् ॥ २० ॥
प्रिये निवासिते[5] पुत्रे कौशल्या[6] यत्र जीवति ।

---

1 ब, स—स० । 2 ब—शोकार्दीर्ण० । 3 ब, ल, म, कै—कौसल्यां ।
4 ब—तु । स नास्ति । 5 म-निर्वासिते । 6 कै, ब, ल, म—कौसल्या ।

तथाभूतं तु तद्वाक्यं राजस्त्रीणां निशामयन् ॥ २१ ॥
शोकाग्निना दह्यमानो राजवेश्म विवेश सः ।
प्रविश्य च गृहं दीनो राजानं दीनचेतसम् ॥ २२ ॥
अपश्यत् पुत्रशोकार्तं हतसत्त्वौजसं तथा ।
अभिगम्य तदासीनं नरेन्द्रमभिवाद्य च ॥ २३ ॥
सुमन्त्रो रामवचनं यथोक्तं प्रत्यवेदयत् ।
तच्छ्रुत्वा वचनं राजा विसंज्ञो भ्रान्तचेतनः ॥ २४ ॥
निपपातासनाद् भूमौ दुःखशोकसमन्वितः ।
दृष्ट्वा तमासनाद् भूमौ पतितं जगतीपतिम् ॥ २५ ॥
अन्तःपुरस्त्रियोऽभ्येत्य बाहूनुच्छ्रित्य चुक्रुशुः ।
सुमित्रया तु तं सार्धं कौशल्या पतितं पतिम् ॥ २६ ॥
दीनमुत्थापयामास वचनं चेदमब्रवीत् ।
इमं तस्य महाभाग दूतं दुष्कृतकारिणम् ॥ २७ ॥
वनवासादुपावृत्तं कस्मात्त्वं नानुपृच्छसि ।
यदीदं निर्घृणं कृत्वा लज्जयेवं विमुह्यसि ॥ २८ ॥
उत्तिष्ठ नाद्य कालस्ते लज्जितुं मा व्यपत्रपः ।
कस्मादद्य महीपाल न त्वं पृच्छसि मे सुतम् ॥ २९ ॥
नास्तीह काचित् कैकेय्याविस्रब्धं प्रष्टुमर्हसि ।
एवमुक्त्वा महाराजं कौशल्या शोककर्शिता ॥ ३० ॥
धरण्यां निपपातार्ता बाष्पविक्लवभाषिणी ।

कै-तदासीनं । म ।

विलप्य पतितां भूमौ कौशल्यां शोककर्षिताम् ॥ ३१ ॥[1]
पतितं च पतिं दृष्ट्वा सुस्वरं रुरुदुः स्त्रियः ।
ततस्तमन्तः पुरनादमुत्थितं स्वनं निशम्य वृद्धास्तरुणाश्च मानवाः ।
स्त्रियश्च सर्वा रुरुदुःसमन्ततो निरीक्ष्य रामस्य रथं महात्मनः ॥३२॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे सुमन्त्रोपावर्तनं[3]
नामैकषष्टितमः[4] सर्गः ॥ ६१ ॥



[1]म । [4] ब, म -नाम ।

[वं-५८]=[द्विषष्टितमः सर्गः]=[दा-५८]

अथ राजा पुनः संज्ञां प्रतिलभ्य समुत्थितः ।
उपविश्यासने सूतं प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥ १ ॥
अश्रुपूर्णेक्षणो[1] दीनो नवबद्ध इव द्विपः ।
दीर्घमुष्णं च निःश्वासं स विमुञ्चन् मुहुर्मुहुः ॥ २ ॥
अथ रेणुपरिध्वस्तं कृताञ्जलिमुपस्थितम् ।
पप्रच्छैनमभिप्रेत्य[2] सुमन्त्रं बाष्पविक्लवः ॥ ३ ॥
क्व सुमन्त्र गतो रामः क्व च वत्स्यति शर्म मे ।
क्व स्थाने तेन चैव त्वं राघवेण विसर्जितः ॥ ४ ॥
सोऽत्यन्तसुखसंवृद्धः कथमासिष्यते सुतः ।
भूमिपालात्मजो भूमौ कथं स्वप्स्यति वा वने ॥ ५ ॥
कथं च विजनेऽरण्ये याति पद्भ्यामनाथवत् ।
सिंहव्याघ्रसमाकीर्णे सरीसृपसमाकुले ॥ ६ ॥
यं यान्तमनुयान्ति स्म नराश्वरथकुञ्जराः ।
स कथं सुकुमाराङ्गो वने चरति मे सुतः ॥ ७ ॥
सुकुमार्या तपस्विन्या वैदेह्याऽनुगतः कथम् ।
वनं कण्टकितं दुर्गं रामः पद्भ्यां विगाहते ॥ ८ ॥
स चाप्रतिमतेजस्वी सुकुमारो ममात्मजः ।
अनुगच्छति तं भक्त्या भ्रातरं लक्ष्मणः कथम् ॥ ९ ॥
सिद्धार्थस्त्वं कृतार्थश्च येन चैतौ ममात्मजौ ।

---

1 कै, ब, ल, म—अस्र०। 2 म—०मभिप्रेक्ष्य।

तपोदीक्षान्वितौ दृष्टौ नरनारायणाविव ॥ १० ॥
किमाह रामस्तेजस्वी किं च मां लक्ष्मणोऽब्रवीत् ।
किमुवाच च मां साध्वी सीता भर्तृपरायणा ॥ ११ ॥
किं ताभ्यामशितं भुक्तमितः[3] प्रभृति शंस मे ।
अशेषतो यथावृत्तं वनं रामस्य गच्छतः ॥ १२ ॥
इति सूतो नरेन्द्रेण नोदितः सज्जमानया ।
उवाच वाचा राजानं व्यथागद्गदया[4] ततः ॥ १३ ॥
पुरात्प्रभृति वृत्तान्तमशेषेणानिवर्तनात्[5] ।
उक्त्वा ततः परमिमं रामसन्देशमब्रवीत्[6] ॥ १४ ॥
कृत्वा तेऽनुदिशं रामः प्रणामं प्राञ्जलिः सुतः ।
इदं मां संपरिष्वज्य सन्दिदेश कृताञ्जलिः ॥ १५ ॥
सूत मद्वचनाद्गत्वा समासाद्य महीपतिम् ।
शिरसा प्रणिपत्यादौ प्रष्टव्यः कुशलं ततः ॥ १६ ॥
मातरश्चापि ताः सर्वाः प्रष्टव्याः कुशलं त्वया ।
अशेषतः समासाद्य प्रणिपत्याभिवाद्य च ॥ १७ ॥
पृष्ट्वा च कुशलं सूत विज्ञाप्यो मे पिता त्वया ।
अनुग्रहार्थमस्माकं न शोच्योऽहं त्वयेत्युत ॥ १८ ॥
यतः सर्वो हि राजेन्द्र भवितव्यमुपाश्नुते ।
अतो न शोच्योऽस्मि विभो मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ १९ ॥
कौशल्यापि[7] च मे माता विज्ञाप्या कुशलं त्वया ।

3 ब—भुक्तं यतः । म—त्यक्तंमितः । 4 कं, ब—वृथा । Oम । 5 म—
०मशेषेण निवर्तनात् । 6 म—रामे मक्रोशमब्रवीत् । 7 म—कोसल्या ।
ब. कं. ल. कौसल्या ।

मच्छोककर्षितो राजा न वाच्यः परुषं त्वया ॥ २० ॥
शापिताऽस्मि मम प्राणैः पुनरागमनेन च ।
देववत् पूजनीयस्ते पिता न इति चाब्रवीत् ॥ २१ ॥
परिष्वज्य च वक्तव्यो भरतो वचनान्मम ।
यौवराज्यमवाप्य त्वं पूजयेथा नराधिपम् ॥ २२ ॥
त्वया शुश्रूष्यमाणो हि न शोचति यथा नृपः ।
मत्स्नेहादर्हसि तथा कर्तुमित्यभिनिःश्वसन् ॥ २३ ॥
समो मातृषु सर्वासु वर्त्तेथा इति चाब्रवीत् ।
भरतं पृथिवीपाल पुत्रं ते कैकयीसुतम्[8] ॥ २४ ॥
एवमादि वचो धर्म्यं ब्रुवन्नेव नराधिप ।
वाष्पवेगोपरुद्धात्मा मुमोचाश्रूणि[9] ते सुतः ॥ २५ ॥
ईषद्रोषपरीतस्तु सौमित्रिरिदमब्रवीत् ।
केनायमपराधेन राज्ञा पुत्रो विवासितः ॥ २६ ॥
मया तावद्भवेत् किञ्चित् कार्कश्याद्विप्रियं[10] कृतम् ।
आर्यस्य तु परित्यागे कारणं नोपलक्ष्यते ॥ २७ ॥
यदि प्रव्राजितो रामः कैकेय्याः प्रियकारणात् ।
वरदाननिमित्तं वा न कृतं साधु सर्वथा ॥ २८ ॥
विरुद्धं धर्मकीर्तिभ्यां राज्ञेदं बुद्धिलाघवात् ।
अयशस्यं कृतं मन्ये मत्पुत्रस्य विवासनम् ॥ २९ ॥
मम तावन्न तातेऽद्य पितृस्नेहोऽस्ति कश्चन ।

---

8 ब, म—कैकयीं० । 9 म—ममोचामूणि । ब. कै. ल—मुमोचाश्रूणि ।
10 ब —कर्कश्याद्वि० ।

पिता माता सुहृद् भ्राता रामो बन्धुर्गुरुश्च मे ॥ ३० ॥

लोकप्रियमिमं त्यक्त्वा लोकनाथं च राघवम् ।

राज्ञा किमिव कल्याणं भरतादभिकांक्षितम् ॥ ३१ ॥

सुमन्त्र भरतश्चैव वाच्यस्ते राजसन्निधौ ।

अमर्षयसि चेत् किंचित्त्वं राज्याद्विप्रतिक्रियाम्[11] ॥ ३२ ॥

ततो मातृषु सर्वासु समतामभ्युपागतः ।

राज्याभिमानमुत्सृज्य वर्तस्वेत्यादिदेश ह ॥ ३३ ॥

जानकी तु विनिःश्वस्य बाष्पसन्नस्वरा नृप ।

भूतोपहतचित्तेव निरीक्षन्ती मनस्विनी ॥ ३४ ॥

अदृष्टपूर्वव्यसना राजपुत्री यशस्विनी ।

पर्यश्रुनयना[12] दीना नैव मां किञ्चिदब्रवीत् ॥ ३५ ॥

उदीक्षमाणा भर्तारं मुखेन परिशुष्यता ।

मुमोच केवलं बाष्पं मां निवृत्तमवेक्ष्य सा ॥ ३६ ॥

स चापि रामोऽश्रुमुखः[13] कृताञ्जलि र्ननाम पादौ तव शोकविह्वलः

तथैव सीता रुदती तवाबला नृदेव पादौ शिरसा नमस्यति ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे रामसन्देशाख्यानं

नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

---

11 ल—क्रियम् । 12 म—पर्यस्त्र० । ब, ल, कै—पर्यस्रु० । 13 ब, कै, ल, म—०ऽस्रमुखः ।

[वं-५९]=[त्रिषष्टितमः सर्गः]=[दा-५९]

इति ब्रुवाणं सन्देशं सुमन्त्रं मन्त्रिसत्तमम् ।
ब्रूहि शेषं पुनरिति राजा वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सुमन्त्रो वाष्पविक्लवम् ।
कथयामास भूयोऽपि रामवृत्तान्तविस्तरम् ॥ २ ॥
जटाः कृत्वा महाराज चीरवल्कलधारिणौ ।
गङ्गामुत्तीर्य तौ वीरौ प्रयागाभिमुखौ गतौ ॥ ३ ॥
अग्रतो लक्ष्मणो याति ततो मध्येऽथ जानकी ।
रामस्तुपृष्ठतो याति पालयन् रघुनन्दनः ॥ ४ ॥
तांस्तथा गच्छतो दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्म्यवशस्तदा ।
ततो मम निवृत्तस्य तुरगा वाष्पविक्लवाः ॥ ५ ॥
राममेवानुपश्यन्तो ह्रेषमाणा[1] विचुक्रुशुः ।
उभाभ्यां राजपुत्राभ्यां ततः कृत्वाऽहमञ्जलिम् ॥ ६
त्वद्गौरवभयाद् राजंस्त्वरावान् पुनरागतः ।
गुहेन सह कृत्स्नं च तत्रैकदिवसं स्थितः ॥ ७ ॥
आशया यदि रामो मां पुनरेवाह्वयेदिति ।
विषयेषु नरव्याघ्र रामव्यसनकर्षिताः ॥ ८ ॥
अपि वृक्षाः परिम्लानाः सपुष्पस्तवकांकुराः ।
सवाष्पाः सरितश्चासन् सुतप्तकलुषोदकाः ॥ ९ ॥
प्रम्लानपुष्कराश्चासन् पद्मिन्यो विगतत्विषः ।

1 व, ल, म—ह्रेष ।

ध्यानैकचित्ताः स्तिमिता न विचेरुर्मृगद्विजाः ॥ १० ॥
आसींच्च रामशोकेन निष्कूजमिव[2] काननम् ।
जलजानि च सत्त्वानि स्थलजानि च सर्वशः ॥ ११ ॥
स्थानेभ्यः स्तंभितानीव[3] सर्वतो नाचलन्नृप ।
पुरे राष्ट्रे च ते राजन् पौरजानपदे जने ॥ १२ ॥
तं न पश्याम्यहं कश्चिद् यो न शोचति ते सुतम् ।
अयोध्यां प्रविशन्तं मां गर्हयन्ति समन्ततः ॥ १३ ॥
पौरा दुःखाभिसन्तप्ता विना राममुपागतम् ।
विमानहर्म्यप्रासादगवाक्षस्थाश्च योषितः ॥ १४ ॥
उन्मृज्याभ्यागतं रामं मां दृष्ट्वा चुक्रुशुर्भृशम् ।
अश्रुपूर्णेक्षणा[4] दीना निरीक्षन्त[5] उपागतम्[5] ॥ १५ ॥
हा नृशंस क्व ते रामः स नीत इति चाब्रुवन् ।
नामित्राणां न मित्राणां नोदासीनजनस्य च ॥ १६ ॥
अहमार्ततया कश्चिद्विशेषमुपलक्षये ।
दीनातुरा[6]ऽऽर्तपुरुषा[6] प्रम्लानोपवनद्रुमा ॥ १७ ॥
परिदेवितार्तकरुणा[7] रुदितस्वननादिता ।
निरुत्साहा निरानन्दा निर्वषट्कारमङ्गला[8] ॥ १८ ॥

---

2 कै, ल—निष्कुजमिव । 3 ब—स्तंभितान्येव । 4 कै, ब, ल—अस्रु० । म—आस्र० । 5 ल—निरीक्षन्तमुपाग० । 6 कै—दीनार्त्तरात्तपुरुषा । म—दीनातुरांत० । ब—दीनातुरात्तु० । ल—दीनात्तरातु० । 7 कै—परिदेवित्तांतकरुणा । म—परिदेवितांत० । ब-परिदेविताकरुणा । 8 कै-निर्विंषंकारमंगला । म, ल—निर्वषंकार० ।

रामप्रव्रजनार्तेयं[9] पुरी ते न विराजते ।
इत्येवमादि करुणं सुमन्त्रवचनं ततः ॥ १९ ॥
श्रुत्वोवाच नृपो दीनो बाष्पगद्गदया गिरा ।
मिथ्योपचारात् कैकेय्या वञ्चितेन कथं मया ॥ २० ॥
न मन्त्रितं विमूढेन धर्मज्ञैर्गुरुभिः सह ।
केनाहं मोहितः पापो यन्मया सह मन्त्रिभिः ॥ २१ ॥
असंमन्त्र्य विमूढेन सहसा साहसं कृतम् ।
भवितव्यं तथा तेन रामेणामिततेजसा ॥ २२ ॥
मया तु तावदशिवं प्राप्तं तद्विप्रवासनात् ।
इदानीमपि सूत त्वं गत्वा रामं निवर्तय ॥ २३ ॥
नाहं शक्तो विना रामं जीवितुं दैवमोहितः ।
गतागतेन वा कालो दीर्घ एव भविष्यति ॥ २४ ॥
मामेव रथमारोप्य क्षिप्रं रामं प्रदर्शय ।
सिंहस्कन्धो महाबाहुः क्वासौ लक्ष्मणपूर्वजः ॥ २५ ॥
यदि जीवामि साध्वेनं पश्येयं सह सीतया ।
पूर्णेन्दुकान्तवदनं चारुपद्मदलेक्षणम् ॥ २६ ॥
यदि रामं न पश्यामि यास्यामि यमसादनम् ।
सुमन्त्र यदि ते किञ्चिन्मया पूर्वं कृतं प्रियम् ॥ २७ ॥
तदा प्रापय मां रामं प्राणा हि त्वरयन्ति माम् ।
रामप्रवाससलिले बाष्पशोकोर्मिमालिनि ॥ २८ ॥
अगाधव्यसने[10] मग्नो घोरेऽहं शोकसागरे ।

---

9 म—प्रव्राजनं तार्यं । 10 ब—अगाधे० ।

इष्टपुत्रवियोगार्तिदुःखितेन गतायुषा ॥ २९ ॥
मयाऽयं जीवता सूत दुस्तरः शोकसागरः ।
हा राम रामानुज हा हा वैदेहि पतिव्रते ॥ ३० ॥
न मां जानीत दुःखार्तं म्रियमाणमनाथवत् ।
कोन्वस्ति दुःखिततरो मया दुष्कृतकर्मणा ॥ ३१ ॥
योऽहमन्तर्गतप्राणो नैव द्रक्ष्यामि राघवम् ।
इति स्म[11] राजा करुणं महायशा विलप्य दुःखोपहतेन चेतसा ।
गतासुकल्पः सहसैव मूर्च्छितः पपात भूयोऽपि नृपासनात् तदा॥३२
इति विलपति पार्थिवे विमूढे भृशकरुणं पतिते पुनर्धरण्याम् ।
अतिभृशमतिशोकदुःखसन्ना करुणतरं विललाप राममाता ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे दशरथविलापो नाम
त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥



---

[11] कै—इतिः स ।

[वं-६०]=[चतुष्षष्टितमः सर्गः]=[दा-६०]

सा तु भूतोपसृष्टेव गतसत्त्वेव चासुखा ।
विललापातुरा देवी कौशल्या पतिता क्षितौ ॥ १ ॥
नय मामपि तत्राशु यत्र रामः सलक्ष्मणः ।
सुमन्त्र नहि रामेण विना जीवितुमुत्सहे ॥ २ ॥
तद्योजय रथं साधु नय मामपि काननम् ।
अथ मां न नयस्याशु गमिष्यामि यमक्षयम् ॥ ३ ॥
वाष्पोपरुद्धया वाचा पुरस्तात् सज्जमानया ।
वाक्यमाश्वासयन् देवीं सूतः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ ४ ॥
त्यक्तुमर्हसि कल्याणि शोकं पुत्रवियोगजम् ।
तत्रापि स सुखी रामो रंस्यते देवि निर्वृतः ॥ ५ ॥
लक्ष्मणो ह्यस्य तेजस्वी पादौ परिचरन् वने ।
वसतीतः परं लोकमर्जयन् धर्मनिर्जितम् ॥ ६ ॥
विजनेऽपि वने सीता भर्तुर्बाहुव्यपाश्रया ।
देवि स्वर्गोपमे स्थाने सह रामेण वत्स्यति ॥ ७ ॥
नास्या दैन्यं विषादं वा सुसूक्ष्ममपि लक्षये ।
वने यथोचितो वासो वैदेह्याः प्रतिभाति मे ॥ ८ ॥
नगरोपवने रम्ये यथाऽरमत सा पुरा ।
विजनेऽपि तथाऽरण्ये रंस्यते देवि मा शुचः ॥ ९ ॥
वैदेही सह रामेण पूर्णचन्द्रनिभानना ।
अतुलां विन्दते प्रीतिं तां न शोचितुमर्हसि ॥ १० ॥
तद्गतं हृदयं तस्यास्तदधीनं च जीवितम् ।

अयोध्याऽपि भवेत्तस्या रामेण रहिताऽटवी ॥ ११ ॥
पथि पृच्छति वैदेही ग्रामांश्च नगराणि च ।
रामं कमलपत्राक्षं सरांसि सरितस्तथा ॥ १२ ॥
रामलक्ष्मणयोर्मध्ये सीता राजति ते स्नुषा ।
विष्णुवासवयोर्मध्ये यथा श्रीरिवरूपिणी ॥ १३ ॥
अध्वनि श्रमसन्तापदुःखैरप्यातपेन च ।
अध्वनि श्रमसन्तापदुःखैरप्यातपेन च ।
न विमुञ्चति[1] वैदेही चन्द्रांशुसदृशीं प्रभाम् ॥ १४ ॥
सदृशं शतपत्रस्य पूर्णचन्द्रसमद्युति ।
वदनं कृत्स्नमार्तायाः सीताया न विलुप्यते ॥ १५ ॥
प्रकृत्या ऽलक्तकप्रख्यौ लाक्षारससमप्रभौ ।
तथैव रंजतुस्तस्याश्चरणौ पद्मवर्चसौ ॥ १६ ॥
इदानीमपि वैदेही तत्र सन्न्यस्तभूषणा ।
सुरूपशोभया हीना शोभते ऽप्यधिकं वने ॥ १७ ॥
इदानीमपि वैदेही बालैरनुगता मृगैः ।
नूपुरामुक्तचरणा खेलं गच्छति जानकी ॥ १८ ॥
गुप्ता पुरुषसिंहेन सिंहेनेव गिरेर्गुहा ।
दुष्प्रधर्षा दुष्प्रधर्षं सर्वेषां वनचारिणां ॥ १९ ॥
सिंहं वने गजं वाऽपि व्याघ्रं वा प्रेक्ष्य जानकी ।
न त्रासमेति गच्छन्ती वने भर्तृव्यपाश्रया ॥ २० ॥
तथैव रामः पुत्रस्ते लक्ष्मणश्चैव वीर्यवान् ।

1 ब—वै० । 2 ब—त्रासमव ।

उदारवपुषौ वीरौ न म्लानिमधिगच्छतः ॥ २१ ॥
परस्परप्रियहितं कुर्वाणौ प्रियवादिनौ ।
न पितुर्नैव मातुश्च नान्यस्य स्मरतो वने ॥ २२ ॥
न ते शोच्यास्त्वया देवि परस्परहिते रताः ।
इदं हि चरितं तेषां ख्यातिं लोकेषु यास्यति ॥ २३ ॥
विहाय शोकं परिगृह्य मानसं महर्षिकल्पस्तपसि व्यवस्थितः ।
वने रतो मूलफलाशनः स ते सुतो महात्मा कुरुते महत्तपः ॥२४॥
तथा सुमन्त्रेण हितार्थवादिना निवार्यमाणाऽपि सती सुतप्रिया ।
न विप्रलापाद्विरराम दुःखिता नरेन्द्रपत्नी प्रियपुत्रलालसा ॥२५॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे कौशल्याऽऽश्वासनं नाम चतुष्षष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

[वं-६१]=[पञ्चषष्टितमः सर्गः]=[दा-६१]

प्रत्याश्वस्तं तु राजानमुत्थाय भृशदुःखितम् ।
कौशल्या ऽऽश्वासयामास शयने शोकविक्लवम्[1] ॥ १ ॥
अश्रूणि मार्जयन्ती च विलपन्ती च दुःखिता ।
भूयः प्रत्यागतप्राणमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥
यदिदं त्रिषु लोकेषु प्रथितं ते महद्यशः ।
पुत्रप्रव्राजनात्तत्ते प्रणष्टमिव लक्षये ॥ ३ ॥
को हि नाम प्रियं पुत्रं त्यजेदनपकारिणम् ।
प्रतिश्रुत्य सतां मध्ये यौवराज्याभिषेचनम् ॥ ४ ॥
यदि चावश्यदातव्यः प्रियायै ते वरः प्रभो ।
किमर्थं ते प्रतिज्ञातं रामस्याऽप्यभिषेचनम् ॥ ५ ॥()
अनृताद्यदि वा भीतः प्रव्राजयसि वा वनम् ।
प्रतिज्ञायाभिषेक्ता ऽस्मि श्वस्त्वामित्यभिमन्त्रितम् ॥ ६ ॥
स्त्रीहेतोः प्रथमं दत्त्वा विप्रलब्धस्त्वया सुतः ।
पश्याभयं विचार्यैतत्तथाप्यनृतवागसि ७ ॥
इक्ष्वाकूणामयं वंशः सत्यवाक् प्रथितः क्षितौ ।
तत्र त्वया यौवराज्यं प्रतिज्ञायानृतं कृतम् ॥ ८ ॥
श्लोकश्चायं महाराज पौराणः प्रथितः क्षितौ ।
सत्यं पुरा तुलयता स्वयं गीतः स्वयंभुवा ॥ ९ ॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुल्या धृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेवातिरिच्यते ॥ १० ॥

ल—०विह्वलम् । ()म ।

जीवितेनाप्यतः सत्यं भुवि रक्षन्ति माधवः ।
न हि सत्यात्परो धर्मस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ११ ॥
सत्यात्समभवत्सोमः सोमाद् ब्रह्म ततोऽमृतम ।
अद्भ्योऽग्निरग्नेः पृथिवी भूमेर्भूतानि जज्ञिरे ॥ १२ ॥
भूतेभ्यश्च विसर्गोऽयं पुनरावर्तकः स्मृतः ।
एवमेष विसर्गश्च सत्ये देव प्रतिष्ठितः ॥ १३ ॥
सत्येनार्कः प्रतपति सत्येनाप्यायते शशी ।
सत्येनामृतमुद्भूतं सत्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ १४ ॥
वृषश्चतुष्पाद् भगवान् धर्मः सत्ये प्रतिष्ठितः ।
द्यौरन्तरिक्षं पृथिवी सत्येनैव ध्रियन्त्युत ॥ १५ ॥
सत्येनैकेन यांल्लोकान् यान्ति सत्यव्रता नराः ।
न यान्तिताननृतिका इष्ट्वा क्रतुशतैरपि ॥() १६ ॥
सत्यप्रतिज्ञा नृपते राजानः सत्यवादिनः ।()
पथिभिस्तेऽत्र गन्तव्यं गता यैस्ते पितामहाः ॥ १७ ॥
द्वावेव कथितौ सद्भिः पन्थानौ वदतां वर ।
अहिंसा चैव सत्यं च यत्र धर्मः प्रतिष्ठितः ॥ १८ ॥
तदिदं रक्षितं सद्भिः सत्यमुन्मादितं त्वया ।
धर्मं चैनं समास्थाय त्वयैवोन्माथितं यशः ॥ १९ ॥
वाति गन्धः सुमनसां प्रतिवातं कथञ्चन ।
धर्मयुक्तमनुष्याणां वाति गन्धः समन्ततः ॥ २० ॥
चन्दनानां महार्हाणामगुरूणां तथा प्रभो ।

()ल ।

नावस्थायी* चिरं गन्धो यथा कीर्तिमयो नृणाम ॥२१॥
स तवायं गुणहरो गन्धो लोके चरिष्यति ।
अशुभस्यास्य महतः कर्मणः शाश्वतीः समाः ॥ २२ ॥
इह मन्ये सुमहती भ्रूणहत्या त्वया कृता ।
प्रियार्थे वसुधा दत्ता रामः प्रव्राजितो वनम् ॥ २३ ॥
दिष्ट्या न याचितं त्वेतद्रामोऽयं वध्यतामिति ।
तत्त्वेतदपि कैकेय्या दुर्लभं त्वयि राजनि ॥ २४ ॥
न ह्यद्भुतमिदं लोके यद्वध्वा बलवत्तरैः ।
ईश्वरैर्दुर्बलः कृष्यः कृतो पशुरिवाबलः ॥ २५ ॥
धृष्यन्ते हि नरा लोके दुर्बला बलवत्तरैः ।
आक्रम्यमाणा विजने सिंहैरिव महाद्विपाः ॥ २६ ॥
स मे सुतः सुशक्तो ऽपि धर्मं प्रति तु दुर्बलः ।
अतः सकामानुत्सृज्य मां च त्यक्त्वा वनं गतः ॥ २७ ॥
किं नु मे त्वामुपालभ्य राजन् परुषया गिरा ।
परस्य कृत्वा किं मन्युमात्मभाग्येष्वसाधुषु ॥ २८ ॥
अनुनीता ऽस्मि रामेण गच्छता बहुविस्तरम् ।
न मे वाच्यः पिता किञ्चिद्भवत्येति पुनः पुनः ॥ २९ ॥
न मदर्थं त्वया वाच्यो रूक्षं मातः पिता मम ।
वाग्भिरुद्वेजनीयाभिरिति मां राघवोऽन्वशात् ॥ ३० ॥
साऽहं तेनानुशिष्टा ऽपि पुत्रस्नेहबलात्कृता ।
अवशा त्वां ब्रवीम्येतन्मग्ना शोकमहार्णवे ॥ ३१ ॥

* स—नावस्थायी । कै. ठ—नावस्थया ।

का हि नामाप्रियं ब्रूयाद् भर्तारमिह मद्विधा ।
स्मरन्ती सत्कुले जन्म विनयं चापि जानती ॥ ३२ ॥
*लोके हि पुरुषः स्त्री वा तथा तत् कुरुते स्वयम् ।
*यथा मधुरमुग्रं वा शृणोति लभतेऽपि वा ॥ ३३ ॥
नूनं हि मम भाग्यानां वैमुख्याद् राघवस्य च ।
अचिन्त्यत्वाच्च दैवस्य त्वमेतत् कृतवान्नृप ॥ ३४ ॥
न खल्वहं त्वा नृप दोषतो ब्रवीम्यनीश्वरं हीश्वरदैशिकं जगत् ।
दशा कृतान्तोपहतेयमाविला किमत्र शक्यं पुरुषेण चेष्टितुम्[4] ॥३५॥
अतो नियोगात् तव सत्यवादी सत्यां प्रतिज्ञां नृप पालयंस्ते ।
इतो महात्मा वनमेव रामो गतः सुखान्यप्रतिमानि हित्वा ॥३६॥
इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे कौशल्योपालम्भो
नाम पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

3 ल—कुर्वते । *म—नास्ति । 4 ल—चिंतिताम् ।

[वं–६२]=[षट्षष्टितमः सर्गः]=[दा–६१]

तथा तु बहु कौशल्या विलप्य क्रोधमूर्च्छिता[1] ।
अनिकृष्यैव रोषस्य पुनरेवाभ्यभाषत ॥ १ ॥
त्वया यस्त्वनियुक्तोऽपि भक्त्या राममनुव्रतः ।
लक्ष्मणोऽनुगतः प्रेम्णा तं शोचामि विशेषतः ॥ २ ॥
यो ऽभिषेके प्रतिहते मम पुत्रस्य धीमतः ।
निःसृतो धनुरादाय तूर्णमश्रुतविस्तरः ॥ ३ ॥
क्रोधेन महता ऽऽविष्टो रामराज्यापहारणम् ।
न स जानाति धर्मात्मा स्वगृहादग्निमुत्थितम् ॥ ४ ॥
गृहीतचीरं यो दृष्ट्वा राघवं प्रियराघवः ।
पूर्वमेव सचीरो ऽभूत्तस्य शोचामि धीमतः ॥ ५ ॥
क्रियमाणं नरेन्द्रेण मम निर्विषयं सुतम् ।
योऽनुयातः स्वयं भक्त्या भ्रातरं भ्रातृवत्सलः ॥ ६ ॥
लक्ष्मणं तमहं रामाच्छोचाम्यद्य विशेषतः ।
राज्ञो महेन्द्रकल्पस्य जनकस्य महात्मनः ॥ ७ ॥
सुतां तामनवद्याङ्गीं वैदेहीं चिन्तयाम्यहम् ।
अत्यन्तसुखसंवृद्धा लालिता[2] पितृवेश्मनि ॥ ८ ॥
अत्यन्तसुकुमाराङ्गी श्यामा पद्मदलेक्षणा ।
या सुखानि परित्यज्य सर्वांश्च ज्ञातिबान्धवान् ॥ ९ ॥
पतिं याऽनुसृता यान्तं किमवस्थाऽद्य सा सती ।
कथं सा सुतनुः साध्वी सुकुमारी सुखोचिता ।

1 कै, ब, ल – बहु० । 2 कै, ब, ल—लाडिता ।

शीतमुष्णं च वर्षं च वैदेही प्रसहिष्यति ॥ १० ॥
या श्राम्यति गृहेऽप्यस्मिश्चरन्ती वसुधातले ।
कथं सा विजनेऽरण्ये वैदेही प्रचलिष्यति[3] ॥ ११ ॥
भुक्त्वा स्वादूनि भोज्यानि ह्यन्नानि जनकात्मजा ।
कथं वन्यान्यभोज्यानि कटुतिक्तानि भोक्ष्यते ॥ १२ ॥
शयनानि महार्हाणि पुरा संसेव्य मैथिली ।
कथं पर्णावृतां भूमिमधिवत्स्यति मे स्नुषा ॥ १३ ॥
वेणुवीणास्वनैः सुप्ता लालिता या विबोध्यते ।
तन्वङ्गी सा कथं घोरैर्बहुपक्षिमृगारुतैः[4] ॥ १४ ॥
पुरा मुख्यानि वस्त्राणि परिधाय यशस्विनी ।
कथं सा कुशचीराणि गात्रैः संधारयिष्यति ॥ १५ ॥
सुललाटं सुकेशान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
सुदतं सुहनुस्ङ्कं पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ॥ १६ ॥
धूयमानं वने वातैर्निपीतं चार्करश्मिभिः ।
कथं तच्चारु वदनं तस्या वैवर्ण्यमेष्यति ॥ १७ ॥
देवराजप्रतीकाशो यशस्वी पुरुषर्षभः ।
ध्वजो नृपकुलस्यास्य किमवस्थः स संप्रति ॥ १८ ॥
नूनं स्वपिति मेदिन्यां महार्हशयनोचितः ।
भुजं परिघसङ्काशमुपधाय महाभुजः ॥ १९ ॥
चारुघोणं विशालाक्षं पूर्णचन्द्रसमद्युति ।
कदा द्रक्ष्यामि रामस्य मुखं पद्मदलेक्षणम् ॥ २० ॥

म, ल—विचरिष्यति । 4 ब—०मृगारुतैः ।

धात्रा मे हृदयं नूनमश्मसारमयं कृतम् ।
हीनं यद्रामचन्द्रेण न विदीर्णं सहस्रधा ॥ २१ ॥
एतत् ते कृपणं कर्म कृतं लोकविगर्हितम्[5] ।
निरस्ताः परिधावन्ति त्रयस्ते यन्महावने ॥ २२ ॥
यदि पञ्चदशे वर्षे न रामः पुनरेष्यति ।
ततस्त्यक्ष्याम्यहं प्राणान् न कार्यं जीवितेन मे ॥ २३ ॥
सर्वथा ह्यागतो रामः प्रवासात्पुरुषर्षभः ।
न स तां श्रियमन्विच्छेद्दीयमानामपि स्वयम् ॥ २४ ॥
भरतेनोपभुक्तां हि पृथिव्यां विपुलां श्रियम् ।
नोपभोक्ष्यति धर्मज्ञः परभुक्तामिव स्रजम् ॥ २५ ॥
न हि सिंहः परालीढमामिषं भोक्तुमर्हति ।
नृसिंहो भरतालीढं रामो राज्यं न भोक्ष्यते ॥ २६ ॥
आज्यं तिलाः समिच्चैव कुशा धूपाः[6] स्रुचस्तथा ।
नैतानि यातयामानि कल्पन्ते[7] पुनरध्वरे ॥ २७ ॥
अतो राज्यमिदं पश्चात् ततो भ्रातु र्यवीयसः ।
नाभिपत्तुमलं रामः पीतसोममिवाध्वरे ॥ २८ ॥
न चेमां धर्षणां रामो ह्यसहिष्यदमर्षणः ।
नाधारयिष्यद्यदि ते गौरवं मन्दरोपमम् ॥ २९ ॥
शितैः शरैः स हि क्रुद्धो दारयेदपि मन्दरम् ।
त्वां तु नोत्सहते वक्तुं धर्मात्मा पितृगौरवात् ॥ ३० ॥

---

5 ब—लोक० । 6 कै—यूपाः । प्र—यूशः । 7 कै, म—कल्पांते ।

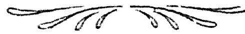
ससोमार्कग्रहगणं नभस्तारविचित्रितम् ।
पातयेद्यो भुवि क्रुद्धः स त्वां न व्यतिवर्त्तते ॥ ३१ ॥
आचालयेद्दारयेद्वा महीं शैलशताचिताम् ।
यस्तेजस्वी स ते पुत्रो गौरवान्नातिवर्त्तते ॥ ३२ ॥
एवंवीर्यो महासत्त्वस्त्वया ख्यातपराक्रमः ।
जनयित्वाऽऽत्मना त्यक्तो जलजेनात्मजो यथा ॥ ३३ ॥
अनेन ते ऽतिक्रमेण मन्ये ऽहं पृथिवीपते ।
त्वत्तः श्रियमतिक्रान्तां कीर्तिं पापान्तरादिव[१] ॥ ३४ ॥
द्विजातिभिरयं धर्मः शास्त्रदृष्टः सनातनः ।
गुरोर्दुष्टान्महाराज गौरवं विनिवर्त्तते ॥ ३५ ॥
गुरुर्दुष्टः परित्याज्यस्तथा माता तथा पिता ।
यो ह्यनर्थाय कल्पेत स तु शत्रुर्न बान्धवः ॥ ३६ ॥
न त्वेवं भविता रोषस्त्वयि रामस्य राघव ।
त्वया यदि कृतं पापं न स धर्माद्विलिप्यति ॥ ३७ ॥
एवमुक्त्वा तु कौशल्या विलपन्ती यशस्विनी ।
ततो हेत्वर्थसंयुक्तं पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥ ३८ ॥
प्रथमा गतिरात्मैव द्वितीया गतिरात्मजः ।
सन्तो गतिस्तृतीयोक्ता चतुर्थी धर्मसञ्चयः ॥ ३९ ॥
चतसृभ्यः परिभ्रष्टो गतिभ्यस्त्वं नराधिप ।
वने परित्यजन् रामं साधुं सुतमकारणम् ॥ ४० ॥
न हि रामं परित्यज्य चिरं शक्तोऽसि जीवितुम् ।

---

१ कै—पापांतरामिव ।

मद्धर्मोपार्जिताल्लोकात् कैकेय्यर्थे परिच्युतः ॥ ४१ ॥
सत्यं कीर्तिं च मां चैव त्यक्त्वा रामं सुतं च मे ।
प्राणांस्त्यक्ष्यसि दुःखार्त्तः सर्वथा ऽस्मि हता त्वया ॥ ४२ ॥
हता त्वयेयं नगरी सराष्ट्रा कीर्त्तिश्च धर्मश्च तथैव चात्मा ।
अहं सपुत्रा नृपनागराश्च सर्वे हताः कैकयिराज्यदानात् ॥४३॥
एता गिरो निष्ठुरदारुणाक्षराः श्रुत्वाऽथ[1] राजा सुतशोकदुःखितः ।
विनिःश्वसंश्चापि निमीलितेक्षणः शुशोच रामं हतसत्त्वचेतनः ॥४४॥

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे कौशल्याप्रलापो नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥



1) ब—श्रुत्वा च ।

[वं-६३]=[सप्तषष्टितमः सर्गः]=[दा-६२]

कौशल्ययैवं नृपति र्वाक्शरैरभिपीडितः[1] ।
१] मुमोह शयने शुभ्रे दुःखेनामीलितेक्षणः ॥ १ ॥ [N
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां समुन्मील्य च लोचने ।
२] परिपार्श्वस्थितां दृष्ट्वा कौशल्यामिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ [३
३] नार्हस्युरसि मे क्षारं निषेक्तुं सुतवत्सले । [N
पुत्रशोकार्तमनसो हृदयं मे विदीर्यते ।
४] असह्यान्यकृतप्रज्ञे[2] वाग्वज्राणि विमुञ्चसि ॥ ३ ॥ [N
ननु भर्त्तैव साध्वीनां गुणवान्निर्गुणोऽपि वा ।
५] दैवतं च गतिश्चेति महापूज्यतमो मतः ॥ ४ ॥ [८
क्षमस्वातिक्रमं देवि भृशार्त्तस्त्वां प्रसादये ।
६] हन्तुमर्हसि वै भूयो दैवेन निहतं न माम् ॥ ५ ॥ [N
जाने त्वां देवि धर्मज्ञां दृष्टलोकपरावराम् ।
७] अतो नार्हसि मे भूयो वक्तुमेतादृशं वचः ॥ ६ ॥ [९
इति राज्ञोऽतिकरुणं श्रुत्वा दीनस्य भाषितम् । [१०पू
८] पुत्रशोकं परित्यज्य कौशल्या पतिवत्सला ॥ ७ ॥ [N
शिरस्यञ्जलिमाधाय[3] भृशं संभ्रान्तमानसा । [११पू
९] शिरसा नृपतेः पादौ प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ [N
अतिक्रमं मे नृपते त्वमिमं क्षन्तुमर्हसि ।

1 कै, ब, म—वाक्छरै० । ल—वाक्करै० । 2 कै, ब, ल—०ह्यकृत-प्रज्ञैर् । म—०न्याहुतै प्राज्ञैर् । 3 ब, म—०मादाय ।

१०] अवाच्यं हि मयोक्तोऽसि पुत्रशोकविमूढया ॥ ९ ॥ [N
देवभूतेन भर्त्रा या क्षमितं (तुं?) न प्रपद्यते ।
११] कृताञ्जलि भृशार्तेन हता सेह परत्र च ॥ १० ॥ [N
क्षमस्व राजन्नार्ताया व्यतिक्रममिमं प्रभो ।
१२] प्रभुर्भर्तेश्वरश्चासि मम रामस्य चोभयोः ॥ ११ ॥ [N
जानामि धर्मं धर्मज्ञ जाने त्वां सत्यवादिनम् ।
१३] पुत्रशोकार्तयेदं तु मया किमपि भाषितम् ॥ १२ ॥ [१४
शोको नाशयते प्रज्ञां शोको नाशयते श्रुतम् ।
१४] शोको धृतिं नाशयति नास्ति शोकसमं तमः ॥ १३ ॥ [१५
सोढुं शक्योऽग्निसंस्पर्शः शस्त्रस्पर्शश्च दारुणः ।
१५] न तु शोकभवं दुःखं संसोढुं नृप शक्यते ॥ १४ ॥ [१६
सर्वज्ञा धृतिमन्तोऽपि छिन्नधर्मार्थसंशयाः ।
१६] मुनयोऽप्यत्र मुह्यन्ति शोकोपहतचेतसः ॥ १५ ॥
पञ्चषाणि गतान्यद्य दिवसानि सुतस्य मे ।
१७] तानि वर्षशतानीव दुःखार्ताया गतानि मे ॥ १६ ॥ [१७
तद्गतासक्तचित्तायाः शोकौघो मे प्रवर्धते ।
१८] जलौघवेगो गङ्गाया महानिव तपात्यये ॥ १७ ॥ [१८
एष शोकमहाशत्रुः सुबद्धानपि मानवान् ।
N] प्रसह्य हरते वृक्षान्नदीरय इवोल्बणः[4] ॥ १८ ॥ [N
एवं संभाषमाणायास्तस्याः सुकरुणं वचः ।

4 कै—इवौल्वणः ।

१९] कौशल्याया जगामास्तं सविता दिवसक्षये ॥ १९ ॥ [१९
एवं प्रह्लादितो वाक्यैर्मेध्यैः[5] कौशल्यया नृपः ।
२०] शोकश्रमपरिम्लानः शनैर्निद्रावशं ययौ ॥ २० ॥ [२०

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे दशरथप्रसादनं नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥



5 कै, म—मेध्यैः

[वं-६४]=[अष्टषष्टितमः सर्गः]=[दा-N]

एवं तु विलपन्तीं तां कौशल्यां प्रमदोत्तमाम् ।
१] इदं धैर्यान्वितं वाक्यं सुमित्रा धर्म्यमब्रवीत् ॥ १ ॥
दिव्यैर्गुणगणैर्युक्तः पुत्रस्ते देवि राघवः ।
२] पितुर्नियोगे तिष्ठन्तं न तं[1] शोचितुमर्हसि ॥ २ ॥
नादेवसत्त्वा नाप्रज्ञाः पुरुषा नाल्पदर्शनाः ।
३] पितुर्नियोगे तिष्ठन्ति न चाकल्याणभागिनः ॥ ३ ॥
यत् तवार्ये गतः पुत्रो हित्वा राज्यं सुखानि च ।
४] प्राप्तव्यं तेन सुमहत् कल्याणमिति मे मतिः ॥ ४ ॥
सद्भिराचरिते धर्म्ये[2] यशस्ये वर्त्मनि स्थितम् ।
५] पुत्रं धर्मभृतां श्रेष्ठं न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ५ ॥
अस्यानुवर्तते वृत्तं लक्ष्मणो यो ममात्मजः ।
६] तमप्यतो नार्हसि त्वं शोचितुं भ्रातृवत्सलम् ॥ ६ ॥
अरण्यवासदुःखानि जानन्त्यपि च जानकी ।
७] सुखसंवर्धिता त्यक्त्वा गृहवाससुखानि च ॥ ७ ॥
अनुगच्छति भर्त्तारं या सा धर्मपरायणा ।
८] तां यशोभाजनां[3] धन्यां नैव शोचितुमर्हसि ॥ ८ ॥
यशःपताकां विपुलां त्रिषु लोकेषु विश्रुताम् ।
९] तद्धन्यते[4] न[5] ते पुत्रस्तं न शोचितुमर्हसि ॥ ९ ॥
रामस्य विपुलं सत्त्वं विज्ञायोदारचेतसः ।
१०] न गात्राण्यंशुभिः सूर्यः सन्तापयितुमर्हति ॥ १० ॥

---

1 ब-त्वं । 2 कै, म-धर्मे । 3 ब-०भजतां । 4 म-उतन्ये । 5 कै, म, ल-च ।

आदाय सुरभीन् गन्धान् वनेभ्यः ससुखोऽनिलः ।
११] पुत्रं ते नातिशीतोष्णः संसेविष्यति कानने ॥ ११ ॥
भूमावपि शयानं तं वैदेह्या सह राघवम् ।
१२] पितेवांशुकरैः स्पृष्ट्वा ह्लादयिष्यति चन्द्रमाः ॥ १२ ॥
अस्त्राणि यस्मै दिव्यानि विश्वामित्रो ददौ स्वयम् ।
१३] तं त्वं सर्वास्त्रविद्वांसं कथं शोचितुमर्हसि ॥ १३ ॥
कीर्त्या श्रिया भार्यया च नित्यं स तिसृभिर्युतः[6] ।
१४] धृतिमांश्च महासत्त्वः स रामो राज्यमर्हति ॥ १४ ॥
यान्यद्य पुत्रशोकार्त्ता कौशल्येऽश्रूणि मुञ्चसि ।
१५] आनन्दजानि तानि त्वं रामे मोक्ष्यस्युपस्थिते[7] ॥ १५ ॥
पुत्रस्ते यशसा लोकान् व्याप्य धर्मभृतां वरः ।
१६] चतुर्दशानां वर्षाणामन्ते भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥ १६ ॥
कुशचीराम्बरमपि यं यान्तं नरकुञ्जरम् ।
१७] श्रीरिवानुगता सीता तस्य किं नाम दुर्लभम् ॥ १७ ॥
तव पुत्रो वरः पुंसां वनवासादुपागतः ।
१८] वृत्तायतभुजः पादौ संस्पृशन् ह्लादयिष्यति ॥ १८ ॥
तं पादौ वन्दमानं तु दृष्ट्वा राजीवलोचनम् ।
१९] मेघराजीव शैलेन्द्रं वर्षस्यानन्दजाश्रुभिः ॥ १९ ॥
निशम्य तल्लक्ष्मणमातृवाक्यं रामस्य मातुर्नरदेवपत्न्याः ।
शनैः स शोकः प्रशमं जगाम वृष्ट्या यथाऽग्निः परिषिच्यमानः ॥२०॥

इत्यार्षे रामायणे ऽयोध्याकाण्डे सुमित्रावाक्यं नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

---

6 कै-०र्वृतः । 7 कै-मोक्षस्यु० । ०म-मोक्षोस्यू० ।

[चं-६५]=[एकोनसप्ततितमः सर्गः]=[दा-६३]

राम मनुजशार्दूले[1] सानुजे वनमाश्रिते । [N
१] राजा दशरथः श्रीमानापदं समपद्यत ॥ १ ॥ [१पू
रामलक्ष्मणयोरेवं विवासाद् वासवोपमः ।
२] जग्राहोपप्लवगतः तमः सूर्य इवांशुमान् ॥ २ ॥ [२
स षष्ठे दिवसे रामं शोचन्नेव महायशाः ।
३] अर्धरात्रे प्रबुद्धः सन् सस्माराथ स्वदुष्कृतम् ॥ ३ ॥ [४
स्मृत्वा च देवीं कौशल्यामभिभाष्येदमब्रवीत् । [५
४] यदि जागर्षि कौशल्ये शृणु मेऽवहिता वचः ॥ ४ ॥ [N
यदाचरति कल्याणि[2] नरः कर्म शुभाशुभम् ।
५] सोऽवश्यं फलमाप्नोति तस्य कालक्रमागतम् ॥ ५ ॥ [६
गुरुलाघवमर्थानामारंभे ह्यवितर्कयन् ।
६] दोषतो गुणतश्चैव बाल इत्युच्यते बुधैः ॥ ६ ॥ [७
तद्यथाऽऽम्रवनं छित्त्वा[3] पलाशवनमाश्रयेत् ।
७] पुष्पं छित्त्वा[4] फलं प्रेप्सु र्निराशः स्यात् फलागमे ॥ ७ ॥ [८
सोऽहमाम्रवनं छित्त्वा[5] पलाशवनमाश्रितः० ।
८] बुद्धिमोहात् परित्यज्य रामं शोचामि दुर्मतिः ॥०८ ॥ [१०
तव लक्ष्येण कौशल्ये[6] तरुणेन धनुष्मता ।०
९] कौमारे० शब्दवेधित्वा०-त्सहसा दुष्कृतं कृतम् ॥९॥ [११
तदिदं मामनुप्राप्तं फलं पापस्य कर्मणः ।

---

1 ल—०शार्दूला । 2 म—कर्माणि । 3 म—हित्वा । 4 म-गता* ।
5 म—मिता (त्वा ?) ० कै । 6 ब, ल, म—कौसल्ये ।

१०] भक्षितस्य विषस्येव विपाके जीवितान्तकम् ॥ १० ॥ [१२
अविज्ञानाद्यथा कश्चित्पुरुषो भक्षयेद्विषम् ।
११] तथा मयाऽप्यविज्ञानात् पापं कर्म पुरा कृतम् ॥ ११॥[१३
कौशल्ये[7] त्वय्यनूढायां युवराजो भवाम्यहम् ।
१२] अथ प्रावृडनुप्राप्ता मनःसंहर्षणी[8] मम ॥ १२ ॥ [१४
१३] आदाय हि रसं भौमं विवस्वांश्चण्डरोचिषा ।
N] अगस्त्यचरितामाशामुपावर्तत भानुमान् ॥ १३ ॥ [१५
आवृण्वाना दिशः सर्वाः स्निग्धा वव्राधिरे घनाः ।
१४] मुदा विजह्रिरे चापि तथा सारङ्गबर्हिणः ॥ १४ ॥ [१६
आकुलाविलतोयानि स्रोतांसि[9] विजलान्यपि । [१९पू
१५] उन्मार्गजलवाहीनि बभूवुर्जलदागमे ॥ १५ ॥ [N
मेघजेनाम्बुना भूमि र्भूरिणा परितर्पिता ।
१६] उन्मत्तशिखिसारङ्गा बभौ हरितशाद्वला ॥ १६ ॥ [N
एतस्मिन्नीदृशे काले वर्तमाने घनागमे ।
१७] बद्ध्वा तूणौ धनुष्पाणिः सरयूमगमं नदीम् ॥ १७ ॥ [N
धनुर्व्यायामशीलत्वाच्छब्दवेधचिकीर्षया ।
१८] तस्या नद्यास्तदा तीर्थं विविक्तमुपसृत्य च ॥ १८ ॥
निपाने निशि वन्यानां मृगाणां सलिलार्थिनाम् । [२१पू
१९] स्थितस्तत्राहमेकान्ते रात्रौ विततकार्मुकः ॥ १९ ॥ [N
तत्राहं महिषं वन्यं गजं वा तीरमागतम् ।
२०] अन्यं वाऽपि मृगं हन्मि शब्दं श्रुत्वाऽभ्युपागतम् ॥२०॥[२१

7 कै, ब, म, ल—कौसल्ये । 8 ब, म–संहर्षिणी । 9 कै-श्रोतांसि ।

अथाहं पूर्यमाणस्य जलकुंभस्य निःस्तनम् ।
२१] अचक्षुर्विषयेऽश्रौषं वारणस्येव बृंहितम् ॥ २१ ॥ [२२
ततः सुपुंखं निशितं शरं सन्धाय कार्मुके ।
२२] तस्मिन्[10] शब्दे शरं क्षिप्रमसृजं दैवमोहितः ॥ २२ ॥ [२३
शरे चाश्रृणवं तस्मिन् मुक्ते निपतिते तदा ।
२३] हा हतोऽस्मीति करुणां मानुषेणेरितां गिरम् ॥ २३ ॥ [२५
कथमस्माद्विधे शस्त्रं निपात्येनत् तपस्विनि । [२६पू
२४] केनायं सुनृशंसेन मयि बाणो निपातितः ॥ २४ ॥ [X
प्रविविक्तां नदीं रात्रावुदाहारोऽहमागतः । [२६उ
२५] इषुणाऽभिहतः केन कस्येहापकृतं मया ॥ २५ ॥ [२७पू
ऋषेः सन्न्यस्तशस्त्रस्य वने वन्येन जीवतः । [२७उ
२६] कथं नृशंसं शस्त्रेण मद्विधस्य विधीयते ॥ २६ ॥ [२८पू
वृद्धस्यान्धस्य दीनस्य वल्कलाजिनवाससः । [२८उ
२६] केनाहं घातितः पुत्रः कश्चाप्यर्थोऽस्य मद्वधे ॥२७॥ [२९पू
इमं निष्फलमारंभं केवलानर्थसंहितम् । [२९उ
२७] को विद्वान् साधु मन्येत शिष्येणेव गुरोर्वधम् ॥२८॥[३०पू
नेमं तथाऽनुशोचामि जीवितक्षयमात्मनः । [३०उ
२८] मातरं पितरं चान्धौ वृद्धौ शोचामि तौ यथा ॥२९॥ [३१पू
तदन्धं[11] मिथुनं[11] वृद्धं दीर्घकालं भृतं मया । [३१उ
२९] कथं मयि मृतेऽनाथं कृपणं वर्तयिष्यति ॥ ३० ॥ [३२पू
तौ चाहं चैव कृपणाः केनागम्य दुरात्मना । [३२उ

10 कै, ब, म, ल—तस्मिं । 11 कै—तदन्धामिथुनं ।

३०] बाणेनैकेन निहताः शाकमूलफलाशनाः ॥ ३१ ॥ [३३पू

इति तां करुणां वाचं श्रुत्वा मे भ्रान्तचेतसः । [३३उ

३१] अधर्मभयभीतस्य कराद्च्यवतायुधम् ॥ ३२ ॥ [३४पू

सहसाऽभ्युपसृत्यैनमपश्यं हृदि ताडितम् ।

३२] जटाऽजिनधरं बालं विद्धं पतितमम्भसि ॥ ३३ ॥ [३६

स मां कृपणमुद्वीक्ष्य मर्मण्यभिहतो भृशम् । [३७उ

३३] इत्युवाच वचो देवि दिधक्षुरिव तेजसा ॥ ३४ ॥ [३८पू

किं तवाघं कृतं क्षुद्र वने निवसता मया । [३८उ

३४] अपो जिघृक्षुर्गुर्वर्थं यदहं ताडितस्त्वया ॥ ३५ ॥ [३९पू

अमू हि कृपणावन्धावनाथौ विजने वने ।

३५] मदीयौ पितरौ वृद्धौ प्रतीक्षेते ममाशया ॥ ३६ ॥ [४०

एकेनानेन बाणेन त्वया पाप हतास्त्रयः ।

३६] अहमम्बा च तातश्च कस्मादनपराधिनः ॥ ३७ ॥ [३९उ

नूनं न तपसः किञ्चित् फलं मन्ये श्रुतस्य च । [४१उ

३७] यथा मां नाभिजानाति पिता मूढ त्वया हतम् ॥३८॥[४२पू

जानन्नपि हि किं कुर्यादन्धत्वादपराक्रमः । [४२उ

३८] छिद्यमानमिवाशक्तस् त्रातुमन्यो नगो नगम् ॥३९॥ [४३पू

पितुरेव च मे पूर्वं शीघ्रमाचक्ष्व राघव । [४३उ

३९] मा त्वा धक्ष्यति शापेन शुष्कं काष्ठमिवानलः ॥४०॥[४४पू

इयमेकपदी यातु* मम तत् पितुराश्रमम् । [४४उ

४०] तं प्रसादय गत्वाऽऽशु न येन कुपितः शपेत् ॥४१॥ [४५पू

विशल्यं कुरु मां क्षिप्रं त्वयाऽयं मेऽर्पितः शरः । [४५उ

४१] एष वज्राग्निसंस्पर्शः प्राणानुपरुणाद्धि मे ॥ ४२ ॥ [४९पू
सशल्यो मरणं नाहं प्राप्नुयां शल्यमुद्धर । [४९उ
४२] न द्विजातिरहं शङ्कां ब्रह्महत्याकृतां त्यज ॥ ४३ ॥ [५०
ब्राह्मणेन त्वहं जातः शूद्रायां वसता वने ।
४३] इति मामब्रवीद् बालो मच्छराभिहतो भृशम् ॥ ४४ ॥ [५१
जलार्द्रगात्रं विलपन्तमेवं
बाणाभिघातार्तमतिश्वसन्तम् ।
४४] तथा सरय्वां तमहं शयानं
दृष्ट्वैव बालं सुभृशं विषण्णः ॥ ४५ ॥ [५३
तस्याथो म्रियतो बाणमुद्धार बलादहम् । [५२उ
४५] यत्नवान् जीविताकांक्षी मुनेस्तत्र विचेतसः ॥ ४६ ॥ [N
शरे तु तस्मिन्नपनीतमात्रे
हिक्काऽऽकुलश्वासमुहूर्तखिन्नः ।
४६] विवेष्टमानः परिवृत्तनेत्रः
प्राणानमुञ्चत् स मुनेस्तनूजः ॥ ४७ ॥ [N
निधनमुपगते महर्षिपुत्रे
सह यशसा सहसैव मां निपात्य ।
४७] भृशमहमभवं विमूढचेता
व्यसनमवाप्य यतीव संभ्रमत्तः ॥ ४८ ॥ [N

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे ऋषिकुमारवधो नाम [एकोनसप्ततितमः] सर्गः ॥ ६९ ॥

---

12 कै, ल—विविष्ट० ।

[वं-६६]=[सप्ततितमः सर्गः]=[दा-६४]

ततोऽहं शरमुद्धृत्य दीप्तमाशीविषोपमम् ।
१] अगच्छं[1] कुंभमादाय पितुरस्याश्रमं प्रति ॥ १ ॥ [३
ततोऽहं कृपणावन्धौ वृद्धावपरिनायकौ ।
२] अपश्यं जनकौ तस्य लूनपक्षाविव द्विजौ ॥ २ ॥ [४
तत्कथाभिरुपासीनौ व्यथितौ पुत्रलालसौ ।
३] पुत्रं[2] दर्शनमायान्तमाकांक्षन्तौ[3] मया हतम् ॥ ३ ॥ [५
तदज्ञानान्महत्पापं कृत्वाऽहं व्याकुलेन्द्रियः ।
४] आश्रमस्थावभिप्रेत्य तावपश्यं तपस्विनौ ॥ ४ ॥ [६
पदशब्दं तु मे श्रुत्वा मुनिर्मामभ्यभाषत ।
५] किं ते चिरायितं पुत्र पानीयं क्षिप्रमानय ॥ ५ ॥ [७
यज्ञदत्त चिरं तात पानीये क्रीडितं त्वया ।
६] उत्कण्ठितेयं माता ते तथाऽहमपि पुत्रक ॥ ६ ॥ [८
यदि किंचिद् व्यलीकं ते मया मात्राऽपि वा कृतम् ।
७] तत् क्षामये[4] त्वां मा भूयश्चिरायेथाः क्वचिद्गतः ॥७॥ [९
अगतेर्मे गतिर्यस्त्वं त्वं मे चक्षुरचक्षुषः ।
८] समासक्तास्त्वयि प्राणाः कस्मान्मां नाभिभाषसे ॥८॥ [१०
तं तथा करुणां वाचं[5] ब्रुवन्तं पुत्रलालसम् ।
९] अहमभ्येत्य शनकैरब्रवं भयविह्वलः ॥ ९ ॥ [११

1 म—अग(?)ता (आगतः ?) । 2 कै-पुत्र-।ल-अत्र । 3 कै, म—०मायंतमा० । 4 कै—क्षमये । 5 कै—करुणावाचं। म—करुणावाचा।

वाष्पसन्नेन कण्ठेन धृत्या संस्तम्भ्य[6] वाग्बलम् ।
१०] कृताञ्जलि र्वेपमानो भयगद्गदवागिदम् ॥ १० ॥ [१२
क्षत्रियोऽहं दशरथो नाहं पुत्रो मुने तव ।
११] सज्जनावमतं घोरं कृत्वा पापमुपागतः ॥ ११ ॥ [१३
भगवंश्चापहस्तोऽहं सरय्वास्तीरमागतः ।
१२] कांक्षन्[7] जिघांसुरज्ञातं मृगं तत्राभ्युपागतम् ॥ १२ ॥[१४
पूर्यमाणस्य कुंभस्य तत्र शब्दो मया श्रुतः ।
१३] तव पुत्रो मयाऽसौ ते निहतो गजशङ्कया ॥ १३ ॥ [१५
तस्याहं रुदितं श्रुत्वा हृदि भिन्नस्य पत्रिणा ।
१४] भीत आगत्य तं देशं तमपश्यं तपस्विनम् ॥ १४ ॥ [१६
भगवन्[8] शब्दवेधित्वान्मयाऽयं[9] गजशङ्कया ।
१५] विसृष्टोऽम्भसि नाराचो येन ते निहतः सुतः ॥१५॥[१६-]
समुद्धृते मया बाणे प्राणांस्त्यक्त्वा दिवं गतः ।
१६] भवन्तौ सुचिरं कालं परिशोच्य तपस्विनौ ॥ १६ ॥ [१८
अज्ञानतो मया पुत्रो हतस्ते दयितो मुने ।
१७] शेषमेवं गते तेजो मय्युत्स्रष्टुं त्वमर्हसि ॥ १७ ॥ [१९
स एतदभिसंश्रुत्य मुहूर्त्तमिव मूर्च्छितः ।
१८] प्रत्याश्वस्यागतप्राणो मामुवाच कृताञ्जालिम् ॥१८॥[२०-२१
यदि त्वमशुभं कृत्वा न वच्येथाः* स्वयं मम ।
१९] लोका अपि ततो दग्धाः समस्ताः शापवह्निना ॥१९॥[२२

6 म—संस्तभ्य । 7 कै, ब, म, ल—कांक्षं । 8 कै, ब, ल—भगवं । म—भगवन् । 9 म-छब्द० ।

क्षत्रियं ज्ञानपूर्वं च वानप्रस्थवधः कृतः ।
२०] स्थानात्प्रच्यावयेदाशु ब्रह्माणमपि सुस्थितम् ॥२०॥[२३
सप्तावरास्तथा पूर्वं तव वंश्या नराधम ।
२१] पतेयुर्ज्ञानपूर्वं च वधं कृतवतो मुनेः ॥ २१ ॥ [२४
हतस्त्वसौ यदज्ञानात्त्वया तेनाद्य जीवसि ।
२२] तस्माद्विफलमप्यद्य राघवाणां भवेत् किल ॥ २२ ॥ [२५
नय मां साधु तं देशं यत्रासौ बालकस्त्वया ।
२३] हतो नृशंस बाणेन ममान्धस्यैकयष्टिका ॥ २३ ॥ [२६पू
तमहं पतितं भूमौ स्प्रष्टुमिच्छामि पुत्रकम् ।
२४] संप्राप्य यदि जीवेयं पुत्रस्पर्शमपश्चिमम् ॥ २४ ॥ [२६उ
रुधिरेणावसिक्ताङ्गं प्रकीर्णाजिनमूर्धजम् ।
२५] सभार्यस्तं स्पृशाम्यद्य धर्मराजवशंगतम् ॥ २५ ॥ [२७
अथाहमेकस्तं देशं नीत्वा तौ भृशदुःखितौ ।
२६] तमस्मै स्पर्शयामास सभार्याय मृतं सुतम् ॥ २६ ॥ [२८
पुत्रशोकातुरौ दृष्ट्वा तौ पुत्रं पतितं क्षितौ ।
२७] आर्तस्वरं[10] विसृष्ट्वोभौ तस्यैवोपरि पेततुः ॥ २७ ॥ [२९
माता चास्य मृतस्यापि जिह्वया लिह्यती मुखम् ।
२८] विललापातिकरुणं गौर्विवत्सेव विह्वला ॥ २८ ॥ [N
नन्वहं ते यज्ञदत्त प्राणेभ्योऽपि प्रिया विभो ।
२९] स कथं दीर्घमध्वानं प्रस्थितो मां न भाषसे ॥ २९ ॥ [N
संपरिष्वज तावन्मां पश्चात्पुत्र गमिष्यसि । [N

10 म-०स्वनं ।

३०] किं वत्स कुपितो मेऽसि येन मां नाभिभाषसे ॥३०॥ [३०
अनन्तरं पिता चास्य गात्राण्यंतः* परिस्पृशन् ।
३१] इदमाह प्रियं पुत्रं जीवमानमिवातुरः ॥ ३१ ॥ [N
ननु तेऽहं पिता पुत्र सह मात्राऽभ्युपागतः ।
३२] उत्तिष्ट तावदेह्यावां कण्ठे गाढं परिष्वज ॥ ३२ ॥ [N
कस्य चापररात्रेऽहं स्वाध्यायं कुर्वतो वने ।
३३] श्रोष्यामि मधुरं शब्दं पुत्र शास्त्रं जिघृक्षतः ॥ ३३ ॥[३२
ननु मूलफलं वन्यमाहरिष्यति को वनात् ।
३४] आवयोरन्धयोः पुत्र कांक्षतोः[11] क्षुत्परीतयोः ॥ ३४ ॥[३४
इमामन्धां च वृद्धां च मातरं ते तपस्विनीम् ।
३५] कथं पुत्र भरिष्येऽहमन्धो गतपराक्रमः ॥ ३५ ॥ [३५
एकाहमपि[12] तावत्त्वं नैव गन्तुमितोऽर्हसि ।
३६] श्वो मया चैव मात्रा च गन्ताऽसि सह पुत्रक ॥३६॥ [३६
उभावपि भवच्छोकादनार्यौ[13] न[13] चिरादिव ।
३७] प्राणैः पुत्र वियोज्यावो मरणे कृतनिश्चयौ ॥ ३७ ॥ [३७
इतो वैवस्वतं गत्वा भिक्षिष्ये कृपणः स्वयम् ।
३८] पुत्रभिक्षां प्रदेहीति त्वयैव सहितो गतः ॥ ३८ ॥ [३८
पर्युपास्य च कः सन्ध्यां स्नात्वा हुत्वा च पावकम् ।
३९] ह्लादयिष्यति मे गात्रं कराभ्यां परिसंस्पृशन् ॥ ३९ ॥ [३३
अपापोऽसि यथा पुत्र निहतः पापकर्मणा[14] ।

---

11 के-कांक्षंतो । 12 के, ब, म, ल-एकोहमपि । 13 ब-०दनार्यौ० । म-०दनयौं० । ल-०दनाथोप । 14 के-स्वेन० ।

४०] त्वमाप्नुहि तथा लोकान् शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ ४० ॥[४०
अपरावर्त्तिनां लोकाः शूराणां ये तपस्विनाम् ।
४१] यज्वनां च सुवृत्तानां तांस्त्वमाप्नुहि शाश्वतान् ॥४१॥[४१
पू४२] यांल्लोकान् वेदवेदाङ्गपारगा मुनयो गताः ।
पू४४] यांश्चाभयप्रदातारस्तथा यान् सत्यवादिनः ॥ ४२ ॥O [N
उ४४] तां ल्लोकान् मदनुज्ञातो[15] याहि पुत्रक शाश्वतान् । [N
पू४५] न हीदृशे कुले जन्म प्राप्य यान्त्यधमां गतिम् ॥४३॥O [४५पू
उ४५] तस्मादितश्च्युतः स्थानाल्लोकानाप्नुहि शाश्वतान् ।O [N
पू४६] एवमादि विलप्याथ स मुनिः[16] सह[16] भार्यया ॥४४॥ [४६
N] संस्कारं लंभयामास दुःखोपहतचेतनः ।
उ४६] ततोऽस्य कर्तुमुदकं प्रतस्थे दीनमानसः ॥ ४५ ॥ [N
अथ दिव्यवपुर्भूत्वा विमानवरमास्थितः ।
४७] मुनिपुत्रस्ततो वाक्यमुवाच पितराविदम् ॥ ४६ ॥ [५०
भवन्तौ परिचर्याहं प्राप्तः पुण्यामिमां गतिम् ।
४८] भवन्तावपि हि क्षिप्रं स्थानमिष्टमवाप्स्यतः[17] ॥ ४७ ॥ [४९
न भवद्भ्यामहं शोच्यो नापि राजाऽपराध्यति ।
४९] भवितव्यमनेनैव[18] येनाहं निधनं गतः ॥ ४८ ॥ [N
एतावदुक्त्वा वचन मृषिपुत्रो[19] दिवं गतः ।
५०] दिवि दिव्यांबरो राजन् विमानवरमास्थितः ॥ ४९ ॥[५०

---

15 ब—मदनुध्यातो । Om । 16 ब, म—०र्भार्यया सह । 17 ब—०प्स्यथः । म—प्स्यथ । 18 ब—०मनेनैवां । म—०मनेन वै । 19 कै, ब—वचन ऋषि० ।

सोऽपि कृत्वोदकं तस्य पुत्रस्य सह भार्यया ।
५१] तपस्वी मामुवाचेदं कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥ ५० ॥ [५१
कथं त्वं ख्यातयशसां राजर्षीणां महात्मनाम् ।
५२] अविनीतः कुले जात इक्ष्वाकूणां नृपाधम ॥ ५१ ॥ [N
न स्त्रीनिमित्तं वैरं ते क्षेत्रजं न मया सह ।
५३] अथ केनेषुणा कस्मात् सभार्योऽहं हतस्त्वया ॥ ५२ ॥ [N
अविज्ञानात्तु मे पुत्रो हतो यद् विनयेन वा ।
५४] तथा तस्मादहमपि शप्स्यामि त्वां निबोध मे ॥५३॥ [५३
पुत्रशोकादहं प्राणान् सन्त्यक्ष्याम्यवशो यथा ।
५५] त्वमप्यन्ते तथा प्राणांस्त्यक्ष्यसे पुत्रलालसः ॥ ५४ ॥[५४
एवं शापमहं लब्ध्वा स्वपुरं पुनरागतः ।
५६] स ऋषिः पुत्रशोकेन न चिरादिव संस्थितः ॥५५॥ [५७
स ब्रह्मशापो नियतमद्य मां समुपस्थितः ।
५७] तथा हि पुत्रशोकार्तं प्राणाः सन्त्वरयन्ति माम् ॥५६॥ [६६पू
चक्षुषा न प्रपश्यामि स्मृतिन[20] प्रविलुप्यते । [६५उ
५८] स्मृत्वा तौ द्वौ गतौ प्राणास्त्वरयन्ति च मां शुभे ॥५७॥ [N
यदि मां संस्पृशेद्रामः संभाषेतापि चागतः । [६२उ
५९] जीवेयमिति मे बुद्धिः प्राप्यामृतमिवातुरः ॥ ५८ ॥ [N
दृष्ट्वा हि यद्यहं प्राणांस्त्यजेयं दयितं सुतम् ।
६०] प्रेत्यापि च नदह्येयं पुत्रशोकेन दुःखितः ॥ ५९ ॥ [N
अतो नु किं कृच्छ्रतरं किं वा दुःखतरं भवेत् । [६६उ

20 ल—में ।

६१] यदहष्ट्वा च रामस्य मुखं त्यक्ष्यामि जीवितम् ॥६०॥ [६१पू
रामादर्शनजः शोकः प्राणान् निर्दहतीव मे ।
६२] नदीतीररुहान्[21] वृक्षान्[21] वारिवेगो महानिव ॥६१॥ [७४
निस्तीर्णवनवासं तमयोध्यां पुनरागतम् । [७१उ
६३] द्रक्ष्यन्ति सुखिनो रामं शक्रं स्वर्गादिवागतम् ॥६२॥ [७२पू
ते देवा न मनुष्यास्ते ये तत् पूर्णेन्दुसन्निभम् । [६८उ
६४] मुखं द्रक्ष्यन्ति रामस्य पुरीं प्रविशतो वनात् ॥ ६३ ॥ [६९पू
सुदंष्ट्रं निर्मलं कान्तं चारु पद्मदलेक्षणम् । [६९उ
६५] धन्या द्रक्ष्यन्ति रामस्य तारापतिनिभं मुखम् ॥६४॥ [७०पू
शरच्चन्द्रस्य सदृशं कुन्दस्य कमलस्य च । [७०उ
६६] सुगन्धि मम पुत्रस्य धन्या द्रक्ष्यन्ति वै मुखम् ॥६५॥ [७१पू
इति रामं स्मरन्नेव शयनीयतले नृपः ।
६७] शनैरुपजगामास्तं शशीव रजनीक्षये ॥ ६६ ॥ [N
हा[22] राम हा पुत्र इति ब्रुवन्नेव[22] शनैर्नृपः ।
६८] तत्याज सुप्रियान् प्राणानायुषोऽन्ते सुदुस्त्यजान् ६७ [७५-७७
तथा स दीनं कथयन्नराधिपः
प्रियस्य पुत्रस्य विवासनसंकथाम् ।
६९] गतेऽर्धरात्रे शयनीयसंस्थितो
जहौ प्रियं जीवितमात्मनस्तदा ॥ ६८ ॥ [७८

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे ब्रह्मशापाख्यानं
नाम सर्गः ॥ ७० ॥

---

21 व—०तीरमहावृक्षान् । ()म । 22 कं—हे राम हा ब्रुवन्पुत्र एवमेवा।

[वं-६७]=[एकसप्ततितमः सर्गः]=[दा-६५]

विलप्याथ तमप्येवं तूष्णीभूतं नराधिपम् ।
१] सुप्त इत्यवगम्यार्ता कौशल्या न व्यबोधयत् ॥ १ ॥ [N
अनुक्तवन्तं भर्तारं किञ्चिच्छोकश्रमाकुला ।
२] सुष्वाप शयने भूयः पुत्रशोकार्तमानसा ॥ २ ॥ [N
अथ रात्र्यां व्यतीतायां सन्ध्याकाल उपस्थिते ।
३] वन्दिनः पर्युपातिष्ठन् पार्थिवं प्रतिबोधकाः ॥ ३ ॥ [१
तेषां तु तदुपश्रुत्य[1] सूतमागधवन्दिनाम् ।
४] सर्वा बुबुधिरे सुप्ता नृपान्तःपुरयोषितः ॥ ४ ॥ [N
ततः शुचिसमाचारा राजोपस्थानकारिणः ।
५] स्त्रीवर्षवरभूयिष्ठा उपतस्थुर्नराधिपम् ॥ ५ ॥ [७
गन्धाम्बुपरिपूर्णांश्च कुंभान् काञ्चनराजतान् ।
६] उपतस्थुःसमादाय स्नापकास्तं नृपालयम् ॥ ६ ॥ [८
मङ्गलालंभनीयानि तथैवान्यमुपस्करम् ।
७] यथायोगमुपाजह्रुरुपचारं विचक्षणाः ॥ ७ ॥ [९
अभ्येत्य चोपचारज्ञाः शयनीये नराधिपम् ।
८] स्त्रियः प्रबोधयाञ्चक्रुरादित्योदयशङ्कया ॥ ८ ॥ [१२
प्रबोध्यमानोऽपि यदा नाबुध्यत स पार्थिवः ।
९] आ सूर्योदयनात् सुप्तस्ततस्ताः शङ्किताः स्त्रियः ॥९॥ [११
ता वेपथुसमाविष्टा राज्ञः प्राणेषु शङ्किताः । [१४३

1 ब, म—०दुपाश्रुत्य ।

१०] प्रतिस्रोतस्तृणाग्रेण सदृशं प्रचकंपिरे ॥ १० ॥ [१५पू
अथ तासां परित्रासं दृष्ट्वा दृष्ट्वा च पार्थिवम् ।
११] यत्तदा शङ्कितं पापं तस्य जज्ञे विनिश्चयः ॥ ११ ॥ [१५
ता वेपमाना संभ्रान्ता मृतं दृष्ट्वा नराधिपम् ।
१२] हा नाथ हा मृतोऽसीति पतिता वै विचुक्रुशुः ॥१२॥[१२
तासां तेनार्तनादेन महता शयिते तदा ।
१३] कौशल्या च सुमित्रा च बुबुधाते सुदुःखिते ॥ १३ ॥ [२१
१४] उत्थाय शयनात् क्षिप्रं राजानमुपतस्थतुः । [N
दृष्ट्वा मृतं च भर्तारं ते देव्यावतिदुःखिते ॥ १४ ॥0 [२५पू
१५] सुप्तमेवोद्गतप्राणं[2] भृशं चुक्रुशतुस्तदा । [२७उ
तयोस्तद्[3] रुदितं[3] श्रुत्वा सर्वशोऽन्तःपुरस्त्रियः ॥१५॥ N]
१६] सहसा चुक्रुशुस्तत्र कुरर्यस्त्रासिता इव । [N
ईरितोऽन्तःपुरस्त्रीभिरार्ताभिः स स्वनो महान् ॥१६॥[२६पू
१७] पुरीं तां पूरयामास बोधयंश्चैव सर्वशः । [२६उ
ततः संभ्रान्तमनसस्तेन शब्देन बोधिताः ॥ १७ ॥ [N
१८] आविशन्त नृपाहूता नृपवेश्म पराः स्त्रियः[4] । [N
ताश्च ताश्चैव संहत्य[5] शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १८ ॥ [N
१९] रुरुदुश्चुक्रुशुश्चैव नृपे पञ्चत्वमागते । [N
अथायोध्या पुरी कृत्स्ना तेन शब्देन बोधिता ॥ १९ ॥ [N
२०] सवृद्धबाला चुक्रोश राजव्यसनकर्षिता । [N

---

2 ल—सुप्तमेवोद्गतं प्राणं । म—सुप्तमेव गतं प्राणं । Oब । 3 कं—तं क्रंदितं । 4 म, ल—पुरस्त्रियः । 5 कं, ल—संहृत्य ।

तत्समुद्विग्नमुद्भ्रान्तं पर्युत्सुकजनाकुलम् ॥ २० ॥ [२७पू

२१] परिदेवितार्तस्तनितं रुदितोत्क्रुष्टमाकुलम् । [२७उ

सद्योनिपतितानर्थं विध्वस्तशयनासनम् ॥ २१ ॥ [२८पू

२२] बभूव नरदेवस्य गृहं दिष्टान्तमागतम् । [२८उ

ततो भृशार्ता कौशल्या सुमित्रा चैव दुःखिता ॥२२॥ [N

२३] निपत्य पृथिवीपृष्ठे बहुधैव व्यवेष्टताम् । [N

सपत्न्या सह दुःखार्ता वेष्टमाना धरातले ॥ २३ ॥ [N

२४] पांशुरूषितसर्वाङ्गी[6] कौशल्या न व्यराजत । [N

व्यतीतमाज्ञाय तु पार्थिवर्षभं
यशस्विनं तं परिवार्य ताः स्त्रियः ।
भृशं रुदन्त्यः करुणाक्षरा गिरः
२५] प्रगृह्य बाहून् व्यलपन्त सर्वशः ॥ २४ ॥ [२९

इत्यार्षे रामायणेऽयोध्याकाण्डे दशरथमरणं[7] नाम
[एकसप्ततितमः] सर्गः ॥ ७१ ॥



6 ब, म, ल—पांसुभूषित० । 7 ब, म, ल—अंतः पुरविलापो ।

[वं-६८]=[द्विसप्ततितमः सर्गः]=[द्रा-६६]

तमग्निमिव संशान्तं संशोषितमिवार्णवम् ।
१] अस्तं गतमिवादित्यं स्वर्गतं प्रेक्ष्य भूमिपम्[1] ॥ १ ॥ [१
द्विविधेनापि दुःखेन कौशल्या भृशदुःखिता ।
२] भर्तुः पादौ प्रगृह्यार्ता विललाप सुदुःखिता ॥ २ ॥ [२
कृतपुण्योऽसि नृपते शुद्धसत्त्वश्च मानद ।
३] यस्त्वं प्राणान् परित्यज्य नाद्य शोचसि राघवम् ॥ ३ ॥ [N
पुत्रशोकसमुद्भूतो दारुणो देहतापनः ।
४] त्वत्प्राणहरणाद् व्याधिर्मामनार्यां न[2] बाधते ॥ ४ ॥ [N
सत्यसन्धे महाभागे प्रधानाभिजनात्मनि ।
५] न हि युष्माद्विधे युक्तो भावः करुणवेदिनि ॥ ५ ॥ [N
अहमेवाशुद्धसत्त्वा नाचा[3] चादृढसौहृदा ।
६] अजीवनार्हा जीवामि या त्वयाऽद्य विनाकृता ॥ ६ ॥ [N
मृत्युरस्यामवस्थायां प्रशस्तस्ते नराधिप ।
७] न तु मे जीवितं[4] ह्यस्यामवस्थायां[4] विगर्हितम् ॥ ७ ॥ [N
अवस्थायामवस्थायां तत्तद् भवति पूजितम् ।
८] पूजितं मरणं तस्य यस्य जीवितमीदृशम् ॥ ८ ॥ [N
यत्र शुद्धस्वभावस्तु पुत्रशोकार्तया मया ।
९] परुषं मुहुरुक्तोऽसि तन्मां दहति किल्बिषम् ॥ ९ ॥ [N
देवोपम नमस्तेऽस्तु शुद्धभाव महीपते ।

1 कै—पार्थिवं । 2 ब—नु । 3 कै—पूर्वं त्रुटितं पश्चात् "पापा" इति पदेन, भिन्नहस्तेन पूरितम् । 4 कै—जीवितुमस्याम० ।

१०] समन्युर्वाऽसि मयि तत् क्षामये त्वां प्रसीद मे ॥ १० ॥ [N
पुत्रशोकार्तयाऽप्युक्तो यन्मयाऽस्यकृतज्ञया ।
११] तद्देवसत्त्व नामुत्र स्मर्त्तुमर्हसि मेऽनघ ॥ ११ ॥ [N
अतिक्रमः कस्य नास्ति विदुषोऽपि महीपते ।
१२] आतिक्रममतो मे त्वं मूढायाः क्षन्तुमर्हसि ॥ १२ ॥ [N
कृत्वाऽनर्थं मूलहरं राज्यलोभाद्विगर्हितम् ।
१३] प्राप्ताऽसि निरयं क्षुद्रे कैकेयि दृढनिश्चये ॥ १३ ॥ [N
सकामा भव कैकेयि भुंक्ष्व[5] राज्यमकण्टकम् । [३पू
१४] पतिं प्राणैर्वियोज्यैव विकृते निर्वृता भव ॥ १४ ॥ [N
सुखभोगार्थदातारं दैवतं परमं पतिम् ।
१५] का त्वन्या त्वदृते नारी लुब्धा प्राणैर्वियोजयेत् ॥ १५ ॥[५
कृत्वा कार्यमकार्यं वा न कीर्तिं निरयं न च ।
१६] न धर्मं चापि नाऽधम[6] वेत्सि नैव तथेहितम् ॥ १६ ॥ [N
N] कुब्जा[7](ब्जा ?)-निमित्ते कैकेयि रघूणां ते[8] कुलं हतम् ॥[६उ
त्वन्नियोगनियुक्तेन राज्ञा चैव महात्मना ।
१७] प्राणेभ्योऽपि प्रियः पुत्रो रामः प्रव्राजितो वनम् ॥०१७॥[N
यथा प्राणैः प्रियो रामस्त्यक्तो राज्ञा महात्मना ।०
१८] तद्वियोगात्तथा तेन त्यक्ताः प्राणाः सुदुस्त्यजाः ॥०१८। [N
वैधव्यमयशश्चेदं लोके चेदं विगर्हितम् ।०
१९] लोभात्त्वया त्रयोऽनर्था यत्प्राप्तास्तन्न मे प्रियम् ॥ १९ ॥ [N

---

5 ब—भुक्त्वा । 6 कै—वाऽधर्मं । 7 ब, ल—कन्या । कै—कृत्वा ।
8 कै—नेर्थलेहतं ! ०कै, ब, म । ०ल ।

श्रीमानिन्दीवरश्यामश्चारुपद्मदलेक्षणः । [N
२०] पितुर्जीवितनाशाय रामो वनमितो गतः ॥ २० ॥ [८उ
विदेहराजतनया सुकुमारी तपस्विनी ।
२१] त्वत्कृते पापसङ्कल्पे दुःखान्यनुभवत्यसौ ॥ २१ ॥ [९
उग्रं प्रतिभयं नादं घोराणां मृगपक्षिणाम् ।
२२] श्रुत्वा नूनं भयोद्विग्ना रामं श्रयति मैथिली ॥ २२ ॥ [१०
यया बुद्ध्या त्वया रामः पतिं त्यक्त्वा विवासितः ।
२३] धर्मज्ञो भरतस्त्वां तु गर्हयिष्यन्नुपागतः ॥ २३ ॥ [N
अनृशंसा पुरा भूत्वा धर्मिष्ठा च पुरा ह्यसि ।
२४] केनेदानीं नृशंसा त्वमधर्मिष्ठा च कैकयि ॥ २४ ॥ [N
कथं चासौ महासत्त्वो दृढं राममनुव्रतः ।
२५] अपापः पापसङ्कल्पे भरतो दूषितस्त्वया ॥ २५ ॥ [N
रामवृत्तानुवर्त्ती हि भरतः पापनिश्चये ।
२६] नानुवर्तेत ते वृत्तं गर्हयिष्यति चागतः ॥ २६ ॥ [N
नृशंसमप्रशंस्यं[9] च लोके कर्म विगर्हितम् ।
२७] यत्कृत्वा[10] मन्यसे साधु सुकृतं पापनिश्चये ॥ २७ ॥ [N
किं न शोचसि भर्तारं रामं लक्ष्मणमेव च ।
२८] उताहो त्वपि वैदेहीमात्मानं चापि दुःखितम् ॥ २८ ॥ [N
शोचयितव्येषु युगपद् बहुष्वन्येषु वै पृथक् ।
२९] ममापि दुःखभागिन्या मृतं श्रेयो न जीवितम् ॥२९॥ [N
विहाय मां वनं रामो भर्ता च त्रिदिवं गतः ।

---

9 कै, ब—०मप्रशस्यं । 10 म, ल—यत्र त्वां ।

३०] सार्थादिव परिभ्रष्टा कुपथे विचराम्यहम् ॥ ३० ॥ [N

महाराज महाबाहो महाप्राज्ञ महाबल ।

३१] महत्यगाधे पतितां पाहि मां शोकसागरे ॥ ३० ॥ [N

सुखोचिता त्वया त्यक्ता त्वन्नाथा त्वत्परायणा ।

३२] त्यक्ता त्वया प्रिये[11] नाद्य सर्वथैव धिगस्तु माम् ॥३२॥ [N

न्याय्यं धर्म्यं यशस्यं च मार्गं साधुनिषेवितम् ।

३३] अनुगन्तुं न शक्ष्यामि[12] रामसन्दर्शनाशया ॥ ३३ ॥ [N

किं मया न कृतं साधु भवेदद्य जनाधिप ।

३४] यदि तेऽहं शरीरेण सह दाहमवाप्नुयाम् ॥ ३४ ॥ [N

गच्छन्तं परलोकाय यदि त्वामनुयाम्यहम् ।

३५] सुकृतं न मया तेऽद्य राजन् प्रतिकृतं भवेत् ॥ ३५ ॥ [N

नूनं नैवाहमर्हामि पापा पत्युः सलोकताम् ।

३६] या त्वां चितां समारूढां* नानुवेक्ष्यामि वै चिताम् ॥३६ [N

कालस्य वशगो जन्तुर्न मर्त्यः स्वयमीश्वरः ।

३७] जीवितुं वाऽप्यतो न त्वां राजन्नहमनुश्रये ॥ ३७ ॥ [N

क्वासि राम महाबाहो क्वासि लक्ष्मण सुव्रत ।

३८] क्वासि त्वं साध्वि वैदेहि न मां जानासि दुःखिताम् ।३८। [N

कैकय्या वचनाद्राज्ञा श्रुत्वा रामं विवासितम् ।

३९] सभार्यो जनको राजा परितप्स्यत्यसंशयम् ॥ ३९ ॥ [७

अबलश्चैव वृद्धश्च वैदेहीमनुचिन्तयन् ।

---

11 ब—प्रियेणाद्य । ल—प्रयेणाद्य । म—प्रियेनाद्य ।

12 के—शक्याम । *(समारूढं ?) ।